स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

MAAH-119

प्राचीन भारत का सांस्कृतिक सम्बन्ध

(सीलोन, म्यांमार, चम्पा, कम्बोज एवंसुवर्णद्वीप)

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333

कुलपति

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

संदेश

प्रयागराज की पवित्र भूमि पर भारत रत्न राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन के नाम पर वर्ष 1999 में स्थापित उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ0प्र0 का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय उ0प्र0 जैसे विशाल जनसंख्या वाले राज्य में उच्च शिक्षा के प्रत्येक आकांक्षी तक गुणात्मक तथा रोजगारपरक उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने में निरन्तर अग्रसर एवं प्रयत्नशील है। तत्कालीन देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में एक वैकल्पिक व नवाचारी शिक्षा व्यवस्था के रूप में भारत में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का पदार्पण हुआ था, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों तथा तकनीकी का सार्थक प्रयोग करते हुये मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा आज की सर्वोत्तम पूरक शिक्षा व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुकी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सामने व्याप्त पाँच मुख्य चुनौतियों - (i) पहुँच (Access), (ii) समानता (Equity), (iii) गुणवत्ता (Quality), (iv) वहनीयता (Affordability) तथा (v) जवाबदेही (Accountability) को केन्द्र में रखकर घोषित देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP-2020) के प्रस्तावों को क्रियान्वित करने में उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय कृत संकल्पित है। उ0प्र0 की माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति की सद्इच्छाओं के अनुरूप उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, शैक्षिक दायित्वों के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में भी लगातार नवप्रयास कर रहा है। चाहे वह गाँवों को गोद लेकर उनके समग्र विकास का प्रयास हो या ग्रामीण महिलाओं, ट्रान्सजेन्डर व सजायाफ्ता कैदियों को शुल्क में छूट प्रदान कर उनमें आत्मविश्वास जागृति व उच्च शिक्षा के प्रति अलख जगाने का प्रयास हो।

राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा एक मूलभूत जरूरत है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्रों में हो रहे तीव्र परिवर्तनों व वैश्विक स्तर पर रोजगार की परिस्थितियों में आ रहे परिवर्तनों के कारण भारतीय युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। इसीलिए विभिन्न क्षेत्रों में सफलता हेतु शिक्षा को सर्वसुलभ, समावेशी तथा गुणवत्तापरक बनाना समसामयिक अपरिहार्य आवश्यकता है। वर्तमान परिस्थितियों ने परम्परागत शिक्षा को और भी सीमित कर दिया है जिसके कारण मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था ही एकमात्र पूरक एवं प्रभावी शिक्षा व्यवस्था के रूप में सार्थक सिद्ध हो चुकी है। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालय का दायित्व और भी बढ़ जाता है। इस दायित्व को एक चुनौती स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय ने प्राचीन तथा सनातन भारतीय ज्ञान, परम्परा तथा सांस्कृतिक दर्शन व मूल्यों की समृद्ध विरासत के आलोक में सभी के लिए समावेशी व समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने तथा जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा देने के लिए अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में जागरूकता में प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, परास्नातक डिप्लोमा, स्नातक, परास्नातक तथा शोध उपाधि के समसामयिक शैक्षिक कार्यक्रमों की संख्या तथा गुणात्मकता में वृद्धि की है।

शैक्षिक कार्यक्रमों में संख्यात्मक वृद्धि, गुणात्मक वृद्धि तथा रोजगारपरक बनाने के साथ-साथ प्रत्येक उच्च शिक्षा आकांक्षी तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए अध्ययन केन्द्रों व क्षेत्रीय केन्द्रों के विस्तार के साथ-साथ प्रवेश परीक्षा, प्रशासन तथा परामर्श (शिक्षण) में आनलाइन व्यवस्थाओं को सुनिश्चित किया गया है। विश्वविद्यालय कार्यप्रणाली में पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चियन की दृष्टि से तकनीकी के प्रयोग को बढ़ाया गया है। 'चुनौती मूल्यांकन' की व्यवस्था सुनिश्चित करने का कार्य किया गया है, तो शिक्षार्थी सहायता सेवाओं में भी वृद्धि की जा रही है। शिक्षार्थियों की समस्याओं के त्वरित निस्तारण हेतु शिकायत निवारण प्रकोष्ठ को सुदृढ़ करने के साथ-साथ पुरातन छात्र परिषद को गतिशील किया गया है।

"गुरुकुल से छात्रकुल" के सूक्त वाक्य को आत्मसात करते हुए विश्वविद्यालय ने शिक्षार्थियों को विश्वविद्यालय द्वारा तैयार किये गये गुणवत्तापूर्ण स्वअध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने के साथ-साथ विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर भी उपलब्ध कराया गया है। छात्रहित को ध्यान में रखते हुए शिक्षकों द्वारा तैयार व्याख्यान को भी ऑनलाईन उपलब्ध कराया गया है।

शोध और नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर होते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) नई दिल्ली तथा माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति, उ0प्र0 की अनुमति से विश्वविद्यालय में शोध कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ किया गया है तथा वर्ष पर्यन्त समसामयिक विषयों पर व्याख्यान, सेमिनार, वेबिनार तथा आनलाइन संगोष्ठियों आदि की श्रृंखला भी प्रारम्भ की गयी है। विभिन्न क्षेत्रों में रिसर्च प्रोजेक्ट सम्पादन पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है। पुस्तकालय को अत्याधुनिक तथा सुदृढ़ बनाने हेतु कदम उठाये गये हैं। शिक्षकों व कर्मचारियों के स्वास्थ्य तथा कल्याण की योजनायें क्रियान्वित की गयी हैं।

प्रो0 सत्यकाम
कुलपति

m-i- jktf"k V.Mu eDr fo'ofo|ky;]
i;kxjkt

MAAH-119(N)

çkphu Hkkjr dk lkLdfrd lEcU/k

¼lhyku] E;kekj] pEik] dEckt ,oa lo.k}hi½

ikB;Øe

[k.M&1 lhyku	
इकाई–1 बौद्ध धर्म का परिचय एवं विस्तार	3–16
इकाई–2 कला एवं वास्तुकला–सिगिरिया मन्दिर तथा रूवैनवेलि पगोडा	17–23
[k.M&2 E;kekj	
इकाई–3 भारत–म्यांमार सांस्कृतिक सम्बन्ध तथा भारतीय उपनिवेशीकरण	24–27
इकाई–4 बौद्ध धर्म का परिचय, विस्तार एवं साहित्य	28–29
इकाई–5 कला एवं वास्तुकला–आनन्द मन्दिर, श्वेजिगान पगोडा	30–33
[k.M&3 pEik	
इकाई–6 भारतीय संस्कृति के तत्व, बौद्ध धर्म का परिचय एवं विस्तार	34–36
इकाई–7 सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक स्थिति–शैव धर्म एवं वैष्णव धर्म	37–41
इकाई–8 कला एवं वास्तुकला	42–44
[k.M&4 dEckt	
इकाई–9 भारतीय धर्म के तत्व–ब्राह्मण एवं बौद्ध धर्म	45–49
इकाई–10 सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति	50–66
इकाई–11 कला एवं वास्तुकला–अंकोरवाट मन्दिर	67–73
[k.M&5 lo.k}hi	
इकाई–12 सुवर्णद्वीप में बौद्ध धर्म	74–79
इकाई–13 श्रीविजय (सुमात्रा) में बौद्ध धर्म	80–84
इकाई–14 जावा में बौद्ध धर्म	85-93
इकाई–15 कला एवं वास्तुकला–बोरोबुदूर	94–98

MAAH-119N

çkphu Hkkjr dk lkLdfrd lEcU/k

¼lhyku] E;kekj] pEik] dEckst ,oa lo.k}hi½

lkjke'k lfefr

प्रो.सीमा सिंह — कुलपति,उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

कर्नल विनय कुमार — कुलसचिव, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

ikB;Øe fuekZ.k lfefr ¼v/;;u ckM½

प्रो.सन्तोषा कुमार — निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

प्रो.जे.एन.पाल — पूर्व आचार्य,प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज

प्रो.हर्ष कुमार — आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज

प्रो.राजकुमार गुप्ता — आचार्य,प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, प्रो.राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया)विश्वविद्यालय,प्रयागराज

डॉ.सुनील कुमार — सहायक आचार्य,प्राचीन इतिहास,समाज विज्ञान विद्याशाखा,,उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

y[kd bdkbZ

1 डॉ. नितेश कुमार मिश्र, वरिष्ठ सहायक आचार्य — 1,2
प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय,रायपुर,छत्तीसगढ़

2. डॉ सुनील कुमार, सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास — 3,4,5,6,7,8
समाज विज्ञान विद्याशाखा,उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

3. डॉ. सुदर्शन चक्रधारी,सहायक आचार्य,इतिहास विभाग — 9,10,11,12,13,14,15
बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकरविश्वविद्यालयलखनऊ

lEikndd

प्रो.श्याम बिहारी लाल, आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग,महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय,बरेली

ikB;Øe lesUo;d

डॉ.सुनील कुमार, सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास,समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

Ekfær ekg ,oa o"kZ & ekp] 2025

© mÙkj izns'k jkt f"kZ V.Mu eDr fo'ofo|ky;] iz;kxjkt

ISBN No. –978-93-48987-19-8

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे ंमिनियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नही ंहै।

ukV % पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ो ंआदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नही ंहैं।

प्रकाशन विनय कुमार, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2025।

end– चन्दकला यूनिवर्सल प्रा0लि0, 42/7 जवाहर लाल नेहरू रोड, प्रयागराज–211002

bdkbZ 1&cks/k /keZ dk ifjp; ,oa foLrkj

bdkbZ dh #ijs[kk

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 बौद्ध धर्म के ऐतिहासिक स्रोत

1.3 गौतम बुद्ध का जीवन–परिचय

1.4 बुद्ध का दर्शन एवं शिक्षाएँ

1.5 बौद्ध संघ का गठन

1.6 बौद्ध धर्म का प्रसार

1.7 सारांश

1.8 बोध प्रश्न

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1-0 izLrkouk

भारतवर्ष आरंभ से ही दार्शनिकों की भूमि रही है। ई.पू. 1500 के लगभग कांस्ययुगीन हड़प्पा सभ्यता के पतन के बाद भारत में अनेक संप्रदायों का उदय हुआ।इन संप्रदायों में सबसे प्राचीन वैदिक धर्म की स्थापना लगभग ई.पू. 1500 में आस–पास मानी जाती है, किन्तु कुछ विद्वान वैदिक धर्म की उत्पत्ति हड़प्पा सभ्यता के समकालीन तथा कुछ इन दोनों सभ्यताओं को एक ही मानते हैं।वैदिक धर्म के अंतर्गत कर्मकांडों का भी विस्तार हुआ, जिसके कारण समाज में अनेक अंधविश्वासों, बलि प्रथाओं आदि का भी प्रचलन बढ़ा। इन कर्मकांडीय प्रथाओं के असहमति अथवा विरोध में अनेक अवैदिक दर्शनों का विकास हुआ जो नास्तिक दर्शन कहलाये तथा विशेषकर श्रमण परंपरा के अंतर्गत ही विकसित हुए।

ई.पू छठी शताब्दी तक भारत में दर्शनों की दो श्रेणियाँ विकसित हो चुकी थीं–एक थे आस्तिक जो वेदों को सर्वोच्च मानते थे तथा दूसरे थे नास्तिक जो ईश्वर तथा वेदों को नहीं मानते थे। वैदिक धर्म के अंतर्गत 'ड् आस्तिक दर्शनों संख्या, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, योग तथा वेदान्त का विकास हुआ। वहीं दूसरी ओर इसी काल में जैन, बौद्ध, आजीवक, तथा चार्वाक जैसे नास्तिक दर्शनों का भी विकास हुआ। पूर्व मध्य काल तक आजीवक तथा चार्वाक जैसे दर्शन धीरे–धीरे विलुप्त हो गए, जबकि वैदिक धर्म तथा जैन व बौद्ध धर्म आज भी जीवित हैं।मध्यकाल आते–आते भारतवर्ष में ब्राह्मण धर्म ही प्रमुख रूप से अस्तित्व में रहा, वहीं जैन व बौद्ध धर्म सीमित हो गए, जिसका कारण संभवतः उनकी अहिंसा की नीति थी, जिसके कारण वे मध्यकाल में बाह्य आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा नहीं कर सके।

1-1 mn~n'ks;

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त शिक्षार्थी बौद्ध धर्म का परिचय व विस्तार, जो प्राचीन भारत में उदय होने वाले प्रमुख नास्तिक दर्शनों में सबसे अधिक प्रचलित व विस्तृत हुआ तथा जिसका इतिहास सिद्धार्थ गौतम (महात्मा बुद्ध) के बुद्धत्व प्राप्ति से आरंभ होता है।यद्यपि भारत बौद्ध धर्म की जन्म भूमि है किन्तु आज बौद्ध धर्म भारत सहित नेपाल, श्रीलंका, म्यांमार, कंबोडिया, वियतनाम, थायलैंड, मलेशिया, चीन, जापान, कोरिया तथा बाली सहित अनेक दक्षिणी, पूर्वी, दक्षिणी–पूर्व एशिया में विस्तृत प्रभाव के विषय में जान सकेंगे।

1-2 ck} /ke dk ,frgkfld lkr

आरंभिक बौद्ध साहित्य गांधारी, प्राकृत, मागधी तथा पालि भाषाओं में श्रुति परंपरा में संकलित हुआ, किन्तु गौतम बुद्ध के लगभग 400 वर्षों बाद प्रथम बौद्ध साहित्यों का संकलन कर उन्हें पालि व संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध किया गया, जैसे पालि साहित्य का संकलन ई.पू. प्रथम शती में श्रीलंका में संरक्षित किया गया।बौद्ध धर्म के अंतर्गत बाद के काल में विकसित होने वाले अनेक संप्रदायों द्वारा भी अपने–अपने साहित्य रचे गए।आरंभिक बौद्ध धर्म का सबसे प्राचीन साहित्य थेरवाद संप्रदाय का त्रिपिटक (पालि : तिपिटक) है, जिसमें गौतम बुद्ध के जीवन के बारें में कुछ अंश मिलते हैं।जातक कथाओं में उनके बोधिसत्वों के रूप में पूर्व जन्म की कहानियाँ मिलती हैं। सिद्धार्थ गौतम के पूर्ण जीवन का इतिहास बाद के साहित्यों में मिलता है जिसमें सबसे प्राचीन है।प्रथम शती ई. का अश्वघोष द्वारा रचित बुद्धचरित। तीसरी शती ई. में रचित महायान संप्रदाय का ललितविस्तर दूसरा सबसे प्राचीन स्रोत है।इसके अतिरिक्त दीपवंश, महावंश, दिव्यावदान, महावस्तु, निदानकथा, अभिलेख तथा विभिन्न देशों की परम्पराएं भी बौद्ध धर्म के इतिहास के लिए महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

1-3 xkre c} dk thou&ifjp;

बौद्ध धर्म प्राचीन भारत में विकसित होने वाले नास्तिक दर्शनों में सबसे अधिक प्रचलित व विख्यात है। बौद्ध मत के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध थे।बौद्ध स्रोतों के अनुसार महात्मा बुद्ध का वास्तविक नाम सिद्धार्थ (पालिःसिद्धात्थ) था, तथा उनके वंश का नाम गौतम (पालि :गोतम) था, इस कारण उन्हें सिद्धार्थ गौतम भी कहा जाता था।सिद्धार्थ गौतम के पिता का नाम शुद्धोदन (पालिःसुधोदन) तथा माता का नाम माया (महामाया, महादेवी) था।शुद्धोदन हिमालय की तराई में आज के पूर्वी उत्तर प्रदेश के महाराजगंज जिले से लगे हुए भारत व नेपाल सीमा में स्थित एक शाक्य गणसंघ के क्षत्रीय गणराजा थे, जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी।बौद्ध परंपरा के अनुसार गर्भाधान की रात्रि को महामाया ने स्वप्न में एक श्वेत हाथी को अपने गर्भ में प्रवेश करते देखा था।गर्भाधान के 10 माह पश्चात वैशाख पूर्णिमा को जब वे अपने पिता के घर जा रहीं थी, तब मार्ग में लुम्बिनी (वर्तमान नेपाल में स्थित) नामक साल वृक्षों के एक उपवन में उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया।लुम्बिनी की पहचान वहाँ से प्राप्त मौर्य सम्राट अशोक द्वारा ईपू तीसरी शताब्दी में उत्कीर्ण करवाए गए एक स्तम्भ लेख से हुई, जिसमें सम्राट अशोक ने इस स्थान को बुद्ध शाक्यमुनि (बुधे सक्यमुनी) का जन्मस्थान बताया है।सिद्धार्थ के जन्म के 7 दिन बाद उनकी माता महामाया की मृत्यु हो गई थी, जिसके बाद उनकी मौसी प्रजापति (महामाया की बहन) ने सिद्धार्थ का पालन किया।गौतम बुद्ध के जन्म तथा जीवनकाल को लेकर विद्वानों में अनेकों विवाद है।चीन, वियतनाम, कोरिया, जापान आदि देशों की परंपरा के अनुसार गौतम बुद्ध का जन्म लगभग ईपू 10वीं शताब्दी में हुआ था, जबकि वज्रयान के कालचक्र परंपरा के अनुसार गौतम बुद्ध का जन्म लगभग ई.पू. 9 वीं शताब्दी में हुआ था।

बौद्ध साहित्य गौतम बुद्ध के काल से संबंधित दो कालक्रम देते हैं–श्रीलंका के इतिहास के अनुसार बुद्ध का जीवनकाल ईपू 624 से ईपू 544 निर्धारित होता है। जबकि अनेक विद्वान ग्रीक स्रोतों के आधार पर गौतम बुद्ध का जीवनकाल ईपू 566 से ईपू 486 निर्धारित होता है। चीन व तिब्बत भाषा में अनुवादित भारतीय स्रोतों के अनुसार गौतम बुद्ध का जीवन काल ईपू 448 से ईपू 368 निर्धारित होता है।

सिद्धार्थ गौतम के जन्म के समय ज्योतिषियों ने यह भविष्यवाणी की थी कि वे या तो चक्रवर्ती सम्राट बनेंगे या एक महान संत। राजा शुद्धोदन ने जो अपने पुत्र सिद्धार्थ को राजा बनाना चाहते थे, अतः इस भविष्यवाणी से चिंतित होकर उन्होंने सिद्धार्थ को सांसारिक दुःख व पीड़ाओं से दूर अत्यंत सुखमय व विलासिता भरा जीवन देने का प्रयास किया ताकि उनमें वैराग्य की भावना न जन्म ले।किन्तु सिद्धार्थ का मन बाल्यावस्था से ही अत्यधिक विचारशील व चिंतनशील था तथा उनमें बाल्यकाल से ही वैराग्य के लक्षण थे। आरंभिक बौद्ध ग्रंथों के अनुसार 16 वर्ष की अल्प आयु में ही पिता शुद्धोदन ने सिद्धार्थ का विवाह यशोधरा से करवाया था।29 वर्ष की आयु में दोनों को एक पुत्र की प्राप्ति हुई।पुत्र के जन्म का समाचार सुनते ही सिद्धार्थ के मुंह से शब्द निकल 'राहुल जातो बंधनं जातं', जिसका अर्थ है आत्मज्ञान के मार्ग में बंधन पैदा हो गया जिसके कारण उसका नाम राहुल पड़ा।

xgR;kx ¼egkfHkfu"Øe.k½

आरंभिक बौद्ध स्रोतों के अनुसार सिद्धार्थ उच्च ज्ञान की खोज में सामान्य जीवन से मोहभंग होने के बाद तपस्वी या श्रमण जीवन जीने लग गए थे। 5वीं शती में रचित निदानकथा के अनुसार एक बार जब सिद्धार्थ अपने सारथी छंदक के साथ अपने घोड़े कंथक पर नगर भ्रमण पर निकले तब उन्हें एक वृद्ध, एक रोगी, एक शव। इन्हें देखकर सिद्धार्थ को दुःख हुआ और उनमें संसार के प्रति वैराग्य आ गया। जब सिद्धार्थ ने एक योगी को देखा, तब सिद्धार्थ गौतम को दुःख व पीड़ा से निकालने के मार्ग की खोज करने की प्रेरणा प्राप्त हुई। इस घटना के कुछ दिनों बाद एक रात सिद्धार्थ रात्रि में अपनी पत्नी व पुत्र को सोता हुआ छोड़कर अपने सारथी खंदक के साथ महल से निकल गए। अनुमा नदी के तट पर उन्होंने अपने राजसी वस्त्र त्याग कर सन्यासी के वस्त्र धारण किया, अपने केश काटे तथा अपने घोड़े व सारथी को छोड़कर वन में चले गए। सिद्धार्थ गौतम के ज्ञान की खोज में अपने गृह त्याग की इस घटना को बौद्ध परंपरा में 'महाभिनिष्क्रमण' कहा जाता है।

c)Ro çkfIr ¼ckf/k½

सिद्धार्थ गौतम ज्ञान की खोज में वर्षों तक वन में भटकते रहे। उन्होंने अलार–कलाम तथा उद्रक रामपुत्र नामक दो गुरुओं से योग व उच्च स्तर की ध्यान चेतना प्राप्त करने की शिक्षा दी। इसके बाद वे वन में कठोर तप करने लगे, जिसमें श्वास को नियंत्रित करना व कम से कम भोजन करने का अभ्यास किया, जिसके कारण उनका शरीर अत्यंत दुर्बल हो गया था। कुछ कथाओं के अनुसार इस स्थिति में सुजाता नामक एक लड़की के द्वारा खीर कहकर अपना उपवास तोड़ दिया, जिसके बाद उन्हें यह अनुभव हुआ कि इस तरह से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होगी तथा उन्हें मध्य का मार्ग चुनना होगा।पालि साहित्यों के अनुसार बुद्ध वर्तमान बिहार राज्य के गया जिले में निरंजना (फल्गु) नदी के तट पर पीपल वृक्ष के नीचे संबोधि प्राप्त करने तक न उठने का दृढ़ निश्चय कर बैठ गए। अरियापरियेसन सुत्त में 'पूर्ण जागृति' का उल्लेख नहीं है, किन्तु इनके निर्वाण प्राप्त करने का उल्लेख है। धम्मचक्रप्रवर्तन सूत्र (धम्मचक्कपवत्तन सुत्त) के अनुसार सिद्धार्थ गौतम ने भोग तथा पीड़ा दोनों के चरम के मध्य का मार्ग खोजा, जिसे श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग कहा जाता है। पालि साहित्यों के अनुसार सिद्धार्थ गौतम 7 दिनों तक लगातार ध्यान की अवस्था में बैठे रहे और सातवें दिन मुक्ति के आनंद का अनुभव किया। पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के समय सिद्धार्थ गौतम की आयु लगभग 35 वर्ष थी। सिद्धार्थ गौतम को विमुक्ति प्राप्त हुई, जिसे निर्वाण भी कहा जाता है, जिसके बाद इच्छा, घृणा और अज्ञानता की समाप्ति हो जाती है, जो पुनर्जन्म के कष्टकारी चक्र में मनुष्य को फँसाये रखते हैं। बाद की शताब्दियों में उन्हें 'बुद्ध' कहा जाने लगा जिसका अर्थ है 'जो जागृत है'।

çFke min'k ¼/kEepØçorZu½

मज्झिमनिकाय, अकोत्तरिका आगम व धर्मगुप्त विनय, महिषासक विनय और महावस्तु के अनुसार निर्वाण अर्थात बुद्धत्व की प्राप्ति के बाद गौतम बुद्ध वाराणसी के पास मृगउद्यान (सारनाथ, ऋषिपतन) पहुँचे, जहाँ वे 5 तपस्वियों को अपने पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने का विश्वास करवाने में सफल रहे तथा 'पहला उपदेश' दिया, जिसे बनारस उपदेश भी कहा जाता है, जैसे भोग व आत्म–पीड़ा की दो चरम सीमाओं से अलग मध्यम मार्ग के रूप में अष्टांगिक मार्ग की शिक्षा। बौद्ध परंपरा में महात्मा बुद्ध द्वारा दिए गए इस प्रथम धर्म उपदेश को धर्मचक्रप्रवर्तन कहा जाता है।सारनाथ में अपने प्रवचन के बाद बुद्ध ने अपना शेष जीवन भ्रमण करते हुए तथा समस्त जनों को अपने ज्ञान की दीक्षा देते हुए व्यतीत किया।उनके अनेक शिष्य भी हुए जिनमें से कुछ ने सन्यास भी लिया तथा बुद्ध के साथ–साथ भ्रमण कर बुद्ध के उपदेशों व ज्ञान का प्रचार करने लगे जिन्हें बौद्ध संघ कहा गया।

egkifjfuok.k

बुद्ध के अंतिम दिनों, मृत्यु और उनकी मृत्यु के बाद की घटनाओं का मुख्य वर्णन महापरिनिब्बान सुत्त (दीघ निकाय 16) और संस्कृत, चीनी और तिब्बती में इसके विभिन्न समानांतरों में निहित है। यात्रा करने और कुछ और उपदेश देने के बाद, बुद्ध ने अपना अंतिम भोजन खाया, जो उन्हें कुंडा नामक एक लोहार से भेंट के रूप में मिला था।संघ को यह घोषणा करने के बाद कि वे शीघ्र ही अंतिम निर्वाण के लिए देह त्यागने वाले हैं, बुद्ध ने संघ में सुभद्दा नामक एक अंतिम नवसिखिए को व्यक्तिगत रूप से नियुक्त किया।फिर उन्होंने संघ को

अपना अंतिम निर्देश दोहराया, जो यह था कि उनकी मृत्यु के बाद धम्म और विनय ही उनके शिक्षक होंगे।इसके बाद बुद्ध ने अपना अंतिम ध्यान कर देह त्याग दिया, जिसे परिनिर्वाण के रूप में जाना जाता है। महापरिनिब्बान सुत्त के अनुसार, कुशीनगर के मल्लियों ने बुद्ध की मृत्यु के बाद के दिनों में उनके शरीर को फूलों, संगीत और सुगंधों से सम्मानित किया।इसके बाद बुद्ध के शरीर का अंतिम संस्कार किया गया और उनके अवशेषों को मगध, शाक्य और कोलिय जैसे विभिन्न उत्तर भारतीय राज्यों में वितरित किया गया।इन अवशेषों को स्तूप नामक स्मारकों का निर्माण किया गया।बाद में अशोक द्वारा इन्हीं अस्थियों को पुनः नए स्तूपों में स्थापित किया गया।

1-4 c) dk n'ku o f'k{kk,

बौद्ध धर्म में अनेक शिक्षाएं और अभ्यास आवश्यक माने जाते हैं, जिनमें शामिल हैंः संयोजन (बेड़ियां, जंजीरें या बंधन), अर्थात् संस्कार (''संरचनाएं''), क्लेश (अस्वास्थ्यकर मानसिक स्थितियां), जिनमें तीन विष और आसव (''प्रवाह, नासूर'') शामिल हैं, जो संसार चक्र को दोहराने का कारण होते हैं, छह इंद्रियां और पांच स्कंध, जो इंद्रिय संपर्क से चेतना तक की प्रक्रिया का वर्णन करते हैं, जो संसार के इस बंधन की ओर ले जाती है। प्रतीत्यसमुत्पाद, जो इस प्रक्रिया और इसके उलटने का विस्तार से वर्णन करता है। और मध्यम मार्ग, जिसमें चार आर्य सत्य और आर्य अष्टांगिक मार्ग सम्मिलित हैं, जो बताते हैं कि बंधन को कैसे उलटा जा सकता है।बुद्ध ने संयोग, क्लेश और आसव को दूर करने और विमुक्ति (मुक्ति) प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षण का मार्ग सिखाया। बुद्ध द्वारा सिखाया गया यह मार्ग प्रारंभिक ग्रंथों (धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त और इसके कई समानांतर ग्रंथों में) में एक ओर कामुक भोग और दूसरी ओर शरीर की तपस्या के बीच एक ''मध्य मार्ग'' के रूप में दर्शाया गया है।

pkj vk;Z lR;

गौतम बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं में निर्वाण प्राप्ति के लिए चार आर्य सत्यों का उल्लेख किया –

1. दुःख–दुःख क्षणिक अस्तित्व की एक सहज विशेषता है। यह कुछ भी हमेशा के लिए नहीं है।
2. समुदय–इस क्षणिक संसार व दुःख के साथ इसके प्रति आसक्ति व तृष्णा है जो दुःख का कारण है।
3. निरोध–वैराग्य या निरोध के माध्यम से इस आसक्ति व तृष्णा से मुक्ति हो सकती है।
4. मार्ग–अष्टांगिक मार्ग इस इच्छा व आसक्ति से तथा दुःख से मुक्ति दिलाने वाला मार्ग है।

अंतिम सत्य मार्ग दुःख व सांसारिक पुनर्जन्म के चक्र ने मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग है जिसमें सम्यक् प्रज्ञा, सम्यक् शील और सम्यक समाधि के अंतर्गत आठ अभ्यासों का वर्णन किया गया है, जिसके माध्यम से निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है, जिसे इसे अष्टांगिक मार्ग भी की कहा जाता है।अनेक बौद्ध गुरुओं व विद्वानों ने इन शब्दों व उनकी व्याख्या का अलग–अलग निष्कर्ष निकाला है।बाद में उन्हों मत भेदों पर अनेक बौद्ध संप्रदायों की स्थापना भी हुई।

v"Vkfxd ekxZ

गौतम बुद्ध ने आसक्ति व तृष्णा से मुक्ति प्राप्त करने के लिए आठ अभ्यास बताए जो सम्यक् प्रज्ञा, सम्यक् शील और सम्यक समाधि के अंतर्गत सम्मिलित हैं, जिन्हें अष्टांगिक मार्ग कहा जाता है –

1. lE;d çKk

   1.1. सम्यक् दृष्टि – चार आर्य सत्यों पर विश्वास रखना, मनुष्य के कार्यों के परिणाम होते हैं, मृत्यु अंत नहीं है, और हमारे कार्यों और विश्वासों के परिणाम मृत्यु के बाद भी होते है।

   1.2. सम्यक संकल्प – इसे ''सही विचार'', ''सही आकांक्षा'' या ''सही प्रेरणा'' के रूप में भी जाना जा सकता है, जिसमें साधक हिंसक व घृणित आचरण से बचने का संकल्प लेता है।इसमें गृह व सांसारिक जीवन का त्याग करन बौद्ध मार्ग का अनुसरण करने का संकल्प भी सम्मिलित है।

2. lE;d 'khy

2.1. सम्यक् वाक् –झूठ न बोलना, अभद्र भाषा का प्रयोग न करना, किसी व्यक्ति के बारे में ऐसा न कहना कि दूसरा उसके बारे में क्या कहता है, व्यर्थ ब बोलना।

2.2. सम्यक् कर्म – किसी को मारना या चोट नहीं पहुँचाना, जो नहीं दिया गया है उसे नहीं लेना, कोई यौन दुराचार नहीं, कोई भौतिक इच्छा नहीं।

2.3. सम्यक् जीविका – किसी को मारना या चोट नहीं पहुँचाना, जो नहीं दिया गया है उसे नहीं लेना, कोई यौन दुराचार नहीं, कोई भौतिक इच्छा नहीं

3. lE;d lekf/k

3.1. सम्यक् व्यायाम – अस्वास्थ्यकर स्थितियों को उत्पन्न होने से रोकना तथा स्वास्थ्यकर स्थितियों को उत्पन्न करना।इसमें इंद्रिय–क्षमताओं का संयम शामिल है।

3.2. सम्यक् स्मृति – एक गुण जो मन की रक्षा करता है या उस पर नजर रखता हैय यह जितना दृढ़ होता है, मन की अस्वस्थ अवस्थाएँ उतनी ही कमजोर होती जाती हैं, जिससे ''विचार, वचन और कर्म पर नियंत्रण करने'' की उसकी शक्ति कम होती जाती है।

3.3. सम्यक् समाधि– ध्यान के चार चरणों का अभ्यास करना, जिसमें दूसरे चरण में समाधि शामिल है, और बोध्यांग के विकास को मजबूत करता है जो उपेक्खा (समता) और मन की एकाग्रता में परिणत होता है

1-5 ck) l?k dk xBu o foLrkj

सारनाथ में उपदेश देने के बाद बुद्ध ने अन्य तपस्वियों को भी अपने धम्म की शिक्षा दी तथा बौद्ध भिक्षुओं के समूह अर्थात संघ का गठन किया। कौंडिण्य नामक ब्राह्मण जिन्होंने सिद्धार्थ गौतम के जन्म के बाद उनके महान संत बनने की भविष्यवाणी की थी, गौतम बुद्ध के पहले शिष्य व अर्हंत बने। महावस्तु के अनुसार महाखंडका एवं चतुस्परिसात के अनुसार बुद्ध ने अपना दूसरा प्रवचन अनात्मलक्षण सूत्र भी यहीं दिया जिसके बाद शेष 4 शिष्य भी अर्हंत हो गए। थेरवाद विनय और चतुस्परिसात–सूत्र में स्थानीय संघ गुरु यासा और उनके मित्रों और परिवार के धर्म परिवर्तन का उल्लेख है, जो बौद्ध संघ में प्रवेश करने वाले पहले साधारण लोग थे। इसके बाद कश्यप नामक तीन भाइयों के बौद्ध धर्म में दीक्षित होने का उल्लेख आता है, जो अपने साथ पाँच सौ अन्य लोगों को लेकर आए, जो पहले ''जटाधारी तपस्वी'' थे, जिनकी पूर्व साधना अग्निहोत्र से संबंधित थी।

थेरवाद विनय के अनुसार, बुद्ध फिर गया के पास गयासिसा पहाड़ी पर रुके और अपना तीसरा प्रवचन आदित्तपरीय सुत्त (अग्नि पर प्रवचन) दिया, जिसमें उन्होंने सिखाया कि संसार में हर चीज वासनाओं से भारी हुई है और केवल वे ही मुक्त हो सकते हैं जो अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करते हैं। जब बुद्ध के संघ में लगभग साठ संबुद्ध भिक्षु हो गए, तो उन्होंने उन्हें विश्व के ''कल्याण और लाभ'' के लिए भ्रमण करने, लोगों को शिक्षा देने और संघ में दीक्षित करने का निर्देश दिया।अगले 40–45 वर्ष गौतम बुद्ध ने लगभग पूरे गंगा–यमुना दोआब में भ्रमण किया जिसमें आज का उत्तर प्रदेश, बिहार, दक्षिणी नेपाल का क्षेत्र सम्मिलित है।अपनी यात्रा में उन्होंने कुलीनों, तपस्वियों, अगुलिमार जैसे अपराधियों व अलवाक जैसे नरभक्षियों को दीक्षा दी। शूमान के अनुसार, बुद्ध की यात्राएँ '' यमुना के तट पर कोसंबी (इलाहाबाद से 25 किमी दक्षिण–पश्चिम)'' से लेकर ''कम्पा (भागलपुर से 40 किमी पूर्व)'' और ''कपिलवत्थु (गोरखपुर से 95 किमी उत्तर–पश्चिम) से लेकर उरुवेला (गया के दक्षिण)'' तक फैली हुई थीं।उनके संघ को कोसल और मगध के राजाओं का संरक्षण प्राप्त था तथा इस प्रकार उन्होंने अपनी संबंधित राजधानियों, सावत्थी (श्रावस्ती) और राजगृह (राजगीर) में लंबा समय बिताया। वर्षा ऋतु के चार महीनों को छोड़कर संघ पूरे वर्ष भ्रमण करता था।पाली ग्रंथों के अनुसार, संघ के गठन के तुरंत बाद, बुद्ध ने मगध की राजधानी राजगृह की यात्रा की और मगध के शासक बिम्बिसार से मिले, जिन्होंने संघ को एक बाग उपहार में दिया।

प्रारंभिक ग्रंथ इस कहानी का वर्णन करते हैं कि किस तरह बुद्ध के प्रमुख शिष्य सारिपुत्त और महामोग्गल्लान, जो दोनों ही श्रमण संजय बेलट्ठिपुत्त के छात्र थे, को अस्साजी ने बौद्ध धम्म की दीक्षा देकर बौद्ध संघ में प्रवेश कराया।इन स्रोतों से यह भी पता चलता है जब बुद्ध अपने पुराने घर कपिलवस्तु गए तब बुद्ध के पुत्र राहुल भी भिक्षु बनकर संघ से जुडते हैं।समय के साथ अन्य शाक्य लोग भी भिक्षु के रूप में संघ में शामिल होते गए, जैसे बुद्ध के चचेरे भाई आनंद, अनुरुद्ध, उपाली नाई, बुद्ध के सौतेले भाई नंदा और देवदत्त। इस बीच, बुद्ध के पिता शुद्धोधन ने अपने बेटे की शिक्षा सुनी और बौद्ध धर्म की दीक्षा ली।प्रारंभिक ग्रंथों में अनाथपिंडिका नामक एक एक महत्वपूर्ण शिष्य व व्यापारी का उल्लेख है, जो आरंभ में बुद्ध का एक प्रबल समर्थक बन गया था।कहा जाता है कि उसने जेत के उपवन (जेतवन) को बहुत अधिक खर्च करके संघ को उपहार में दिया था (थेरवाद विनय में हजारों स्वर्ण मुद्राओं की बात की गई है)।

fHk{kq.kh l?k dk xBu

महिला भिक्षुणियों (भिक्षुणियों) के समानांतर क्रम का गठन बुद्ध के समुदाय के विकास का एक और महत्वपूर्ण हिस्सा था।कुछ प्रमुख संस्करणों के अनुसार, बुद्ध ने अपनी सौतेली माँ महाप्रजापति गौतमी को धर्म की दीक्षा देने से अस्वीकार कर दिया था, क्योंकि उन्होंने अपने और कुछ अन्य महिलाओं के लिए दीक्षा का अनुरोध किया था।महाप्रजापति और उनके अनुयायियों ने अपने बाल मुंडवा लिए, वस्त्र धारण कर लिए और बुद्ध की यात्राओं में उनका अनुसरण करना शुरू कर दिया।अंततः बुद्ध ने भिक्षुणियों और भिक्षुओं के बीच संबंधों पर केंद्रित गुरुधर्म नामक आठ शर्तों के पालन को स्वीकार करने के बाद अपने शिष्य आनंद के अनुरोध पर महाप्रजापति को दीक्षा देना स्वीकार कर लिया।

ck) l axhfr

çFke ck) l axhfr

विभिन्न बौद्ध स्रोतों के अनुसार, बुद्ध की मृत्यु के तुरंत बाद शिक्षाओं को एकत्रित करने, सुनाने और याद करने के लिए प्रथम बौद्ध परिषद आयोजित की गई थी।परंपरागत रूप से कहा जाता है कि पहली बौद्ध संगीति बुद्ध के अंतिम निर्वाण के ठीक बाद आयोजित की गई थी, और राजा अजातशत्रु के संरक्षण में राजगृह (आज का राजगीर) के पास एक गुफा में उनके सबसे वरिष्ठ शिष्यों में से एक महाकाश्यप की अध्यक्षता में आयोजित की गई थी।इसका उद्देश्य बुद्ध के कथनों और संघ के अनुशासन या नियमों (विनय) को संरक्षित करना था।सुत्तों का पाठ आनंद ने किया था और विनय का पाठ उपालि ने किया था।आधुनिक विद्वानों द्वारा प्रथम परिषद के पारंपरिक विवरणों की ऐतिहासिकता पर विवाद है।

f}rh; ck) l axhfr

द्वितीय बौद्ध संगीति बुद्ध के परिनिर्वाण के 100 वर्ष बाद वैशाली के वालुकाराम में राजा कालाशोक के संरक्षण में आयोजित किया गया था। वैशाली के भिक्षु मौद्रिक दान स्वीकार सहित अनेक (लगभग 10) शिथिल प्रथाओं का पालन कर रहे थे जिसके कारण जब अन्य भिक्षुओं को इसका पता चला तो विवाद हो गया।पारंपरिक स्रोतों के अनुसार, विनय के बारे में इस विवाद के परिणामस्वरूप संघ में पहला विभाजन हुआ। लेकिन कुछ विद्वानों के अनुसार विभाजन उस समय नहीं हुआ था, बल्कि बाद में हुआ था।

r`rh; ck) l axhfr

थेरवाद की टिप्पणियों और इतिहास के अनुसार, तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन मौर्य राजा अशोक ने पाटलिपुत्र (आज के पटना) में, वरिष्ठ मोग्गलिपुत्त तिस्स के नेतृत्व में किया था। इसका उद्देश्य बौद्ध संघ को अवसरवादी गुटों और विधर्मी गैर–बौद्धों (तीर्थिकों) से शुद्ध करना था, जो केवल संघ को बढ़ते राजकीय संरक्षण के कारण बड़ी संख्या में संघ से जुड़े थे।इस कारण मोग्गलिपुत्ततिस्स के नेतृत्व में एक हजार भिक्षुओं की तीसरी संगीति बुलाई गई, सम्राट अशोक स्वयं इस संगीति में उपस्थित थे।

prFkk ck) l axhfr

चौथी बौद्ध परिषद के समय तक , बौद्ध धर्म भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग मतों में विभाजित हो चुका था।मिलिंदपन्हो, एक गैर–विहित पाली बौद्ध ग्रंथ, जिसमें राजा मिलिंद और बौद्ध आचार्य नागसेन के बीच दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व का एक संवाद है, यह बौद्ध समुदाओं में व्यापक रूप से पढ़ा जाता है।चौथी बौद्ध

परिषद लगभग 100 ई.पू. में जालंधर, पंजाब में आयोजित की गई थी ।पंजाब के उल्लेखनीय बौद्ध दार्शनिकों में असंग और वसुबंधु शामिल हैं, जिन्होंने चौथी शताब्दी ई. में कई संस्कृत ग्रंथ लिखे थे।

flgyh Fkjokn

दक्षिणी थेरवाद संप्रदाय ने श्रीलंका में पहली शती ईपू. में अलुविहार (अलोक लीना) में राजा वट्टगामनी–अभय के समय चौथी बौद्ध संगीति आयोजित की थी, जिसे वलगम्बा भी कहा जाता है।

d'ehjh lokfLrokn

कुषाण साम्राज्य में सर्वास्तिवाद परंपरा द्वारा एक और चौथी बौद्ध परिषद आयोजित की गई थी, और कहा जाता है कि इसे कुषाण सम्राट कनिष्क प्रथम (लगभग 158–176) ने 78 ई. में कश्मीर के कुंडलवन विहार (कुंडलबन) में बुलाया था। वसुमित्र को अध्यक्ष और अश्वघोष को उपाध्यक्ष चुना गया। कश्मीर की चौथी परिषद को थेरवादियों के लिए आधिकारिक नहीं माना जाता है।इस परिषद् की रिपोर्टें उन शास्त्रों में पाई जा सकती हैं जिन्हें महायान परंपरा में रखा गया था।

fofHkUu cks) lçnk;

समय के साथ बौद्ध धर्म के अंतर्गत बुद्ध की शिक्षाओं व उनकी व्याख्या तथा संघ के नियमों के पालन व नई मान्यताओं व व्यवस्थाओं के प्रचलन में मतभेद आदि के कारण अनेक संप्रदायों का विकास हुआ।बौद्ध धर्म में मुख्य रूप से तीन संप्रदायों का विकास हुआ –

1- **Fkjokn**–थेरवाद (''बुजुर्गों की शिक्षा''), जिसे ''दक्षिणी बौद्ध धर्म'' भी कहा जाता है, मुख्य रूप से श्रीलंका और दक्षिण पूर्व एशिया में प्रचलित है।यह परंपरा विशेषरूप से अपने मुख्य पाठ्य संग्रह, पालि साहित्य के अन्य रूपों के अध्ययन पर केंद्रित है। इस प्रकार पालि भाषा इसकी सामान्य भाषा और पवित्र भाषा है। इस परंपरा को कभी–कभी निकाय बौद्ध धर्म के एक भाग के रूप में दर्शाया जाता है, जो भारत में रूढ़िवादी बौद्ध परंपराओं को संदर्भित करता है जिन्होंने अपने त्रिपिटक संग्रह के ग्रंथों में महायान सूत्रों को स्वीकार नहीं किया ।इसे कभी–कभी प्रारंभिक बौद्ध स्कूलों में से एकमात्र जीवित स्कूल के रूप में भी देखा जाता है, जो श्रीलंकाई महाविहार परंपरा के माध्यम से स्थविर निकाय से निकला है।

2- **egk;ku**–पूर्वी एशियाई महायान (''महान वाहन''), पूर्वी एशियाई बौद्ध धर्म या ''पूर्वी बौद्ध धर्म'', पूर्वी एशिया में प्रमुख रूप से प्रचलित है और चीनी बौद्ध परंपराओं से निकला है जो हान राजवंश के काल में विकसित होना आरंभ हुआ था।यह परंपरा महायान सूत्रों (जिन्हें थेरवाद में प्रामाणिक या आधिकारिक नहीं माना जाता है) में पाई जाने वाली शिक्षाओं पर केंद्रित है, जो शास्त्रीय चीनी भाषा में चीनी बौद्ध कैनन में संरक्षित हैं।कई स्कूल और परंपराएँ हैं, जिनके अलग–अलग पाठ और केंद्र बिन्दु हैं।

3- **o t:;ku** –वज्रयान (''वज्र वाहन'') को मंत्रयान, तांत्रिक बौद्ध धर्म और गूढ़ बौद्ध धर्म के रूप में भी जाना जाता है।यह संप्रदाय अधिकांश ''उत्तरी बौद्ध धर्म'' में दिखाई देती है, जिसे ''भारत–तिब्बती बौद्ध धर्म'' (या सिर्फ ''तिब्बती बौद्ध धर्म'') भी कहा जाता है, लेकिन यह पूर्वी एशियाई बौद्ध धर्म के कुछ रूपों के साथ मिश्रित भी है।यह तिब्बत, भूटान, सिक्किम और हिमालयी क्षेत्र के साथ–साथ मंगोलिया, इनर मंगोलिया और रूसी गणराज्य बुरातिया, कलमीकिया और तुवा में प्रमुख रूप से प्रचलित है।इसे कभी–कभी एक अलग परंपरा के रूप में न मानकर महायान बौद्ध धर्म की व्यापक श्रेणी का हिस्सा माना जाता है। भारत–तिब्बती बौद्ध धर्म के मुख्य ग्रंथ कंजूर और तेनजूर हैं। प्रमुख महायान ग्रंथों के अतिरिक्त, यह शाखा बौद्ध तांत्रिक सामग्रियों के अध्ययन पर भी केंद्रित है।

प्रारंभिक बौद्ध समुदाय शुरू में दो मुख्य निकायों स्थविर (''बुजुर्ग'') और महासंघिक (''महान समुदाय'') में विभाजित हो गया। यह प्रारंभिक विभाजन या तो अशोक के शासनकाल (लगभग 268–232 ईसा पूर्व) में हुआ या उसके तुरंत बाद।बाद में, ये समूह सैद्धांतिक आधार पर विचार और व्यवहार (अपने स्वयं के मठवासी नियमों और सैद्धांतिक अभिधर्म ग्रंथों के साथ) के कई मतों में विभाजित हो गए।स्थविरों से सर्वास्तिवादी संप्रदाय, विभज्यवादी , थेरवादी, धर्मगुप्तक और पुद्गलवादी संप्रदाय उत्पन्न हुए। कुछ मुख्य संप्रदायों में सर्वास्तिवादी (लौकिक शाश्वतवादी), धर्मगुप्तक (धर्म के संरक्षक),लोकोत्तरवादी (पारलौकिकवादी), प्रज्ञाप्तिवादी (संकल्पनावादी), विभज्यवादी (''विश्लेषक'') और पुद्गलवादी (''व्यक्तिवादी'') शामिल थे। पारंपरिक विवरणों के अनुसार ये संप्रदाय

अंततः 18 या 20 विभिन्न मतों में विस्तृत हो गए।

1-6 cks) /kesZ dk çpkj

बौद्ध धर्म का सर्वाधिक व प्रचार–प्रसार मौर्य सम्राट अशोक के काल में हुआ था।सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म में दीक्षा ली थी तथा अपने जीवन के अंतिम समय तक बौद्ध धर्म व संघ में अत्यंत सक्रिय थे। अशोक के ही काल में तृतीय बौद्ध संगीति हुई थी।थेरवाद स्रोतों में अनुसार मौर्य सम्राट के संरक्षण में हुई तीसरी बौद्ध संगीति का एक अन्य उद्देश्य बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए विभिन्न देशों में बौद्ध प्रचारकों को भेजना भी था।ये प्रचारक पश्चिम में हेलेनिस्टिक राज्यों (विशेष रूप से पड़ोसी ग्रीको–बैक्ट्रियन साम्राज्य और संभवतः अशोक द्वारा पत्थर के स्तंभों पर छोड़े गए शिलालेखों के अनुसार और भी आगे), दक्षिण भारत, श्रीलंका और दक्षिण पूर्व एशिया (संभवतः पड़ोसी बर्मा) में भेजा गया था।यह तथ्य कि अशोक के समय बौद्ध संघ पूरे एशिया में प्रचार गतिविधियों में बड़ी संख्या में सम्मिलित था, पुरातात्विक स्रोतों द्वारा तथा कई भारतीय शिलालेख द्वारा प्रमाणित होता है, जो थेरवाद स्रोतों के वर्णनों से मेल खाते हैं।

महावंश के अनुसार , परिषद और अशोक ने विभिन्न क्षेत्रों में निम्नलिखित मिशनरियों को भेजा–

- मज्जांतिका ने कश्मीर तथा गांधार तक प्रचार का नेतृत्व किया।
- महादेव ने महिसमंडल (मैसूर, कर्नाटक) में प्रचार का नेतृत्व किया।
- रक्खिता ने वनवासी (तमिलनाडु) में प्रचार का नेतृत्व किया।
- योना (ग्रीक) बुजुर्ग धर्मरक्षिता ने अपरांतक (''पश्चिमी सीमा'', जिसमें उत्तरी गुजरात, काठियावाड़, कच्छ और सिंध शामिल हैं) तक प्रचार का नेतृत्व किया ।
- महाधर्मरक्षित ने महारथ (महाराष्ट्र) में प्रचार का नेतृत्व किया।
- महारक्खिता (महारक्षित थेरा) ने योना (यूनानियों) के देश में प्रचार का नेतृत्व किया, जो संभवतः ग्रीको–बैक्ट्रिया और शायद सेल्यूसिड क्षेत्र को संदर्भित करता है ।
- मज्जिमा थेरा ने हिमवंत क्षेत्र (उत्तरी नेपाल, हिमालय की तराई) में प्रचार का नेतृत्व किया।
- सोना थेरा और उत्तरा थेरा ने सुवन्नाभूमि (दक्षिण–पूर्व एशिया में कहीं, संभवतः म्यांमार या थाईलैंड) में प्रचार का नेतृत्व किया।
- महिंदा (महेंद्र–अशोक के पुत्र) अपने शिष्यों उत्थिया, इत्तिया, संबाला और भद्दसला के साथ लंकाद्वीप (श्रीलंका) गए।

;wuku esa cks) /kesZ dk çlkj

अशोक के कुछ शिलालेखों में बौद्ध धर्म को हेलेनिस्टिक दुनिया भर में प्रचारित करने के उनके प्रयासों का वर्णन है, जिसने उस समय भारत की सीमाओं से लेकर ग्रीस तक एक निर्बाध सांस्कृतिक सातत्य का निर्माण किया था। इसके अलावा, महावंश (बारहवीं) के अनुसार, अशोक के कुछ दूत यूनानी (योना) थे, विशेष रूप से धम्मरक्खिता नामक एक।उन्होंने यूनानी भाषा के साथ–साथ अरामी भाषा में भी आदेश जारी किए। उनमें से एक, जो कंधार में पाया गया, यूनानी समुदाय के लिए ''धर्मपरायणता'' (धर्म के लिए यूनानी शब्द यूसेबिया का उपयोग करते हुए) को अपनाने की वकालत करता है।लिंसन उस अवधि के आसपास हेलेनिस्टिक क्षेत्रों में बौद्ध समुदायों की उपस्थिति का संकेत करते हैं, विशेष रूप से अलेक्जेंड्रिया में, जिसका उल्लेख अलेक्जेंड्रिया के क्लेमेंट ने किया है, और थेरेप्यूटे के पूर्व–ईसाई मठवासी आदेश (संभवतः पाली शब्द ''थेरवाद'' का अपभ्रंश), जिन्होंने लगभग पूरी तरह से बौद्ध धर्म की शिक्षाओं और प्रथाओं से प्रेरणा ली होगी और वे पश्चिम में अशोक के दूतों के वंशज भी हो सकते हैं।साइरेन के हेगिसियस और पाइरो जैसे दार्शनिकों को कभी–कभी बौद्ध शिक्षाओं से प्रभावित माना जाता है।टॉलेमी के काल के बौद्ध शवधानों के पत्थर भी अलेक्जेंड्रिया में पाए गए हैं, जिन पर धर्म चक्र के चित्रण हैं।अलेक्जेंड्रिया में बौद्धों की उपस्थिति से यह निष्कर्ष भी निकाला गया है कि उन्होंने मठवासी ईसाई धर्म को प्रभावित किया।दूसरी शताब्दी ई. में, ईसाई सिद्धांतवादी, अलेक्जेंड्रिया के

क्लेमेंट ने ग्रीक विचार पर बैक्ट्रियन श्रमणों और भारतीय जिम्नोसोफिस्टों के प्रभाव को मान्यता दी।

Jhyadk esa ckS) /keZ dk çlkj

श्रीलंका के ऐतिहासिक स्रोत दीपवंश के अनुसार अशोक के बेटे महिंदा (महेंद्र) ने दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व इस द्वीप में बौद्ध धर्म का प्रचार किया था।अशोक की बेटी संघमित्रा ने भी श्रीलंका में भिक्खुनी संघ की स्थापना की, साथ ही अपने साथ पवित्र बोधि वृक्ष का एक पौधा भी लाया जिसे बाद में अनुराधापुरा (अनुराधापुरम) में लगाया गया।इन दोनों को श्रीलंकाई थेरवाद के संस्थापकों के रूप में देखा जाता है। कहा जाता है कि उन्होंने राजा देवनमपिया तिस्सा (307–267 ईसा पूर्व) और कई कुलीन लोगों को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था।तिस्सा ने शहर में बौद्ध समुदाय को एक शाही पार्क दान किया, जो महाविहार परंपरा की शुरुआत थी। महिंदा श्रीलंका के सबसे पुराने बौद्ध स्थलों में से एक मिहिंताले के स्थल से जुड़ा हुआ है।मिहिंताले में कई गुफाएँ शामिल हैं जिनका उपयोग शुरुआती श्रीलंकाई संघ द्वारा किया गया होगा। बुद्ध की आरंभिक प्रतिमांकन राजा वासभ (65–109 ईसवी) के शासनकाल में मिलते हैं। प्राचीन श्रीलंका में प्रमुख बौद्ध मठ और संप्रदाय महाविहार, अभयगिरि और जेतवन थे।युद्ध और अकाल के समय में शिक्षा को सुरक्षित रखने के लिए पाली ग्रंथों को पहली शताब्दी ईसा पूर्व के दौरान लिखा गया था।यह मध्य इंडो–आर्यन भाषा में जीवित रहने वाला बौद्ध ग्रंथों का एकमात्र पूर्ण संग्रह है। यह महाविहार संप्रदाय की परंपरा को दर्शाता है।बाद में थेरवाद के पाली महाविहार टिप्पणीकारों जैसे बुद्धघोष (4 थी– 5 वीं शताब्दी) और धम्मपाल (5वीं–6ठी शताब्दी) ने पारंपरिक श्रीलंकाई टिप्पणी साहित्य (अट्ठकथा) को व्यवस्थित किया।

तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध धर्म के आगमन के बाद से श्रीलंका (सिंहल द्वीप) बौद्ध विद्वता और प्रथाओं का केंद्र रहा है, जिसने बुद्धघोष जैसे प्रख्यात विद्वानों को जन्म दिया और विशाल पालि साहित्य को संरक्षित किया।अपने अधिकांश ऐतिहासिक काल में श्रीलंका के राजाओं ने द्वीप के बौद्ध संस्थानों के रखरखाव और पुनरुद्धार में एक प्रमुख भूमिका निभाई है।19वीं शताब्दी के दौरान, द्वीप पर एक आधुनिक बौद्ध पुनरुत्थान हुआ, जिसने बौद्ध शिक्षा को बढ़ावा दिया।भारत के साथ लंका के घनिष्ठ संबंधों के कारण, सिंहली बौद्ध धर्म आंशिक रूप से हिंदू धर्म और स्वदेशी मान्यताओं से प्रभावित रहा है और कुछ बौद्ध हिंदुओं के साथ समान विश्वास साझा करते हैं।यद्यपि महायान बौद्ध धर्म ने श्रीलंका में कुछ प्रभाव प्राप्त किया क्योंकि इसका अध्ययन अभयगिरि और जेतवन में किया गया था, महाविहार संप्रदाय पराक्रमबाहु प्रथम (1153–1186) के शासनकाल के बाद श्रीलंका में प्रमुख हो गया, जिन्होंने अभयगिरि और जेतवन परंपराओं को समाप्त कर दिया।पहली शताब्दी ईसा पूर्व तक, बौद्ध धर्म बस्ती के मुख्य क्षेत्रों में अच्छी तरह से स्थापित हो चुका था।जैसे ही सिंहली लोगों ने बौद्ध धर्म को अपनाया, इसने बौद्ध–पूर्व पंथों, अनुष्ठानों और समारोहों को आत्मसात कर लिया।बौद्ध धर्म श्रीलंका को एक एकीकृत संस्कृति के साथ एक राजनीतिक शक्ति के तहत एकीकृत करने में एक शक्तिशाली कारक बन गया।

महावंश के अनुसार ग्रीको–बैक्ट्रियन राजा मेनांडर (165/155–130 ईसा पूर्व) के शासनकाल में महाधर्मरक्षित नामक एक यवन (ग्रीक) प्रमुख भिक्षु ने ''अलसंद्रा के योना शहर'' (काकेशस में अलेक्जेंड्रिया, आधुनिक काबुल, अफगानिस्तान से लगभग 150 किलोमीटर (93 मील) उत्तर में) से 30,000 बौद्ध भिक्षुओं को अनुराधापुरा में रुवनवेलिसया स्तूप के समर्पण के लिए श्रीलंका लाया था ।यह सिंहल राजा दुतुगामुनु (161 ईसा पूर्व से 137 ईसा पूर्व) के शासनकाल में हुआ था, जो उत्तर पर विजय प्राप्त करने वाले तमिलों को हराकर द्वीप पर विभिन्न श्रीलंकाई राज्यों को राजनैतिक रूप से वास्तव मेंएकजुट करने वाले पहले व्यक्ति थे।

mÙkj o mÙkj if'pe Hkkjr esa ckS) /keZ dk çlkj

बौद्ध धर्म हिन्द–यवन और हिन्द–बख्त्रि राजाओं के अधीन फला–फूला।सबसे प्रसिद्ध इंडो–ग्रीक राजाओं में से एक मेनांडर (शासनकाल लगभग 160–135 ईसा पूर्व) है।संभव है कि उसने बौद्ध धर्म अपनाया हो क्योंकि महायान परंपरा में उसे राजा अशोक या बाद के कुषाण राजा कनिष्क के बराबर, धर्म के महान लाभार्थियों में से एक के रूप में प्रस्तुत किया गया है।मेनांडर के सिक्कों पर आठ तीलियों वाले धर्म चक्र की आकृति है, जो एक आरंभिक बौद्ध प्रतीक है। पहली शताब्दी ईसा पूर्व के काल में बुद्ध के पहले मानवरूपी चित्रण हिन्द–यवनों द्वारा शासित भूमि में यथार्थवादी शैली में पाए जाते हैं जिसे ग्रीको–बौद्ध के रूप में जाना जाता है।बुद्ध के चित्रण में कई शैलीगत तत्व ग्रीक प्रभाव की ओर इशारा करते हैं : दोनों कंधों को ढकने वाला ग्रीको–रोमन टोगा जैसा

लहराता वस्त्र (अधिक सटीक रूप से, इसका हल्का संस्करण, ग्रीक हिमेशन),सीधी खड़ी आकृतियां, शैलीबद्ध भूमध्यसागरीय घुंघराले बाल और चोटी (उष्णिशा) जो स्पष्ट रूप से बेल्वेडियर अपोलो (330 ईसा पूर्व) की शैली से ली गई थी, और चेहरों की मापी गई गुणवत्ता, सभी को मजबूत कलात्मक यथार्थवाद के साथ प्रस्तुत किया गया था।

कुषाणों के काल में उत्तरी भारत, पाकिस्तान और अफगानिस्तान के अधिकांश हिस्सों को अपने में कुषाणों ने बैक्ट्रिया और हिन्द–यवनों की हेलेनिस्टिक संस्कृति के तत्वों को अपनाया।कुषाण शासन के काल में , गांधार बौद्ध धर्म अपने प्रभाव के चरम पर था और बड़ी संख्या में बौद्ध केंद्रों का निर्माण या जीर्णोद्धार किया गया था।सम्राट कनिष्क (128–151 ई.) को बौद्ध धर्म के समर्थन के लिए विशेष रूप से जाना जाता है।उनके शासनकाल के दौरान, गंधार शहर पेशावर (संस्कृतः पुरुषपुरा) में स्तूप और मठ बनाए गए, जिसे उन्होंने राजधानी के रूप में इस्तेमाल किया ।कुषाण शासन के समर्थन और व्यापार मार्गों के खुलने से गंधार क्षेत्र बौद्ध धर्म रेशम मार्ग (सिल्क रोड) के साथ मध्य एशिया, तारिम बेसिन और इस तरह चीन तक फैल गया।बौद्ध परंपरा के अनुसार कनिष्क ने गांधार या कश्मीर में सर्वास्तिवाद परंपरा के लिए एक प्रमुख बौद्ध परिषद का आयोजन किया था ।कुषाणों के बाद हूणों ने इस क्षेत्र में लगभग 250–300 वर्ष (440–670 ई) तक शासन किया ।अधीन, गांधार बौद्ध धर्म बल्ख (बैक्ट्रिया) जैसे शहरों में फलता–फूलता रहा, जैसा कि 7वीं शताब्दी में इस क्षेत्र का दौरा करने वाले जुआन त्सांग ने टिप्पणी की थी। जुआन त्सांग (ह्वेन सांग) ने लिखा है कि शहर में सौ से अधिक बौद्ध मठ थे, जिनमें नव विहार के साथ–साथ कई स्तूप और भिक्षु शामिल थे। हूणों के पतन के बाद बौद्ध धर्म का भी गांधार (पेशावर बेसिन में) में पतन हो गया, हालाँकि यह पाकिस्तान की स्वात घाटी, गिलगिट, कश्मीर और अफगानिस्तान (बामियान जैसे स्थलों) जैसे आस–पास के क्षेत्रों में फलता–फूलता रहा।

e/; ,f'k;k esa cks) /keZ dk çlkj

मध्य एशिया सिल्क रोड (रेशम मार्ग) के नाम से प्रसिद्ध चीन, भारत, मध्य पूर्व और भूमध्यसागरीय राज्यों के बीच व्यापारिक मार्ग का केंद्र था।बौद्ध धर्म इस क्षेत्र में दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से उपस्थित था।आरंभ में मध्य एशिया में बौद्ध धर्म फैलाने के अपने प्रयासों में सबसे सफल रहा। खोतान साम्राज्य इस क्षेत्र के सबसे आरंभिक बौद्ध साम्राज्यों में से एक था और इसने भारत से चीन तक बौद्ध धर्म के प्रसार में विशेष भूमिका निभाई की।कुषाण साम्राज्य के काल में इस क्षेत्र के अधिकांश भाग में बौद्ध धर्म को उनके समर्थन ने बौद्ध धर्म को पूरे मध्य एशिया में इस क्षेत्र के व्यापार मार्गों के साथ आसानी से प्रसारित होने में सहायता की।कुषाणों के अधीन पहली शताब्दी ई.पू. के दौरान, इस क्षेत्र में सर्वास्तिवाद संप्रदाय का विकास हुआ, कुछ भिक्षु अपने साथ महायान शिक्षाएँ भी लाए।बौद्ध धर्म अंततः आधुनिक पाकिस्तान, कश्मीर, अफगानिस्तान, उजबेकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान और ताजिकिस्तान तक पहुँच गया।जैसे–जैसे बौद्ध धर्म इनमें से कई देशों में पहुँचा, बौद्धों ने स्थानीय भाषाओं में ग्रंथों का अनुवाद और निर्माण करना शुरू कर दिया, जैसे खोतानीस (एक मध्य ईरानी भाषा), सोग्डियन (ईरानी भी), उइघुर (तुर्की), तांगुत, तिब्बती और चीनी।

सातवीं शताब्दी के मध्य में, ईरानी पठार पर अरबों की विजय के बाद अफगानिस्तान पर मुस्लिम विजय और बाद में मध्य एशिया में गजनवी साम्राज्य की स्थापना (लगभग 977–1186) के कारण इनमें से अधिकांश क्षेत्रों से बौद्ध धर्म का पतन हुआ और अंततः वह लुप्त हो गया। बौद्ध धर्म मध्य एशिया के पूर्वी भाग में भी फला–फूला, जैसे तारिम बेसिन।भारतीय और ईरानी इस क्षेत्र के प्रमुख शहरों जैसे काशगर और खोतान में रहते थे।इस क्षेत्र में बौद्ध कला के अत्यंत समृद्ध कार्य और साथ ही बौद्ध ग्रंथ जैसे डुनहुआंग में पाए गए हैं।सेरिंडियन कला गांधार शैली से अत्यंत मिलती–जुलती है, और गांधारी लिपि खरोष्ठी में ग्रंथ भी पाए गए हैं।8वीं शताब्दी में उइगरों ने इस क्षेत्र पर विजय प्राप्त की और स्थानीय ईरानी लोगों के साथ घुलमिलकर इस क्षेत्र की बौद्ध संस्कृति को आत्मसात कर लिया।बाद में उन्हें मंगोल युआन राजवंश ने अपने में समाहित कर लिया।

frCcr esa cks) /keZ dk çpkj

बौद्ध धर्म तिब्बत में लगभग 7वीं शताब्दी में पँहुचा।तिब्बत के दक्षिण में पूर्वी भारत के बंगाल क्षेत्र के पाल साम्राज्य के विश्वविद्यालयों से महायान और वज्रयान का मिश्रण प्रमुख रूप से विद्यमान था ।सर्वास्तिवादी प्रभाव दक्षिण पश्चिम (कश्मीर) और उत्तर पश्चिम (खोतान) से आया। उनके ग्रंथों ने तिब्बती बौद्ध धर्म के ग्रंथों में अपना स्थान पाया, जिससे तिब्बतियों को हीनयान के लगभग सभी प्राथमिक स्रोत मिल गए।इस स्कूल का

एक उप–संप्रदाय, मूलसर्वास्तिवाद तिब्बती विनय का स्रोत था।चौन बौद्ध धर्म को चीन से पूर्वी तिब्बत के रास्ते लाया गया और इसने अपना विशेष प्रभाव छोड़ा, लेकिन आरंभिक राजनीतिक घटनाओं के कारण इसका महत्व कम हो गया ।

phu e: ck) /ke: dk çpkj

चीन में बौद्ध धर्म हान राजवंश (206 ईसा पूर्व–220 ई.) के काल में पँहुच चुका था तथा लगभग 50 ई. तक अस्तित्व में था, किन्तु आगे के राजवंशों के काल में यह विकसित नहीं हो पाया था। चीनी भाषा में अनुवादित पहले प्रलेखित बौद्ध ग्रंथ पार्थियन एन शिगाओ (148–180 ई.) के हैं।पहले ज्ञात महायान शास्त्रीय ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद कुषाण भिक्षु लोकक्षेमा द्वारा लुओयांग में 178 और 189 ई. के बीच किया गया था।शुरुआती अनुवादकों को विदेशी बौद्ध अवधारणाओं को चीनी लोगों तक पहुँचाने में कठिनाई का सामना करना पड़ा और उन्हें समझाने के लिए ताओवादी शब्दावली का प्रयोग करना पड़ा।बाद के अनुवादकों जैसे कुमारजीव (334–413 ई.) ने चीनी बौद्ध धर्म के अनुवाद के तरीकों में काफी सुधार किया। बौद्ध धर्म का विकास शुरुआती तांग राजवंश (618–907 ई.) के दौरान जारी रहा।इसी राजवंश के दौरान चीनी भिक्षु जुआन त्सांग (ह्वेनसांग) ने भारत की यात्रा की और 657 बौद्ध ग्रंथों के साथ–साथ अवशेष और मूर्तियाँ भी साथ लाए।उन्होंने तांग की राजधानी चांगआन (आज का शीआन) में एक प्रसिद्ध वि।लय की स्थापना की, जो योगकारा संप्रदाय के ग्रंथों पर केंद्रित था।तांग के दौरान ही भारत से चीनी गूढ़ बौद्ध धर्म की शुरुआत हुई।तांग राजवंश ने चौन बौद्ध धर्म (जेन) का भी विकास देखा, जिसमें माजू दाओई और लिंजी यिक्सुआन जैसे महान जेन गुरु थे।बाद के तांगराजवंश के काल में बौद्ध विरोधी उत्पीड़न के दौरान चीनी बौद्ध धर्म को झटका लगा।सोंग राजवंश (960–1279) के काल में बौद्ध धर्म पुनः उभरा, तथा चीनी चौन ने कोरियाई और जापानी बौद्ध धर्म को भी प्रभावित किया।युआन राजवंश के काल में तिब्बती बौद्ध धर्म राज्य धर्म बन गया।मिंग (1368–1644ई) के काल में, चौन संप्रदाय चीन में प्रमुख परंपरा बन गया और सभी भिक्षु चौन से संबद्ध थे।17वीं शताब्दी में, बौद्ध धर्म चीनी प्रवासियों द्वारा ताइवान में फैलाया गया था।

fo;ruke e: ck) /ke: dk çpkj

बौद्ध धर्म वियतनाम में वास्तव में कब आया यह निश्चित नहीं हैं, किन्तु बौद्ध धर्म भारत के माध्यम से तीसरी या दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में या वैकल्पिक रूप से पहली या दूसरी शताब्दी के दौरान चीन से आया हो सकता है। महायान बौद्ध धर्म दूसरी शताब्दी ईस्वी में वियतनाम में स्थापित हो चुका था।9 वीं शताब्दी तक, प्योर लैंड और थीएन (जेन) दोनों ही प्रमुख वियतनामी बौद्ध संप्रदाय थे। चंपा के दक्षिणी साम्राज्य में, 15वीं शताब्दी तक हिंदू धर्म, थेरवाद और महायान सभी प्रचलित थे। उत्तर से आक्रमण के कारण बौद्ध धर्म के चीनी–आधारित बौद्ध धर्म का प्रभुत्व हो गया।हालाँकि थेरवाद बौद्ध धर्म वियतनाम के दक्षिण में मौजूद है। इस प्रकार वियतनामी बौद्ध धर्म चीनी बौद्ध धर्म के समान है और कुछ हद तक सोंग राजवंश के बाद चीनी बौद्ध धर्म की संरचना को दर्शाता है।

dkfj;k e: ck) /ke: dk çpkj

कोरिया में बौद्ध धर्म का आगमन लगभग 372 ई.पू. में तीन राजवंशों में काल में हुई थी। 6वीं शताब्दी के दौरान, कई कोरियाई भिक्षुओं ने बौद्ध धर्म का अध्ययन करने के लिए चीन और भारत की यात्रा की और विभिन्न कोरियाई बौद्ध संप्रदाय की स्थापना की।उत्तर–दक्षिण राज्य काल (688–926) के दौरान कोरिया में बौद्ध धर्म समृद्ध हुआ।गोरियो काल (918–1392) में बौद्ध धर्म लोकप्रिय रहा, विशेष रूप से सेओन (जेन) बौद्ध धर्म। हालाँकि, जोसियन काल के कन्फ्यूशियन यी राजवंश के दौरान, बौद्ध धर्म को 15वीं शताब्दी में मठों की भूमि की जब्ती, मठों के बंद होने और अभिजात वर्ग द्वारा समन्वय पर प्रतिबंध का सामना करना पड़ा।

tkiku e: ck) /ke: dk çpkj

6वीं शताब्दी में कोरियाई भिक्षुओं द्वारा सूत्र और बुद्ध की एक प्रतिमा लाए जाने के बाद जापान में बौद्ध धर्म की प्रसार हुआ। नारा काल (710–794) के दौरान, सम्राट शोमू ने अपने पूरे राज्य में मंदिरों के निर्माण का आदेश दिया। राजधानी नारा में बौद्ध संप्रदायों का भी प्रसार हुआ, जिन्हें नांटो रोकुशू (छह नारा संप्रदाय) के रूप में जाना जाता है। इनमें से सबसे प्रभावशाली केगॉन संप्रदाय (चीनी हुआयन से) है।नारा के अंतिम वर्षों में, कुकाई (774–835) और सैचो (767–822) जैसे प्रमुख व्यक्तियों ने क्रमशः शिंगोन और तेंदई के प्रभावशाली

जापानी संप्रदायों की स्थापना की।इन संप्रदायों के लिए एक महत्वपूर्ण सिद्धांत होंगाकू (सहज जागृति या मूल ज्ञान) था, एक ऐसा सिद्धांत जो बाद के सभी जापानी बौद्ध धर्म के लिए प्रभावशाली था।बौद्ध धर्म ने शिंटो के जापानी धर्म को भी प्रभावित किया, जिसमें बौद्ध तत्व शामिल थे।

exkfy;k e cks) /ke dk çpkj

खानाबदोश साम्राज्यों के शासक जैसे कि जियोनगनू (209 ईसा पूर्व–93 ईसवी), जियानबेई (93–234), रौरन खगानाटे (4वीं शती–6वीं शती) और गोकतुर्क (पहली सहस्राब्दी ईसवी के मध्य तक) के काल में अनेक बौद्ध प्रचारक के आगमन के बाद अनेक बौद्ध मंदिरों का निर्माण हुआ ।बौद्ध धर्म अभिजात वर्ग के बीच प्रचलित था और जियानबेई के नेतृत्व वाले उत्तरी वेई राजवंश (386–535) और खितान के नेतृत्व वाले लियाओ राजवंश (916–1125) के राजाओं द्वारा इसका संरक्षण किया गया था।खितान अभिजात वर्ग बौद्ध धर्म को उइगर खगानाटे की संस्कृति के रूप में मानता था जो लियाओ राजवंश के उदय से पहले मंगोलियन स्टेप्स पर हावी था।जुरचेन के नेतृत्व वाले जिन राजवंश (1115–1234) के सम्राट भी बौद्ध धर्म को अपनी संस्कृति का हिस्सा मानते थे। 13वीं और 14वीं शताब्दी में युआन राजवंश (1271–1368) के सम्राटों ने तिब्बती बौद्ध धर्म अपना लिया।युआन राजवंश के संस्थापक कुबलई खान ने तिब्बती बौद्ध धर्म के शाक्य संप्रदाय के लामा ड्रोगोन चोग्याल फगपा को अपने पूरे राज्य में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए आमंत्रित किया, बाद में बौद्ध धर्म युआन राजवंश का राजकीय धर्म बन गया।

nf{k.k&iwoZ esa cks) /ke dk çpkj

लगभग 500 ईसा पूर्व से ही भारतीय संस्कृति का दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों पर प्रभाव था ।भूमि और समुद्री व्यापार मार्ग भारत को इस क्षेत्र से जोड़ते थे और दक्षिण–पूर्व एशिया के भारतीयकरण की अवधि के दौरान हिंदू और बौद्ध दोनों ही मान्यताएँ वहाँ प्रभावशाली हो गईं।पालि और संस्कृत भाषाएँ और भारतीय लिपियाँ, साथ ही थेरवाद और महायान बौद्ध धर्म, ब्राह्मणवाद और हिंदू धर्म, सीधे संपर्क से और धार्मिक ग्रंथों, रामायण और महाभारत जैसे भारतीय साहित्य के माध्यम से प्रसारित हुए।5वीं से 13वीं शताब्दी तक, दक्षिण–पूर्व एशिया में कई शक्तिशाली राज्य थे जो हिंदू धर्म के साथ–साथ बौद्ध धर्म और बौद्ध कला को बढ़ावा देने में सक्रिय थे। दक्षिण–पूर्व के अनेक राज्यों में बौद्ध प्रभाव भारतीय उपमहाद्वीप से सीधे समुद्र के रास्ते आया, जिसके बाद उन क्षेत्रों में महायान धर्म का प्रचार हुआ, जैसे फुनान, खमेर साम्राज्य, सुखोथाई का थाई साम्राज्य, कलिंग साम्राज्य(जावा), श्रीविजय साम्राज्य, मातरम (जावा) और माजापहित (जावा) द्वीप राज्य। महायान बौद्ध धर्म और हिंदू धर्म खमेर साम्राज्य (802–1431) के मुख्य धर्म थे। खमेर के शासन में, कंबोडिया और पड़ोसी थाईलैंड में हिंदू और बौद्ध दोनों तरह के कई मंदिर बनाए गए। इंडोनेशिया के जावा द्वीप में, कलिंगा साम्राज्य (6–7वीं शताब्दी) जैसे भारतीयकृत साम्राज्य बौद्ध ग्रंथों की खोज करने वाले चीनी भिक्षुओं के लिए गंतव्य थे।मलय श्रीविजय (650–1377), सुमात्रा द्वीप पर केंद्रित एक समुद्री साम्राज्य ने महायान और वज्रयान बौद्ध धर्म को अपनाया तथा जावा, मलाया और अन्य क्षेत्रों में जिन पर उन्होंने विजय प्राप्त की वहाँ बौद्ध धर्म का प्रसार किया।जैसे–जैसे श्रीविजय का विस्तार हुआ, बौद्ध धर्म भी फला–फूला और स्थानीय समन्वयवाद का हिस्सा बन गया, जिसमें हिंदू धर्म और अन्य स्वदेशी परंपराओं जैसे कई अलग–अलग धर्म शामिल थे। जावा द्वीप के एक अन्य राज्य मातरम साम्राज्य (732–1006), जो श्रीविजय का प्रमुख प्रतिद्वंद्वी था ने भी महायान बौद्ध संस्कृति को बढ़ावा दिया, वे अपने स्मारकीय मंदिर निर्माण के लिए जाने जाते हैं, विशेष रूप से विशाल बोरोबुदुर, साथ ही कलासन, सेवु और प्रम्बानन। इंडोनेशियाई बौद्ध धर्म, हिंदू धर्म के साथ–साथ, माजापहित साम्राज्य (1293–1527) के तहत फलता–फूलता रहा, लेकिन बाद में इस्लाम ने इसका स्थान ले लिया।

1-7 lkjk”k

उपरोक्त इकाई से बौद्ध धर्म की उत्पत्ति, उसके दर्शन व उसके विस्तार का इतिहास ज्ञात हुआ, जिसमें लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व नेपाल की तराई में स्थित कपिलवस्तु के शाक्य गणराज्य के राजा शुद्धोदन के घर जन्म लेने वाले सिद्धार्थ गौतम द्वारा ज्ञान की खोज में गृहत्याग व कठोर तपस्या कर महात्मा बुद्ध बनने व बौद्ध धर्म का प्रवर्तन करने का इतिहास ज्ञात हुआ। लगभग 29 वर्ष की वैभवशाली व ऐश्वर्यपूर्ण जीवन जीने तथा विवाह व पुत्र प्राप्ति के बाद भी दुःख व पीड़ा से मुक्ति पाने के उनकी जिज्ञासा ने उनके मन में संसार के प्रति वैराग्य भर दिया।ज्ञान की खोज में गृहत्याग के बाद गया में निरंजना नदी के तट पर पीपल वृक्ष के नीचे कठोर

तपस्या के बाद उन्हें दुःख व तृष्णा से मुक्ति पाने मार्ग मिला, जिसके बाद उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया, तथा बुद्ध कहलाये, जिसका अर्थ है 'जागा हुआ अथवा जिसे ज्ञान प्राप्त हो गया'।दुख व पीड़ा से मुक्ति व निर्वाण की प्राप्ति के लिए महात्मा बुद्ध द्वारा बताए गए चार आर्य सत्य व अष्टांगिक मार्ग ही बौद्ध धर्म के दर्शन का आधार बने। ज्ञान प्राप्ति के बाद उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन निर्वाण के मार्ग को समस्त जन साधारण तक पँहुचाने के लिए यात्राएं की व अनेक शिष्य बनाए ।महात्मा बुद्ध ने अपना पहला उपदेश वाराणसी के समीप सारनाथ में दिया।महात्मा बुद्ध के अनेक शिष्य सन्यास लेकर भिक्षु भी बने, जब उनकी संख्या बढ़ी तब बौद्ध संघ का निर्माण हुआ, जिसमें आरंभ में इसमें केवल पुरुष ही थे, किन्तु बाद में स्त्रियों को भी संघ में सम्मिलित किया गया। ये बौद्ध भिक्षु व भिक्षुणी गौतम बुद्ध के ज्ञान व शिक्षाओं को संग्रहीत व प्रचारित करने का कार्य करते थे।महात्मा बुद्ध की मृत्यु (महापरिनिर्वाण) के बाद भी उनके द्वारा बनाया गया संघ उनके ज्ञान को पहले संग्रहीत करता है।लगभग 2–3 शताब्दियों के बाद मौर्य सम्राट अशोक द्वारा बौद्ध धर्म अपनाने के बाद राज्य के संरक्षण में बौद्ध प्रचारकों को राज्य की सभी दिशाओं में तथा राज्य से बाहर बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए भेजा जाता है। जिसके बाद बौद्ध धर्म का प्रभाव हमें विश्व के अन्य भागों में भी दिखने लगता है।इन हिन्द–यवन, कुषाण व अनेक भारतीय शासकों द्वारा बौद्ध का धर्म संरक्षण व प्रसार में योगदान रहा।इसी के फलस्वरूप भविष्य में भारत के बाहर श्रीलंका, मध्य एशिया, म्यांमार, चीन, मगोलिया, जापान, कोरिया, वियतनाम, कंबोडिया, इंडोनेशिया, मलेशिया, तिब्बत आदि देशों में भी बौद्ध धर्म का बड़ा केंद्र विकसित होता है, जहां के अनेक राजवंशों व संस्कृति में बौद्ध धर्म को अंगीकृत किया, जिसके बाद बौद्ध धर्म को एक वैश्विक धर्म के रूप में स्थापित हुआ।आज बौद्ध धर्म विश्व में ईसाई, इस्लाम व हिन्दू धर्म के बाद प्रचलित तीसरा सबसे बड़ा धर्म (संप्रदाय) है।

1-5 ckS/k i"u

1. बौद्व धर्म के विस्तार की स्थिति का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

1-6 lUnHkZ xzUFk

1. Cousins, L.S. (1996). "The Dating of the Historical Buddha: A Review Article". Journal of the Royal Asiatic Society. 3. 6 (1):. doi:10.1017/s1356186300014760. ISSN 1356-1863.
2. Das, Sarat Chandra (1882). Contributions on the Religion and History of Tibet. First published in: Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol. LI. Reprint: Manjushri Publishing House, Delhi. 1970,
3. Reynolds, Frank E.; Hallisey, Charles (2005), "Buddha", in Jones, Lindsay (ed.), MacMillan Encyclopedia of Religion Vol.2, MacMillan
4. Strong, J.S. (2001). The Buddha: A Beginner's Guide, Oneworld Publications, ISBN 978-1-78074-054-6
5. Strong, J.S. (2015). Buddhisms: An Introduction, Oneworld Publications, ISBN 978-1-78074-506-0
6. Strong, J.S. (2001). The Buddha: A Beginner's Guide, Oneworld Publications, ISBN 978-1-78074-054-6
7. Narada (1992). A Manual of Buddhism, Buddha Educational Foundation, ISBN 978-967-9920-58-1
8. Powers, John (2013), A Concise Encyclopedia of Buddhism, Oneworld Publications, ISBN 978-1-78074-476-6
9. Hirakawa, Akira (1990). A History of Indian Buddhism: From Śākyamuni to Early Mahāyāna, University of Hawaii Press,

10. Conze, Edward, trans. (1959), Buddhist Scriptures, London: Penguin
11. Schumann, Hans Wolfgang (2003), The Historical Buddha: The Times, Life, and Teachings of the Founder of Buddhism, Motilal Banarsidass, ISBN 978-81-208-1817-0
12. Anālayo, Bhikkhu (2011). A Comparative Study of the Majjhima-nikāya Volume 1 (Introduction, Studies of Discourses 1 to 90.
13. Ñāṇamoli Bhikkhu (1992), The Life of the Buddha: According to the Pali Canon, Buddhist Publication Society
14. Bodhi, Bhikkhu (2005), In the Buddha's Words: An Anthology of Discourses from the Pali Canon, Simon and Schuster
15. "Dhammacakkappavattana Sutta: Setting the Wheel of Dhamma in Motion". Access to Insight. Translated by Bhikkhu, Thanissaro. 1993
16. Boisselier, Jean (1994). The wisdom of the Buddha. New York: Harry N. Abrams. ISBN 0-8109-2807-8. OCLC 31489012.
17. Anālayo, Bhikkhu (2016). The Foundation History of the Nun's Order. projekt verlag, Bochum/Freiburg. ISBN 978-3-89733-387-1.
18. Harvey, Peter (2013). An Introduction to Buddhism: Teachings, History and Practices (PDF) (2nd ed.), New York: Cambridge University Press, ISBN 978-0-521-85942-4
19. Berkwitz, Stephen C. South Asian Buddhism: A Survey, Routledge, 2012,
20. Keown, Damien (2013). Buddhism: A Very Short Introduction, Oxford University Press, ISBN 978-0-19-966383-5
21. Vetter, Tilmann (1988). The Ideas and Meditative Practices of Early Buddhism. BRILL. ISBN 90-04-08959-4.
22. Jermsawatdi, Promsak (1979). Thai Art with Indian Influences, Abhinav Publications

bdkbZ&2 dyk ,oa okLrqdyk&flfxfj;k efUnj ,oa :oUofy ixkMk

bdkbZ dh :ijs[kk

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 खोज व संरक्षण

2.3 सिगिरिया का स्थल विन्यास

2.4 चित्रकला

2.5 रूवैनवेलि पगोडा

2.6 सारांश

2.7 बोध प्रश्न

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

2-0 izLrkouk

सिगिरिया या सिंहगिरी श्रीलंका के मध्य प्रांत में डंबुला शहर के पास उत्तरी मटाले जिले में स्थित एक प्राचीन पहाड़ी किला है। यह ऐतिहासिक और पुरातात्विक महत्व का स्थल है जो लगभग 180 मीटर (590 फीट) ऊंचे ग्रेनाइट पर स्थित है। प्राचीन श्रीलंकाई एतिहासिक स्रोत चुल्लवंश के अनुसार, यह क्षेत्र एक बड़ा जंगल था, फिर तूफानों और भूस्खलन के बाद यह एक पहाड़ी बन गया और राजा कश्यप (477–495 ई.) ने इसे अपनी नई राजधानी के लिए चुना। एक विशाल शेर के आकार के प्रवेश द्वार के कारण इस जगह का नाम सिंहगिरी, शेर की चट्टान पड़ा। राजा की मृत्यु के बाद राजधानी और राजकीय महल को छोड़ दिया गया था।14वीं शताब्दी तक इसका उपयोग बौद्ध मठ के रूप में किया जाता था। सिगिरिया आज यूनेस्को द्वारा सूचीबद्ध विश्व धरोहर स्थल है। यह प्राचीन शहरी नियोजन के सबसे अच्छे संरक्षित उदाहरणों में से एक है।

सिगिरिया

सिगिरिया चट्टान का ऊर्ध्वाधर दृश्यइस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि आस–पास के कई शैलाश्रय और गुफाओं में बौद्ध भिक्षुओं और तपस्वियों का निवास तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से ही था।सिगिरिया में मानव निवास

का सबसे पहला प्रमाण सिगिरिया चट्टान के पूर्व में अलीगला शैलाश्रय है, जो दर्शाता है कि इस क्षेत्र पर लगभग 3000 ईसा पूर्व मध्यपाषाण काल में मानवों की बसाहट थी। बौद्ध मठों की बस्तियाँ तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के दौरान सिगिरिया चट्टान के आसपास की चट्टानों से भरी पहाड़ियों की पश्चिमी और उत्तरी ढलानों पर स्थापित की गई थीं। इस अवधि के दौरान कई शैल आश्रय या गुफाएँ बनाई गईं। ये आश्रय बड़े–बड़े पत्थरों के नीचे बनाए गए थे, जिनमें गुफा के मुहाने के चारों ओर नक्काशीदार ड्रिप लेज थे। कई आश्रयों पर ड्रिप लेज के पास रॉक शिलालेख खुदे हुए हैं, जो आश्रयों को बौद्ध मठवासी आदेश को निवास के रूप में दान करने का रिकॉर्ड करते हैं। ये तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व और पहली शताब्दी ईस्वी के बीच की अवधि में बनाए गए थे।वैकल्पिक कहानियों में सिगिरिया के मुख्य निर्माता राजा धातुसेन को बताया गया है, जिन्होंने अपने पिता के सम्मान में काम पूरा किया था। चुल्लवंश के अनुसार राजा धातुसेन व उसकी एक गैरराजकीय रानी का पुत्र कश्यप ने अपने पिता की हत्या कर सिंहासन पर हथिया लिया था, जिसका वास्तविक उत्तराधिकारी धातुसेन व उसकी असली रानी के पुत्र व कश्यप के सौतेले भाई मोग्गलन था। राजा कश्यप के शासनकाल (477–495 ई.) में सिगिरिया को एक जटिल नगर और किले के रूप में विकसित किया गया था। चट्टान के शिखर पर और उसके आस–पास की अधिकांश विस्तृत संरचनाएँ, जिनमें रक्षात्मक संरचनाएँ, महल और उद्यान सम्मिलित हैं, राजा कश्यप के काल के ही हैं। बाद में मोग्गलाना ने युद्ध में कश्यप को पराजित कर सिंघासन प्राप्त किया तथा अनुराधापुर को पुनः राजधानी बनाया, सिगिरिया को एक बौद्ध मठ परिसर में परिवर्तित कर दिया गया, जो 13वीं या 14वीं शताब्दी तक अस्तित्व में रहा। इस अवधि के बाद 16वीं और 17वीं शताब्दियों तक सिगिरिया में कोई गतिविधि नहीं मिलती, जब इसे कुछ समय के लिए कैंडी साम्राज्य की चौकी के रूप में इस्तेमाल किया गया था।आगे के वर्णनों में इस स्थल को बौद्ध समुदाय का केंद्र माना जाता है, जिसमें कोई सैन्य केंद्र नहीं था।यह स्थल प्राचीन श्रीलंका में महायान और थेरवाद बौद्ध परंपराओं के बीच प्रतिस्पर्धा में महत्वपूर्ण रहा होगा।

2-1 mn n";

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त शिक्षार्थी श्रीलंका की कला एवं वास्तुकला के प्रमुख केन्द्रों जैसे सिगिरिया एवं रूवैनवेलि पगोडा के विविध आयामों तथा उसकी शैलीगत विशेषताओ के विभिन्न पक्षों से परिचित हो सकेंगे।

2-2 [kkt o lajk{k.k

1831 में ब्रिटिश सेना की 78वीं (हाईलैंडर्स) रेजिमेंट के मेजर जोनाथन फोर्ब्स, जब पोलोनुरुवा की यात्रा से घोड़े पर सवार होकर लौट रहे थे, तो उन्हें ''सिगिरि की चट्टान के झाड़ियों से ढके शिखर'' दिखा। बाद में पुरातत्वविदों का ध्यान सिगिरिया पर पड़ा।सिगिरिया में पुरातात्विक कार्य 1890 के दशक में छोटे पैमाने पर आरंभ हुआ था।एच.सी.पी. बेल सिगिरिया पर व्यापक शोध करने वाले पहले पुरातत्वविद् थे। श्रीलंका सरकार द्वारा शुरू की गई सांस्कृतिक त्रिभुज परियोजना ने 1982 में सिगिरिया पर अपना ध्यान केंद्रित किया।इस परियोजना के अंतर्गत पहली बार पूरे शहर में पुरातात्विक कार्य आरंभ हुआ।

2-3 flfxfj;k dk LFky foU;kl

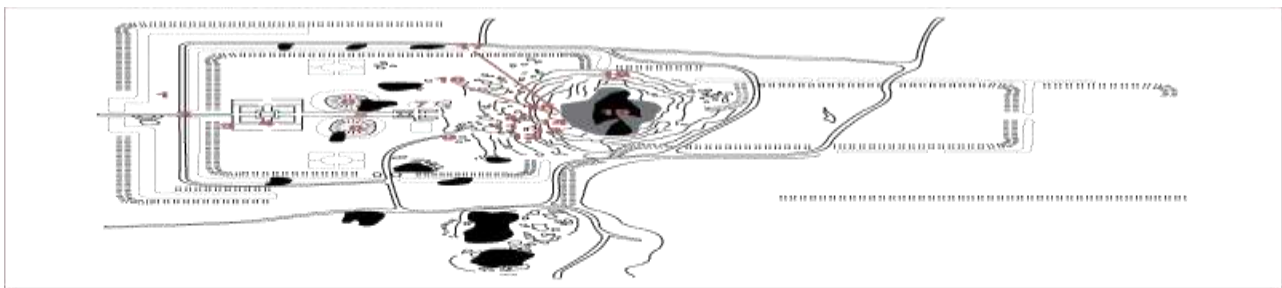

स्थल योजना–सिगिरिया में 5वीं शताब्दी के राजा कश्यप के काल में निर्मित एक प्राचीन गढ़ सम्मिलित है, जो आसपास के मैदान से लगभग 200 मीटर ऊपर है। चट्टान से पूर्व और पश्चिम की ओर दो किलेबंद परिसर हैं। पश्चिमी परिसर (ऊपर बाईं ओर), जो 90 हेक्टेयर में फैला है, और पूर्वी परिसर जो 40 हेक्टेयर में

फैला है। पश्चिमी क्षेत्र राजकीय उद्यान था, जो एक सममित रूप से निर्मित किया गया था, जिसमें विस्तृत जल–धारण संरचनाओं के साथ–साथ सतह और उपसतह हाइड्रोलिक व्यवस्था भी थे। प्रवेश द्वार व खाइयाँ–यह तीन प्राचीर और दो खाइयों से घिरा हुआ है, जो एक आयताकार क्षेत्र बनाते हैं जिसका आंतरिक परिसर पूर्व से पश्चिम तक लगभग 700 मीटर और उत्तर से दक्षिण तक 500 मीटर है। चट्टान के दूसरी ओर, पूर्वी क्षेत्र एक औपचारिक परिसर प्रतीत होता है जिसमें एक बड़ा केंद्रीय मंडप इसकी एकमात्र स्थायी संरचना है जिसमें राजपरिवार रहता था।

उद्यान से होकर चट्टान की ओर जाता मार्ग परिसर के पश्चिमी भाग मे प्रवेश के साथ लगातार ऊपर की ओर बढ़ते हुए, कई शिलाओं के उद्यान तथा सीढ़ीदार उद्यान हैं, छोटे–छोटे तालाब, फव्वारे बने हुए हैं। महल की खाइयाँ, दीवारें और उद्यान चट्टान के आधार से कुछ सौ मीटर तक फैले हुए हैं। चट्टान तक पहुँचने के लिए एक लंबा रास्ता है जो उद्यान के पश्चिमी भाग से आरंभ होता है। यहाँ तीन मुख्य उद्यान पाए जाते हैं। पहला उद्यान पानी से घिरा हुआ एक भूखंड है। यह चार पुलों का उपयोग करके मुख्य परिसर से जुड़ा हुआ है, जिसमें प्रत्येक पुल के शीर्ष पर प्रवेश द्वार बनाए गए हैं। दूसरे में रास्ते के दोनों ओर दो लंबे, गहरे तालाब हैं। दो उथली, सर्पीली धाराएँ इन तालाबों तक जाती हैं। यहाँ गोलाकार चूना पत्थर की प्लेटों से बने फव्वारे रखे गए हैं। भूमिगत जल नलिकाएँ इन फव्वारों को पानी की आपूर्ति करती हैं जो अभी भी कार्यात्मक हैं। दूसरे जल उद्यान के दोनों ओर समतल हैं। इन समतल सतहों पर ग्रीष्मकालीन महल बनाए गए थे।दो और द्वीप उत्तर और दक्षिण में स्थित हैं। ये द्वीप पहले जल उद्यान के द्वीप के समान तरीके से बनाए गए हैं। तीसरा उद्यान अन्य दो उद्यानों की तुलना में ऊँचे स्तर पर स्थित है। इसमें एक बड़ा, अष्टकोणीय सरोवर है, जिसके उत्तर–पूर्वी कोने पर एक ऊंचा मंच है।गढ़ की बड़ी ईंट और पत्थर की दीवार इस उद्यान के पूर्वी किनारे पर है।

'khyk m|ku

शीला उद्यान में कई बड़े–बड़े पत्थर हैं जो घुमावदार मार्गों से जुड़े हुए हैं। ये बगीचे उत्तरी ढलानों से लेकर सिगीरीया चट्टान के तल पर पहाड़ियों की दक्षिणी ढलानों तक विस्तृत हैं। इनमें से अधिकांश पत्थरों पर कटे हुए भाग हैं जिनका इस्तेमाल ईंट की दीवारों और बीम के लिए आधार के रूप में किया जाता था।

flag }kj

चट्टान के ऊपर जाने के लिए सिंह प्रवेश द्वार सिगीरीया चट्टान के ऊपर जाने के लिए उद्यान से आने वाला मार्ग चट्टान के नीचे जुड़ता है जहाँ एक सिंह की पैरों की आकृति का द्वार बना हुआ है, माना जाता है कि पहले यहाँ सिंह का मुख भी था जो बहुत पहले ढह गया। सिंह की इसी आकृति के कारण इस स्थान का नाम सिंहगिरी अथवा सिगीरीया पड़ा। सिंह द्वार से होकर एक सीढ़ीदार मार्ग चट्टान की दीवार से लगाकर ऊपर की ओर जाता है।

niL.k nhokj

सिंहद्वार से ऊपर की ओर जाने के मार्ग में एक अत्यधिक पॉलिश की गई प्लास्टर की दीवार है, जिसके बारे में माना जाता है कि इसे पॉलिश किए हुए चूने, अंडे की सफेदी और शहद से लेपित किया गया था, अभी भी इस दीवार में चमक है, लेकिन केवल कुछ क्षेत्रों में जो प्राचीन भित्तिचित्रों से क्षतिग्रस्त नहीं हुए हैं। दर्पण दीवार की सतह पर लगभग 1500 कविताएँ लिखी हुई हैं, जो प्राचीन आगंतुकों द्वारा रचित हैं जो पूरे द्वीप से सिगिरिया आते थे। ये कविताएँ, जो पर्यटकों की कला और सुंदरता की प्रशंसा की गवाही देती हैं, ज्यादातर 7वीं और 11वीं शताब्दी के बीच लिखी गई थीं और कहा जाता है कि ये श्रीलंका की सबसे पुरानी भित्तिचित्र हैं। ज्यादातर भित्तिचित्र सिंहली में लिखे गए हैं, लेकिन कुछ कविताएँ संस्कृत और तमिल में लिखी गई हैं।इस मार्ग चट्टान के उत्तरी भाग से होते हुए सीधे सिगिरिया चट्टान के शीर्ष पर राजमहल तथा उद्यानोंतक जाता है। निचले महल चट्टानों के नीचे ढलानों से चिपके हुए हैं।

'kh"kZ egy

सिगिरिया चट्टान के समतल शीर्ष पर स्थित एक ऊपरी महल के भग्नावशेष हैं। चट्टान के शीर्ष पर ऊपरी महल में चट्टान को काटकर बनाए गए कुंड शामिल हैं।इस स्थल में समरूपता तथा विषमताओं को जानबूझकर आसपास के मानव निर्मित ज्यामितीय तथा प्राकृतिक रूपों से जोड़ा गया है। चट्टान के पश्चिमी भाग में राजघरानों के लिए एक उद्यान है, जो एक सममित योजना पर बना है, उद्यान में पानी को संग्रहीत रखने वाली संरचनाएँ हैं, जिनमें परिष्कृत हाइड्रोलिक व्यवस्था सम्मिलित हैं, जिनमें से कुछ आज भी काम कर रहे हैं। दक्षिण में एक मानव निर्मित जलाशय है। परिसर में प्रवेश के लिए पाँच द्वार थे।

pêku d Åij dk Å/kkok/kj n`';

आंतरिक महल निचले पूर्वी भागों पर विस्तृत है, तथा महल के बगीचे दक्षिणी भाग में विस्तृत हैं, वे सभी एक बड़े और सुंदर शीला उत्खनित सरोवर पर मिलते हैं, जिसका उपयोग संभवतः जल भंडारण के लिए किया जाता था। वहाँ ग्रेनाइट सिंहासन, नृत्य मंडप, वर्षा जल से भरा एक छोटा सा सरोवर, पीने के पानी का जल भंडार, रानियों व राजपरिवार के लिए सोने के कमरे, एक छोटा सा फूलों का उद्यान तथा सैनिकों के लिए अनिश्चित रूप से स्थित मंच रहे होंगे। राजा के दर्शक कक्ष और उसके प्रवेश कक्ष की नींव अभी भी मौजूद है। एक बार फिर, अर्धवृत्त में एक विशाल सिंहासन है जहाँ उसके सलाहकार बैठते थे। अधिकांश निर्माण ईंट में है, चूने के प्लास्टर से बना है, लेकिन चूना पत्थर के स्लैब से बने खंड हैं जिन्हें ऊपर ले जाया गया होगा। ऊपरी संरचनाएँ जो गायब हो गई हैं, संभवतः लकड़ी की थीं।

2-4 fp=dyk

सिगिरिया की चित्रात्मक कला में स्त्री सौंदर्य की आकर्षक कामुक चित्रकला सबसे आकर्षक हैं। वे चट्टान की दीवार के आलों के कारण सुरक्षित हैं।अजंता की शैली में, पहले चित्र गीले प्लास्टर पर बनाया गया था और फिर लाल, पीले, हरे और काले रंग से रंगा गया था । मानवकृति से थोड़े छोटे, वे तीन–चौथाई आकार में दिखाई देते हैं।भित्तिचित्रों की मनोदशा और व्यक्तित्व, चेहरे और शरीर, वस्त्र तथा सज्जा में एक

अद्भुत विविधता है। कुछ विद्वानों का मानना है कि इन आकृतियों में कश्यप के राज दरबार की महिलाओं के रूप में चित्रित किया गया है, जो पिदुरंगला के निकटवर्ती मंदिर की ओर एक भक्ति जुलूस निकाल रही हैं, या कैलाश पर्वत की चोटी पर घूमते बादलों और बिजली का चित्रण किया है, वर्तमान आम सहमति यह है कि ये आकृतियां दक्षिण भारतीय परंपराओं के अनुसार अप्सराओं (आकाशीय अप्सराओं) और बादलों के ऊपर सेवा करने वाली महिलाओं के चित्र हैं–जो फूल चढ़ा रही हैं, पंखुड़ियां बिखेर रही हैं या स्नान कर रही हैं।

flfxfj;k pêku ij cus dN fHkfÙkfp=

जॉन स्टिल ने 1907 में लिखा, ''पहाड़ी का पूरा चेहरा एक विशाल चित्र गैलरी जैसा प्रतीत होता है... शायद दुनिया का सबसे बड़ा चित्र''। चित्रों ने चट्टान के पश्चिमी दीवार के अधिकांश भाग को आच्छादित किया होगा, जो 140 मीटर (460 फीट) लंबा और 40 मीटर (130 फीट) ऊंचा क्षेत्र है। इन चित्रों में 500 महिलाओं के भित्तिचित्रों का संदर्भ है। हालाँकि, अधिकांश हमेशा के लिए खो गए हैं 500 या उससे अधिक भित्तिचित्रों में से केवल 21 ही बचे हैं। चट्टान के मुख्य भाग के भित्तिचित्रों के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर और भी भित्तिचित्र देखे जा सकते हैं, उदाहरण के लिए ''कोबरा हुड गुफा'' नामक स्थान की छत पर। हालाँकि भित्तिचित्रों को अनुराधापुरा काल के रूप में वर्गीकृत किया गया है, लेकिन चित्रकला शैली अद्वितीय मानी जाती हैय चित्रों की रेखा और उपयोग की शैली अनुराधापुरा चित्रों से भिन्न है। रेखाएँ एक ऐसे रूप में चित्रित की गई हैं जो आकृतियों के आयतन की भावना को बढ़ाती हैं।पेंट को व्यापक स्ट्रोक में लगाया गया है, एक तरफ अधिक दबाव का उपयोग करके, किनारे की ओर गहरे रंग का प्रभाव दिया गया है। अनुराधापुरा काल के अन्य चित्रों में चित्रकला के समान हैं, लेकिन उनमें सिगिरिया शैली की रेखाएँ नहीं हैं।उनकी पहचान के बारे में विभिन्न विचार हैं। इन चित्रों में भारत में अजंता की गुफाओं में देखी गई पेंटिंग्स से काफी समानता है।

2-5 #ouoyh ixkMk

ifjp; o bfrgkl&रुवैनवेली पगोडा महा सेया, जिसे महा थुपा (शाब्दिक अर्थ 'महान थुप') के नाम से भी जाना जाता है, श्रीलंका के अनुराधापुर में एक स्तूप (अवशेषों से युक्त एक अर्धगोलाकार संरचना) है। बुद्ध के अवशेष इस स्तूप में स्थापित हैं, जो इसे दुनिया भर में उनके अवशेषों का सबसे बड़ा संग्रह है। इसका निर्माण सिंहली राजा दुतुगामुनु ने लगभग 140 ईसा पूर्व में करवाया था, जो चोल राजा एलारा (एलालन) को पराजित करने के बाद श्रीलंका के राजा बने थे। इसे स्वर्णमाली सेया, स्वणमाली महाचेती (पालि में) और रत्नमाली सेया के नाम से भी जाना जाता है।

#ouoyh Lrwi ixkMk

महावंश के अनुसार, मौर्य सम्राट अशोक ने रामग्राम में नागों के अधिकार के अवशेषों को वापस नहीं लेने का निर्णय लिया था। ऐसा कहा जाता है कि अंतिम समय में बुद्ध ने भविष्यवाणी की थी कि उनके शरीर के अवशेषों के आठ दानों में से एक को रामग्राम के कोलिय पूजेंगे, फिर अवशेष श्रीलंका में स्थापित होने तक नागों के पास रहेंगे। अशोक को अर्हतों द्वारा और भी भविष्यवाणियाँ बताई गईं, जो राजा दत्तागमनी द्वारा इन अवशेषों को भविष्य में स्थापित करने की बात करते हैं। राजा दुत्तगामिनी ने संघ से बुद्ध के अवशेषों को प्राप्त किया। राजा दुतुगामुनु ने बुद्ध के अवशेषों को स्थापित करने के उद्देश्य से स्तूप का निर्माण आरंभ किया, किन्तु इसके पूरा होने से पहले ही बीमारी से उनकी मृत्यु हो गई ।निर्माण का कार्य चोल सेनापति एलारा से राजराता विजिट करने के पश्चात आरंभ हुआ। चोल द्वारा अनुराधापुर पर विजय प्राप्त करने के समय स्तूप क्षतिग्रस्त हो गया था, किन्तु पराक्रमबाहु प्रथम (1153–1187) के शासनकाल में इसका जीर्णोद्धार किया गया, जिन्होंने दक्षिण भारत पर आक्रमण किया और पांड्या नाडु के कुछ भगोनों पर कब्जा कर लिया। पराक्रमबाहु ने पकड़े गए तमिल का उपयोग पुनर्निर्माण कार्य के लिए किया ।

LFkkiR; o dyk

यह ''सोलोस्मस्थान'' (पूजा के 16 स्थान) और ''अतमस्थान'' (पूजा के 8 स्थान) में से एक है। यह स्तूप दुनिया के सबसे ऊंचे प्राचीन स्मारकों में से एक है, जिसकी ऊंचाई 103 मीटर (338 फीट) है और इसकी परिधि 290

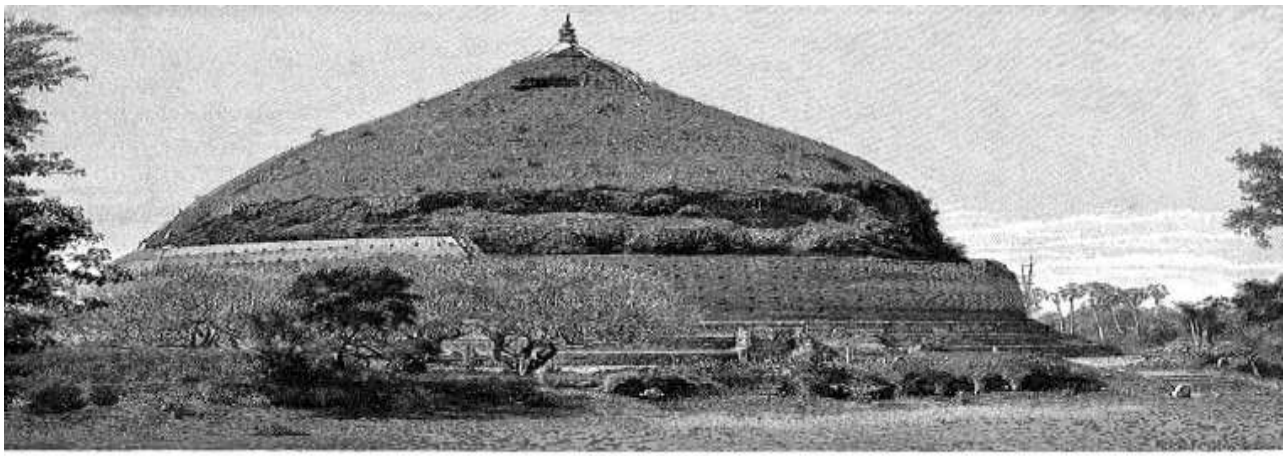

Ruanwelli Dagoba.

मीटर (951 फीट) है। मूल स्तूप की ऊंचाई लगभग 55 मीटर (180 फीट) थी और कई राजाओं ने इसका जीर्णोद्धार किया था। म्यांमार के सागैंग में कौंघमुदाव पगोडा को इसी स्तूप के आधार पर बनाया गया है। महावंश में स्तूप के निर्माण और उद्घाटन समारोह का विस्तृत विवरण है। श्रीलंका में सबसे अधिक पूजनीय स्तूप रुवनवेली है, क्योंकि इसमें बुद्ध के सबसे अधिक भौतिक अवशेष रखे हुए है।"पाँच सौ भिक्षुओं के साथ बैठकर, समुबुद्ध परमानंद ध्यान में लीन हो गएय उन्होंने अपनी दया को सभी दिशाओं में फैलाया। सात बार बुद्ध अपने अनुयायियों के साथ रहस्यमय समाधि में लीन हुएय उस स्थान पर (बाद में) महाथुप का निर्माण किया गया, जो सबसे उत्कृष्ट चेतिय था।

बैसाख पूर्णिमा के दिन, राजा दुतुगामुनु ने राजा देवनम्पियातिस्सा द्वारा बनवाए गए पत्थर के स्तंभ को हटवाकर उस जगह को समतल कर दिया ।महावंश के अनुसार रुवनवेली स्तूप निर्माण में सबसे पहले भूमि को सात हाथ (5.3 मीटर) की गहराई तक खोदा गया और फिर कुचले हुए पत्थरों को हाथियों द्वारा कुचला गया जिनके पैर चमड़े से बंधे थे। फिर पत्थरों पर चिकनी मिट्टी फैलाई गई और मिट्टी के ऊपर ईंटें रखी गईं। इनके ऊपर, एक खुरदरा सीमेंट और लोहे का जाल बिछाया गया।अंत में तांबे की एक चादर और चांदी की एक चादर बिछाई गई जो नमीरोधी के साथ–साथ एक प्रबल कंक्रीट नींव प्रदान करता है। महाथुप को सुदृढ़ बनाने के लिए इस प्रक्रिया को सात बार दोहराया गया, ताकि यह भूकंप या प्राकृतिक आपदा को सह सके।

महाथुपा के अवशेष कक्ष, जिसकी कभी पुरातात्विक खुदाई नहीं की गई थी, में भगवान बुद्ध के अवशेषों का एक कलश पेटिका है, जिसे सोने, चांदी और रत्नों से सजे शुद्ध सोने के अवशेष कक्षों के अंदर रखा गया है। अवशेष पेटिका को वज्रासन या हीरे की सीट पर रखा जाता है और अरहंत द्वारा पत्थर की पट्टियों से अंदर

सील कर दिया जाता है। राजा दुतुगामुनु की मृत्यु के बाद स्तूप निर्माण का कार्य उनके भाई राजा सद्दातिस्सा ने किया। उनके संरक्षण में महाथुपा को एक छत्र दिया गया था, जो अब नहीं मिलता। महाथुपा के चारों ओर एक दीवार थी, जो आज भी पाई जाती है। महावंश के अनुसार, छत्र में हीरों का एक घेरा था, जिसे वज्रचुम्बक के रूप में समझाया गया है, और सबसे ऊपर एक बड़ा माणिक्य था।छत्र के साथ एक उपखिला भी था, जिसे छत्र के नीचे रखा जाता है और यह तांबे से बना होता है। छत्र से जुड़े उपखिला में तांबे का उपयोग किया गया है, जो बिजली को आकर्षित करता है।

2-6 lkjk”k

सिगिरिय श्रीलंका के सबसे प्राचीन पहाड़ी किले तथा सुनिर्मित नगरों में से एक है, जिसका इतिहास ईस्वी शताब्दी से भी प्राचीन है।यहाँ निर्मित जलाशय, उद्यान आज भी विद्यमान है। हजारों वर्ष पूर्व बने महलों के अवशेष आज भी हैं जिनसे शताब्दियों पूर्व की स्थापत्य शैली का ज्ञान मिलता है। सिंह द्वार, दर्पण दीवार तथा भित्तियों पर बने चित्र उन्नत कला का उदाहरण है।इसी प्रकार चट्टान के शीर्ष पर पत्थरों को काटकर बने गए जलाशय व उद्यान तथा महल प्राचीन लंका के स्थापत्य कला की गुणवत्ता को दर्शाते हैं। यह स्थल बौद्ध भिक्षुओं के लिए श्रीलंका में बौद्ध धर्म के विकास के प्रमुख केंद्र के रूप में भी महत्वपूर्ण है जहाँ बौद्ध भिक्षुओं ने एक लंबे समय तक निवास किया। श्रीलंका के केंद्र में स्थित यह ऐतिहासिक स्थल आज पर्यटन की दृष्टि से के एक महत्वपूर्ण एतिहासिक केंद्र हैं। रुवैनवेली स्तूप श्रीलंका सहित विश्व के सबसे प्राचीन स्तूपों में से एक है, जिसका इतिहास लगभग 2100 वर्ष प्राचीन है। इस स्तूप में महात्मा बुद्ध के सबसे अधिक अवशेष रखे गए थे।निश्चित ही इसका वास्तविक स्वरूप अब परिवर्तित हो चुका है क्योंकि यह पूर्णतः क्षतिग्रस्त हो चुका था किन्तु यह स्थल आज भी बौद्ध धर्म के लिए एक प्रमुख धार्मिक स्थलों मे से है।

2-7 ck/k iz”u

1. श्रीलंका की कला एवं वास्तुकला की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

2-8 lUnHkZ xzUFk

1. Ponnamperuma, Senani (2013). The Story of Sigiriya. Panique Pty Ltd. ISBN 978-0-9873451-7-2.
2. Geiger, Wilhelm (1929). "Chapter 39". Culavamsa Being The More Recent Part Of Mahavamsa. Vol. 2.
3. Bandaranayake, Senake; Aramudala, Madhyama Saṃskṛtika (2005). Sigiriya: City, Palace, Gardens, Monasteries, Painting. Central Cultural Fund. ISBN 978-955-631-146.4
4. Senake Bandaranayake and Madhyama Saṃskṛtika Aramudala. Sigriya. 2005,
5. "Ancient City of Sigiriya". whc.unesco.org. UNESCO World Heritage Centre.
6. "The Sigiriya Story". Asian Tribune.whc.unesco.org.
7. https://www.tikalanka.com/
8. https://www.tracyanddale.com/Sri%20Lanka/HTML%20Page/rfortress4.html

bdkbZ&3 Hkkjr&E;kekj lkLd`frd lEcU/k rFkk Hkkjrh; mifuos'kh dj.k

bdkbZ dh #ijs[kk

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 भारत–म्यांमार सांस्कृतिक सम्बन्ध

3.3. भारतीय उपनिवेशीकरण

3.3.1 संकिसा

3.3.2 श्रीक्षेत्र

3.3.3 अराकान

3.4 सारांश

3.5 बोध प्रश्न

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

3-0 izLrkouk

प्राचीन काल से ही म्यांमार के साथ भारत का सांस्कृतिक सम्बंध अत्यन्त समृद्वशील रहा है। धर्म, संस्कृति, वास्तुशिल्प और आध्यात्मिक क्षेत्रों को सम्मिलित करने वाले अतीत के सम्बंधों के ये समृद्व संदर्भ ऐसे पहलू है जो समकालीन वि"व व्यवस्था में दोनों के मध्य सांस्कृतिक प्रवाह को अद्वितीय एवं विशिष्ट बनाते है। यह भारत की पूर्वी सीमा के निकट स्थित है। दोनों के मध्य जलमार्ग एवं स्थलमार्ग से व्यापार होता था। बर्मी परम्परा के अनुसार यह मान्यता है कि यहाँ के सूर्यवंशी राजाओ ने अपने को शाक्य वं"ा से सम्बन्धित माना है। पगान के राजाओं ने भारतीय वास्तुशिल्प के अनुसार यहाँ के विहारों, पगोडाओं, स्तूपों एवं मन्दिरों का निर्माण करवाया था जिसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण राजा अनिरूद्व के द्वारा निर्मित करवाया गया आनन्द एवं श्वेजिगान स्तूप उल्लेखनीय है। भारत के अत्यन्त निकट होने के कारण यह क्षेत्र सदैव से ही आकर्षण का केन्द्र रहा है। यह अनुश्रुति है कि अनेक व्यापारियों एवं दूत मण्डलोंके द्वारा वहाँ पर अनेक उपनिवेश स्थापित किये गये। अनेक व्यायापारिक उपनिवेशों के माध्यम से भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रसार–प्रचार हुआ।

3-1 mn~n"s;

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगें

- भारत–म्यांमार के सांस्कृतिक सम्बन्ध के विषय में।
- म्यांमार में बौद्व धर्म के विस्तार एवं महत्व के विषय में।
- म्यांमार पर भारतीय कला के प्रभाव के विषय में।

3-2 Hkkjr&E;kekj lkLd`frd lEcU/k

भारत–म्यांमार के मध्य सांस्कृतिक सम्बंध प्राचीन काल से ही अत्यन्त प्रगाढ़ तथा समृद्व"ाली रहे है। यह क्षेत्र भारतीयो के लिए प्रारम्भ से ही आकर्षण का केन्द्र–बिन्दु रहा है। प्राचीन भारतीय साहित्य में स्वर्णभूमि शब्द का उल्लेख मिलता है जिसकी पहचान बर्मा से स्थापित की जाती है। यह क्षेत्रसहस्राब्दी से ही सांस्कृतिक तथा भौतिक आदान–प्रदान केंद्र के साथ ही दक्षिण–पूर्व एशिया के पश्चिमी प्रवेश द्वार के रूप में कार्यशील तथा सक्रिय रहा है। राजा धम्मचेटि के कल्याणी अभिलेख में सुवर्णभूमि ही रमञ्ञ देश है। टालेमी ने भी सुवर्णभूमि और स्वर्णद्वीप का उल्लेख किया है। आर.सी. मजूमदार के अनुसार टालेमी का स्वर्णद्वीप मलय पेनिनसुला तथा सुवर्णभूमि दक्षिणी बर्मा के लिए प्रयुक्त हुआ है। महाजनक जातक में राजकुमार महाजनक व्यापारियों के साथ

समुद्रमार्ग से सुवर्णभूमि जाते है। सुप्पारक जातक में व्यापारी भरूकच्छ से सुवर्णभूमि की यात्रा करते थे। कौटिल्य ने भी अर्थशास्त्र में सुवर्णभूमि में मिलने वाले अमूल्य पदार्थ अगरू का उल्लेख किया है। मिलिन्दपञहो में भी समुद्रपार स्थित तक्कोला तथा चीनी साहित्य में सुवर्णभूमि का उल्लेख है। महाकर्मविभंग नामक ग्रन्थ में मनकोसनी तथा ताम्रलिप्ति से सुवर्णभूमि जाने वाले भारतीय व्यापारियों का वर्णन है। दिव्यावदान तथा महानिदेश जैसे ग्रन्थ में भी स्वर्णभूमि तक पहुँचने की कठिन मार्गबाधाओं का वर्णन है। ये व्यापारिक सम्पर्क धार्मिक सम्बंधों के लिए आवश्यक है।मान्यता है कि प्रारम्भ में भारतीय व्यापारी न केवल अपने साथ कीमती वस्तुओं बल्कि अपने धार्मिक, राजनीतिक और न्याय सम्बंधी विचार के साथ इस क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। कालान्तर में जिसका प्रभाव वहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इन व्यापारियों ने कुछ ही दशकों में भारत की सांस्कृतिक परंपराओं के अनुरूप समाज, विचार, रहन–सहन और कला एवं शिल्प को नये रूप में आकारित करने का प्रयास किया। तीन ओर से पहाड़ों और चौथी तरफ से समुद्र से घिरा हुआ म्यांमार सदैव से ही अलग–थलग रहा है। परिणामस्वरूप, कई भारतीय प्रभावों और दक्षिण–पूर्व एशिया के अन्य देशों की संस्कृतियों के साथ इसके घनिष्ठ संबंध होने के बावजूद भी इसकी संस्कृति और सभ्यता का अलग अस्तित्व बना हुआ है।यह देश 11वीं सदी तक बौद्ध धर्मका केंद्र बन गया था। यहाँ पर बौद्ध धर्म के थेरवाद सम्प्रदाय का प्रभाव रहा है।

3-3 Hkkjrh; mifuos"kdj.k

दक्षिण–पूर्व एशिया के क्षेत्रों में विशेष रूप से म्यांमार में भारतीय उपनिवेशीकरण की स्थापना के विभिन्न कारणों का उल्लेख किया जाता है।एक मत के अनुसार यह कहा जाता है कि मौर्य शासक अशोक के कलिंग युद्व से परेशान लोगों ने भागकर दक्षिण–पूर्व एशिया में शरण लिया, जिसके कारण वहाँ पर उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। एक अन्य मत के अनुसार यह माना जाता है कि ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में बाह्य आक्रमण के कारण देश के एक विशाल जनसंख्या को मातृभूमि को छोड़कर विदेश में शरण लेनी पड़ी। साक्ष्यों से यह भी ज्ञात होता है कि गुप्त शासक समुद्रगुप्त के द्वारा पराजित राजाओं ने भी दक्षिण–पूर्व एशिया के देशों में शरण लिया गया। फ्रांसीसी विद्वान कोडस के अनुसार बौद्व धर्म के उत्थान के कारण भी उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिला। म्यांमार में भारतीयों के आगमन के सम्बन्ध में अनेक कथाएँ प्रचलित है। एक अनुश्रुति के अनुसार कहा जाता है कि कपिलवस्तु का राजकुमार अभिराज अपने सैनिकों के साथ बर्मा आया था तथा इरावदी नदी के किनारे स्थित संकिस्सा नामक नगर को स्थापित किया था।15वीं शदी के कल्याणी के शिलालेखों में भूमि के रूप में इसका उल्लेख मिलता है। रमन्ना देश की पहचान बर्मा में सालविन नदी के समीपवर्ती प्रदेश से समीकृत की जाती है। बर्मा सुवर्णभूमि का पश्चिमी अपरांत सीमांत प्रदेश था, तथा भारत के पूर्वी सीमा के निकटस्थित है। दक्षिण–पूर्वी एशिया के अन्य प्रदेशों के समान बर्मा के साथ भी भारत का संबंध सबसे पूर्व व्यापार के लिए हुआ। बाद में उपनिवेश स्थापित करने एवं धर्म प्रचार के प्रयोजन से भी भारत के लोग बर्मा जाने लगे। कतिपय महत्वपूर्ण उपनिवे"ाों का विवरण निम्नलिखित है।

3-3-1 lfdlk

संकिसा नगर म्यांमार का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जो इरावदी नदी की घाटी में स्थित है। प्राप्त साक्ष्यों से विदित होता है कि वहाँ के शासक अभिराज के दो पुत्र थे। एक पुत्र संकिसा का राजा बना।जबकिदूसरे पुत्र ने म्यांमार के महत्वपूर्ण क्षेत्र अराकन में अपना नया राज्य स्थापित किया। ऐसी अनुश्रुति है कि तथागत बुद्ध के समय गंगा की घाटी से क्षत्रियों का एक दल इस क्षेत्र में आया था। और उस दल ने दक्षिणी बर्मा में एक अपना नया राज्य स्थापित किया जिसकी राजधानी श्रीक्षेत्र थी। श्रीक्षेत्र की पहचान वर्तमान में प्रॉम के निकट ह्मवाजा नामक स्थान से समीकृत किया जाता है। दक्षिणी बर्मा के समुद्र तट के निकटवर्ती प्रदेशों में स्थापित मों या तलैंग लोगों में यह अनुश्रुति प्रचलित है कि भारत की कृष्णा, गोदावरी नदियों के क्षेत्र से प्राचीन काल में भारतीय उपनिवेशक समुद्र पार करके वहाँ आए और उसके निकटवर्ती प्रदेशों में उन्होंने अपनी बस्तियाँ स्थापित की थी।

प्राकृतिक संरचना एवं सांस्कृतिकपरिदृश्य में भारत की समानता समुपस्थित करने वाला यह क्षेत्र महत्वपूर्ण तथा समृद्वशाली रहा है।यह मुख्य रूप से एक पार्वतीय देश है। इसके पश्चिमी भाग में अराकानयोमा की पर्वतमालाएं स्थित हैं। बर्मा के मध्य भाग में इरावदी, चिंदविन तथा सितांग नदियों से सिंचित मैदान है। यह बहुत उर्वर है और धान के उत्पादन के लिए सुप्रसिद्ध है। इसलिए इसे चावल का भंडार कहा जाता है। इरावदी

नदी ने बर्मा को न केवल उर्वर बनाने में सहयोग दिया बल्कि परिवहन आदि के लिए भी उपयुक्त सुविधाएं प्रदान की। पुरातात्विक उत्खननों से बर्मा में अनेक स्थानों पर ऐसे प्रस्तर खंड मिले हैं जिन पर ब्राह्मी वर्णमाला का अक्षर उत्कीर्ण है। यह प्रमाण यहाँ पर उनके स्थापित उपनिवेशों के कारण ही सम्भव है। बर्मा में ऐसे पुरातत्व संबंधी अवशेष प्राप्त हुए हैं जो उस देश में भारतीय संस्कृति तथा पालि भाषाओं के प्रचार की जानकारी प्रदान करते है। वहाँ न केवल बौद्ध धर्म का ही प्रचार था अपितु पौराणिक धर्मों का भी प्रभाव था। दक्षिणी बर्मा के समुद्र तट के सीमावर्ती प्रदेश में रामञ्ञ देश था जहाँ के निवासी मों जाति के लोगों ने भारतीय धर्म तथा संस्कृति को आत्मसात कर लिया था। कतिपय पालि ग्रंथों में इन राज्यों के राजवंशों का इतिवृत्त संकलित है। मों लोगों द्वारा स्थापित इन राज्यों के राजा बौद्ध धर्म के अनुयायी थे और उन्होंने जो बौद्ध विहार तथा चैत्य स्थापित किया, उनका विवरण पालि ग्रंथों में उपलब्ध है। संकिसा के राजकुमार द्वारा ही श्रीक्षेत्र में अपना राज्य स्थापित किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि जिन भारतीयों ने उत्तरी बर्मा में संकिस्सा को राजधानी बनाकर एक भारतीय राज्य की स्थापना की थी,उन्होंने ही आगे चलकर दक्षिणी बर्मा के उस प्रदेश में प्रवेश कर लिया था, जहाँ प्यू जाति का निवास था। यही कारण है कि इस क्षेत्र में प्यू भाषा के जो लेख मिले हैं,वे भी भारतीय लिपि में है। संस्कृत और पालि भाषाओं के भी बहुत से लेख वहाँ से प्राप्त हुए। श्रीक्षेत्र के राजाओं के नाम भी भारतीय थे। बुद्ध की मूर्ति के आधार स्थान पर उत्कीर्ण 7वीं शताब्दी का एक लेख श्रीक्षेत्र से मिला है जिसमें राजा जयचंद्रबर्मा का उल्लेख है।

3-3-2 vjkdku

संकिसा और श्रीक्षेत्र के समान ही अराकान भी म्यांमार का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। ऐसी मान्यता है कि यहाँ पर एक भारतीय राजवंश का शासन था। अराकान की प्राचीन राजधानियाँ रामावती और धान्यवती थी। बाद में वहाँ के चंद्र राजवंश ने वैशाली नगर को अपनी राजधानी बनाया। इसके राजाओं के नाम बालचंद, देवचंद, धर्मचंद राज्य थे और 600 ई से 1000 ईस्वी तक इस राजवंश का इतिवृत भी प्राप्त होता है।यद्यपि प्रारंभ में भारतीय व्यापारी तथा धर्म प्रचारक गए लेकिन धीरे–धीरे यहाँ पर उनकी बस्तियां बसने लगी तथा मूल निवासियों को भारतीय संस्कृति एवं सामाजिक धारा में आत्मसात करने की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई। परिणामतः बर्मा भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रधान केंद्र बन गया। भारत–बर्मा के आपसी संबंध के प्राचीनतम् संकेत सिंहली इतिवृत्त में प्राप्त होते हैं जिसके अनुसार अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए सोण तथा उत्तर नामक दो स्थविरो को सुवर्णभूमि भेजा था। यद्यपि वर्तमान समय में निश्चित करना कठिन हो जाता है कि अशोक द्वारा भेजे गयेसोण एवं उत्तर स्वर्णभूमि के किस प्रदेश में जाकर अपना धर्म का प्रचार–प्रसार किया तथा वहाँ के निवासियों को धर्मानुयायी बनाए। विद्वानों का मत है कि इसे बर्मा से समीकृत किया जाना चाहिए यद्यपि कुछ लोग सुवर्णभूमि से संपूर्ण दक्षिण–पूर्व एशिया या इंडोनेशिया का आशय ग्रहण करते हैं।भारत–म्यांमार के बीच अशोक के समय से ही सांस्कृतिक संबंध स्थापित हो गए थे। दोनों देशों के प्राचीनतम संबंधों पर पालि ग्रंथों के प्रसिद्ध टीककार बुद्धघोष की टीकाओं से भी कुछ प्रकाश पड़ता है।तथा ज्ञात होता है कि अशोक के धर्म प्रचारक बर्मा गए थे तथा बुद्ध के प्रथम शिष्यों में दो बर्मा के मूल निवासी भी थे। बुद्धघोष पांचवी सदी के प्रारंभ में हुए थे।

टॉलमी ने अपने भूगोल ग्रंथ में कुछ ऐसे देशवाची संस्कृत नाम का उल्लेख किया है जो बर्मा में स्थित थे। यहाँ से प्राप्त पुरातात्विक अवशेषों से भी भारत–बर्मा के बीच अत्यंत पुरातन काल से संबंधों की पुष्टि हो जाती है।यहाँ पर गुप्त शैली में निर्मित ब्राह्मण एवं बौद्ध मूर्तियाँ पांचवी तथा छठी सदी की भारतीय शैली के अनुरूप उत्कीर्ण बौद्ध कथाएँपरवर्ती गुप्तकालीन लिपि में उत्कीर्ण बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध सूत्र यह धर्म हेतु प्रभाव तथा विविध प्रकार के धार्मिक भवन इस बात के प्रमाण है कि बर्मा में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का पूर्ण प्रसार प्रथम शताब्दी में ही हो गया था। उपलब्ध साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि कम से कम ईस्वी की प्रारंभिक शताब्दियों में भारतीय उपनिवेशक बर्मा के विभिन्न भागों में स्थापित हो गये थे। यह भी ज्ञात होता है कि भारतीय जल एवं स्थल दोनों मार्गों से बर्मा गए थे और उसके ऊपरी तथा निचली भाग के विभिन्न प्रदेशों में अपनी बस्तियाँ स्थापित की।यहाँ के मूल निवासियों के बीच इन्होंने अपनी बस्तियाँ बसाई उनमें मों,प्यू, म्रम, मुख्य थे। बर्मा के भारतीय उपनिवेशों के संपर्क में आकर बर्मी लोगों ने भी भारत के बौद्ध धर्म को अपना लिया और वह भी भारतीय संस्कृति से पूर्णता प्रभावित थे।

3-4 lkjk"k

भौगोलिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से भारत–म्यांमार के सम्बंध अत्यन्त प्राचीन तथा प्रगाढ़ रहे है। पालि साहित्य में ऐसे सन्दर्भ प्राप्त होते है जिसमें बौद्व धर्म के प्रसार–प्रचार में वहाँ के शासको का विशेष रूप से योगदान रहा है। भारतीय सभ्यता का बर्मा पर कितना प्रभाव पड़ा।?इसकी जानकारी यहाँ विद्यमान भारतीय नामो तथा बौद्ध धर्म के विविध स्वरूपों की उपस्थिति से प्रमाणित हो जाती है। यहाँ पर आने वाले भारतीयों ने भारतीय नामो एवं संज्ञाओं को भी प्रचलित किया। अवंती, कंधार, कंबोज, कुसुमपुर, मिथिला, पुसकलावती राजगिरि, वैशाली, संकाश्य आदि नाम केशहरों की स्थापना की गई थी और इसी प्रकार चंपानगर, वाराणसी, हंसावती द्वारवती, श्री क्षेत्र आदि नगरों के नाम भी भारतीय आधार पर रखे गए थे। बर्मा जाने वाले भारतीय पौधों में भारत के उन स्थानों की स्मृति बराबर बनी रही जिनका संबंध तथागत बुद्ध से था। बोधगया, सारनाथ तथा कपिलवस्तु की भांति उन्होंने भी अनेक स्थानों का संबंध बुद्ध से जोड़ दिया ताकि वह पवित्र बने रहे उनका विश्वास था कि तथागत स्वयं बर्मा गए थे तथा उनके जीवन से संबंध अनेक घटनाएं वहाँ घटी थी। वास्तव में बर्मा में आवासित भारतीयों को अपने देश से इतना अधिक लगाव था कि बर्मा में उन्होंने एक ऐसे भारत के निर्माण की कल्पना की जो वास्तविक रूप में भारत की प्रतिकृति हो।

3-5 ck/k iz'u

1. बौद्व धर्म के प्रसार–प्रचार में अशोक के योगदान का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

2. म्यांमार में भारतीय उपनिवेशों के वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

3. म्यांमार में वर्तमान में बौद्व की स्थिति का मूल्यांकन कीजिए।

.....

.....

3-6 lUnHkZ xzUFk

1. मजूमदार, आर.सी., हिन्दू कालोनीज इन फार ईस्ट
2. वेलीस,एच.सी.,दी मेकिंग ऑफ ग्रेटर इंडिया
3. रे, निहार रंजन, थेरवाद बुद्विज्म इन बर्मा
4. रे, निहार रंजन, सुवर्णद्वीप
5. पाण्डेय,आर.एन.,दक्षिण–पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति

bdkbl&4 ck) /kel dk ifjp; ,oa foLrkj rFkk lkfgR;

bdkbl dh :ijs[kk

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 बौद्व धर्म का परिचय, विस्तार तथा साहित्य

4.3 सारांश

4.4 बोध प्रश्न

4.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

4-0 iLrkouk

सिंहली इतिवृत्त महावंश से ज्ञात होता है कि मौर्य शासक अशोक के काल में तृतीय बौद्व संगीति का आयोजन किया गया। इसमें यह सुनिश्चित किया गया कि बौद्व धर्म के प्रचारार्थ धर्मप्रचारक भेजे जाने का निर्णय लिया गया। उसी के क्रम में सोण एवं उत्तर नामक स्थविरों को सुवर्णभूमि में बौद्व धर्म के प्रसार–प्रचार हेतु भेजा गया।यहाँ पर बौद्व धर्म के थेरवाद का प्रभाव था। ह्मवजा से प्राप्त पुरातात्विक प्रमाणों से ज्ञात है कि नरसिंह पति की मृत्यु के साथ–साथ लगभग ढाई सौ वर्षो के वैभवपूर्ण अस्तित्व के बाद अनिरुद्ध महान द्वारा स्थापित अरिमर्दनपुर के महान साम्राज्य का अंत अवश्य हो गया किंतु उसके राज्यकाल में विकसित भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति आज भी उसी रूप में अपने वैभव को बनाये हुए है। दक्षिण–पूर्व एशिया के अधिकांश देशों में भारतीय धर्म जहाँ अतीत का विषय बन गया है। बर्मा के निवासी आज भी बौद्ध धर्म के अनुयायी है। यहाँ पालि भाषा एवं साहित्य का प्रभाव है।

4-1 mís";

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

- म्यांमार में बौद्व धर्म की स्थिति एवं विस्तार के विषय में।

4-2 ck) /kel dk ifjp;] foLrkj ,oa lkfgR;

सिंहली इतिवृत्तों से ज्ञात होता है कि मौर्य शासक अशोक के काल में सोण एवं उत्तर नामक दो स्थविरों ने सुवर्णभूमि में जाकर बौद्व धर्म का प्रसार–प्रचार किया था। यहाँ पर बौद्व धर्म के थेरवाद का प्रभाव था। ह्मवजा से प्राप्त पुरातात्विक प्रमाणों से ज्ञात है कि नरसिंह पति की मृत्यु के साथ–साथ लगभग ढाई सौ वर्षो के वैभवपूर्ण अस्तित्व के बाद अनिरुद्ध महान द्वारा स्थापित अरिमर्दनपुर के महान साम्राज्य का अंत अवश्य हो गया किंतु उसके राज्यकाल में विकसित भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति आज भी उसी रूप में अपने वैभव को बनाये हुए है। दक्षिण–पूर्व एशिया के अधिकांश देशोंमें भारतीय धर्म जहाँ अतीत का विषय बन गया है।यहाँ के निवासी आज भी बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धार्मिक आदर्श को स्वीकार करते हैं। उनके धार्मिक जीवन की सबसे बड़ी सफलता यह है कि यहाँ के वैदिक धर्म जिसका अस्तित्व किसी समय पूर्णता विलुप्त हो चुका है तथा थेरवाद बौद्ध धर्म प्रभावी हो गया है। यहाँ बहुत से पाली ग्रंथों की रचना की गई।यहाँके स्थविर तथा बौद्ध विद्वान सतत् बहुत दर्शन तथा पालि साहित्य के संवर्धन में लग रहे। पालि साहित्य कितना अधिक विकसित था। इसका समर्थन 1442 ई के एक लेख से हो जाता है।इसका उत्कीर्ण बर्मा के एक उच्च अधिकारी ने करवाया था। इस लेख में इस अधिकारी एवं इसकी पत्नी द्वारा बौद्ध संघ के निमित्त दिए गए दान का वर्णन किया गया है। इस अभिलेख में संस्कृत का उल्लेख भी किया गया है।

बर्मा में संस्कृत का प्रवेश ई. सन की प्रारंभिक शताब्दी में हुआ था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह बौद्ध धर्म तथा पालि साहित्य के प्रभावी होने के बावजूद भी संस्कृत साहित्य पूर्णता विलुप्त नहीं हुआ। बर्मा के पालि धर्मशास्त्र के ग्रंथ मूलत संस्कृत ग्रंथों से प्रभावित थे। बर्मा तथा श्रीलंका के बीच पारस्परिक संबंध भी

थे। बर्मा के बौद्ध विद्वान श्रीलंका के बाद विद्वानों से धार्मिक क्षेत्र में प्रेरणा भी प्राप्त करने लगे थे लेकिन राजनीति तथा विज्ञान के क्षेत्र में बर्मा पर भारत का ही प्रभाव बना रहा इसी कारण इनके धम्म संघ नामक ग्रंथों जो कानून तथा लौकिक आचार–विचार के संग्रह थे की रचना मनु, नारद आदि भारतीय धर्मशास्त्रकारो के आधार पर की गई। 13वीं सदी के अंतिम वर्षों में निचले बर्मा के शासक वगरू ने धम्म संघ का संग्रह तलेंग भाषा में करवाया था। सोलहवीं सदी में किसी तलैंग विधि विशेषज्ञ बुद्धघोष ने पालि भाषा में अनुवादित किया। 17वीं सदी में रचे गए इस वर्ग के कुछ अन्य के नाम के साथ मनु का नाम मिलता है। यह बात का स्पष्ट प्रमाण है कि बर्मा के धर्मशास्त्रों एवं विधान शास्त्रों की रचना भारत के धर्मशास्त्रों के आधार पर की गई थी।

4-3 lkjk”k

सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि बौद्व धर्म जिसको दक्षिण–पूर्व एशिया के अधिकांश देशों ने अंगीकार किया तथा उसे पूर्णतः राजकीय सहयोग एवं संरक्षण प्रदान किया। म्यांमार एक ऐसा देश है जहाँ पर अधिकांश आबादी बौद्व धर्म के समर्थकों की है। वहाँ केजनजीवन का विविध पक्ष बौद्व धर्म से अनुप्राणित है। वहाँ के स्तूप, विहार एवं पगोडा आदि पर बुद्व एवं बोधिसत्व से सम्बन्धित विविध दृश्यों का अंकन कला कृतियों पर प्राप्त होता है। वहाँ के अधिकांश साहित्य की रचना पालि भाषा में प्राप्त होती है।यह कहा जा सकता है कि बौद्व धर्म म्यांमार देश का एक राष्ट्रीय धर्म के साथ ही वैश्विक धर्म बन गया। इसका विस्तार का कारण इसके मौलिक सिद्वान्त एवं मूल्यों को दिया जाता है।

4-4 ck/k i”u

1. म्यांमार में बौद्व धर्म के परिचय, विस्तार एवं साहित्य का वर्णन कीजिए।

.....

.....

4-5 lUnHk xzUFk

1. मजूमदार, आर.सी., हिन्दू कालोनीज इन फार ईस्ट
2. रे, निहार रंजन, थेरवाद बुद्विज्म इन बर्मा
3. पाण्डेय,आर.एन.,दक्षिण–पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति

bdkbZ&5 कला एवं वास्तुकला–आनन्द मन्दिर, भवेजिगान पगोडा

bdkbZ dh :ijs[kk

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 कला एवं वास्तुकला

5.21. आनन्द मन्दिर

5.2.2. श्वेजिगान पगोडा

5.3 सारांश

5.4 बोध प्रश्न

5.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

5-0 izLrkouk

म्यांमार (बर्मा) की अधिकांश कला कृतियों पर भारतीय प्रभाव परिलक्षित होता है। पगान के राजाओं के संरक्षण एवं सहयोग से निर्मित बर्मा के स्तूप, मंदिर तथा विहार है, जिनमें कुछ को कला के आदर्श उदाहरण के रूप में माना जाता हैं। सभी कला कृतियाँभारतीयशैली के अनुरूप निर्मित किये गये है। इसका मुख्य कारण भारत–म्यांमार के बीच अनवरत्विद्यमान सांस्कृतिक संपर्क को माना जाता है। भारतीय व्यापारी, कलाकार, ज्योतिषी तथा बौद्ध धर्म के प्रचारक यहाँ आयें तथा विभिन्न क्षेत्रों में अपने–अपने उपनिवेश को स्थापित किया। यहाँ के निवासी भी समय–समय पर व्यापारिक कार्यों तथा बौद्ध स्थलों की यात्राओं के उद्देश्य से भारत आते रहे है। एक जनश्रुति के अनुसार यह कहा जाता है कि यहाँ का महान नाविक प्रतिवर्ष भारत आता था। वह वाराणसी में मंदिर के उत्खनन से निकाले गये भग्नावशेषों में जिसमें प्रमुख रूप से मूर्तियों को खरीद कर पेगू ले जाता था। यह भी भारत की सांस्कृतिक विरासत की समृद्वि एवं भारतीय कला की विविधता के कारण ही सम्भव हो सका होगा। यहाँ के अधिकांश कलाकृतियों का निर्माण बौद्ध धर्म के अनुसार किया गया है।

5-1 mnns”;

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त जान सकेंगे–

- म्यांमार की कला एवं वास्तुकला के विषय में।
- विश्व प्रसिद्व आनन्द मन्दिर एवं श्वेजिगान स्तूप के विषय में।

5-2 dyk ,oa okLrqdyk

भारतीय अभिलेखों में बुद्ध के शरीर को धातु गर्भ कहा गया है। इसको जहाँ स्थापित किया जाता है उस स्थान को गर्भगृह कहा जाता है। इसे वैदिक धर्म में देवस्थान कहते हैं। श्रीलंका में धातु गर्भ को दगोवा कह गया। और इसी से पैगोड़ा शब्द बना है। बर्मा में बुद्ध मंदिरों को पैगोडा कहा गया। अनेक भिक्षु या उपासक इसकी विधिवत पूजा करते थे। यहाँ की वास्तुकला के विकास को तीन युगों में विभाजित किया गया। पहली अवस्था दूसरी शताब्दी से लेकर नवी शताब्दीतक थी।इस अवस्था में भवन निर्माण को रखा गया। दूसरी व्यवस्था नवीं शताब्दी से लेकर 13वीं सदी ईस्वी है। इस अवधि में बर्मा में अनेक भव्य भवनों का निर्माण किया गया। कला के विकास की दृष्टि से यह सर्वोत्तम काल था। तीसरी अवस्था में 13वीं शताब्दी से लेकर वर्तमान का काल तक रखा गया है। इस युग में बर्मा की लोककला विकसित हुई। इसे पैगोडा काल भी कहा जाता है। इस अवधि में वास्तुकला में काष्ठ का प्रयोग अधिक किया गया। साहित्य एवं धर्म की तरह बर्मा की कला भारतीय प्रभाव के अंतर्गत विकसित हुई थी। पगान के राजाओं के संरक्षण में निर्मित बर्मा के स्तूप, मंदिर तथा विहार जिनमें कुछ कला के आदर्श उदाहरण में गिने जाते हैं, सभी भारतीय शैली में निर्मित थे। इसका मुख्य

कारण भारत–बर्मा के बीच लगातार विद्यमान संपर्क था।

5-2-1 vkUkUn efUnj

यह एक विश्व विख्यात मन्दिर है जिसका निर्माण महान शासक क्यानजित्था ने अपने शासन काल में करवाया था।वर्तमान में यह बर्मा की राजधानी यंगून में अवस्थित है। इसका नामकरण तथागत बुद्व के चचेरे भाई आनन्द के नाम के पर किया गया है। पुराविद् डुरोइसेल का मत है जिन वास्तुकारों ने आनंद मंदिर का नियोजन तथा निर्माण किया था। निःसंदेह,वे भारतीय थे।इसमें वास्तुकला के आदर्श उदाहरण है जिसमें अभूतपूर्व अनुपात एवं व्यवस्थित नियोजन है। इनमें उत्कीर्ण दृश्य में बुद्व के जीवन की विविध घटनाओं को अत्यंत सजीवता के साथ प्रदर्शित किया गया है। शिखर से लेकर आधार तक भारतीय कला कौशल और प्रतिभा की अमिट छाप मिलती है। वास्तव में आनंद मंदिर बर्मी वास्तुकला एवं भारतीय वास्तुकला की सर्वोत्तम संयोजन एवं संरचना है। पगान के विहारों की दीवारों पर बुद्व एवं बोधिसत्वके साथ–साथ ब्रह्मा, विष्णु, गणेश आदि की भी मूर्तियाँ मिले हैं जिसमें यह पता चलता है कि भारत–म्यांमार में भी धार्मिक सहिष्णुता विद्यमान थी। कहा जाता है कि इसकी वास्तुकला ओडिशा में उदयगिरि पहाड़ियों में निर्मित अनन्त गुफा मन्दिर का प्रतिनिधित्व करता है।यह मन्दिर पूर्णतया एक आयामयुक्त शैलीगत संरचना है। इस मन्दिर के केन्द्र में एक चौकोर कमरा है। जहाँ पर भव्य खड़ी प्रतिमाएं धनुषाकार खाचे में रखी गई है। सगौन की लकड़ी

vkUkUn efUnj] lkr] fodhihfM;k

5-2-2 'oft xku ixkMk

यह म्यांमार का सबसे पवित्र बौद्ध स्तूप है। ऐसा माना जाता है कि बुद्धों के अवशेषो पर इस पवित्र स्तूप का निर्माण किया गया हैं। इन अवशेषों में काकुसंध की लाठी, कोनागमन का जल फिल्टर, कस्पा के वस्त्र का एक टुकड़ा और गौतम के सिर के आठ बाल शामिल हैं। किंवदंती है कि श्वेजिगान पैगोडा का निर्माण 2,500 साल से भी पहले किया गया था–जबकि बुद्व अभी भी जीवित थे–जो इसे दुनिया का सबसे पुराना बौद्ध स्तूप बना देगा। बुद्धवंश के अनुसार, उक्कलजनपद के तपुस्सा और भल्लिका नाम के दो व्यापारी बोधगया से गुजर रहे थे जब उनका सामना बुद्व से हुआ। बुद्व, जो उस समय वृक्ष के नीचे बैठकर बुद्धत्व का आनंद ले रहे थे, ने चावल के और शहद की उनकी भेंट स्वीकार की और बदले में उन्हें कुछ धर्म की शिक्षा दी। ऐसा करने पर, वे बुद्व की शिक्षाओं में शरण लेने वाले पहले सामान्य शिष्य बन गये। बुद्व ने इन दो व्यापारियों को अपने बालों की आठ लटें भी दीं और उन्हें निर्देश दिया कि एक स्तूप कैसे बनाया जाए जिसमें इन बालों के अवशेषों को रखा जाए। व्यापारियों ने डैगन के राजा ओक्कलापा को बालों की आठ किस्में भेंट कीं, जिन्होंने उन बालों को वर्तमान म्यांमार में सिंगुट्टारा पहाड़ी पर एक स्तूप में तीन पूर्ववर्ती बुद्धों (काकुसंध, कोनागमन, और कस्पा) के कुछ अवशेषों के साथ स्थापित किया।श्वेदागोन पैगोडा बर्मा में सबसे प्रसिद्ध बौद्ध तीर्थ स्थल बन गया था।

'oftxku ixkMk]lkr fodhihfM;k

श्वेजिगान पैगोडा, जिसे ग्रेट गोल्डन माउंटेन स्तूप के नाम से भी जाना जाता है, यांगून, म्यांमार के केंद्र में स्थित है, जिसे पहले रंगून, बर्मा के नाम से जाना जाता था। श्वेजिगानपैगोडा मंदिर म्यांमार का सबसे पवित्र बौद्ध स्थल और दुनिया के सबसे प्रतिष्ठित बौद्ध स्थलों में से एक है। ऐसा माना जाता है कि श्वेजिगान में चार बुद्धों के किले हैं, जो हर साल दुनिया भर से हजारों तीर्थों का स्वागत करते हैं। पगोडा वह स्थान है जहां बौद्ध भिक्षु और बौद्ध धर्म के सिद्धांतों को सिखाने और अभ्यास करने के लिए एकत्रित होते हैं। श्वेजिगान पगोडा की पौराणिक पगोडा स्थल की उत्पत्ति को शुभ और पवित्र बताया गया है। किंवदंती के अनुसार, श्वेजिगानपैगोडा की स्थापना 2600 वर्ष पहले हुई थी, बौद्ध इतिहास के अनुसार, भारत में राजकुमार सिद्धार्थ को ज्ञान प्राप्त हुआ था और इस प्रकार का बुद्धत्व प्राप्त हुआ था। श्वेजिगान पगोडा में सुंदर कला और विज्ञान की विशेषता है जो बौद्ध इतिहास और संस्कृति में पगोडा के महत्वपूर्ण कार्यों को शामिल करता है। रंगून के केंद्र में सिंगुटारा पर्वत पर स्थित श्वेजिगान पगोडा, म्यामांर में सबसे पवित्र बौद्ध स्तूप और दुनिया में सबसे महत्वपूर्ण धार्मिक स्मारक स्मारकों में से एक है।

5-3 lkjk"k

यह निष्चित रूप से कहा जा सकता है कि म्यांमार की कला एवं वास्तुकला पूर्णतः भारतीय कला से प्रभावित है। कला के विभिन्न आयामों का प्रभाव यहां की कला पर दृष्टिगत होता है। यहां का मन्दिर,स्तूप तथा पगोडा पर बुद्व तथा बोधिसत्व का प्रभाव परिलक्षित होता है। कला का यह स्वरूप उनके जीवन के प्रत्येक भाग में दिखाई देता है। बौद्व सभ्यता तथा संस्कृति से पूर्णतः प्रभावित होकर ही विकसित हुई है। इसलिए कहा जाता है कि म्यांमार की कला एवं प्रतिभा की अमिट छाप दिखाई देती है।

5-4 ck/k i"u

1. आनन्द मन्दिर पर टिप्पणी लिखिए

.....

.....

.....

2. श्वेजिगान स्तूप का मूल्यांकन कीजिए।

.....

.....

.....

2. कला एवं वास्तुकला का मूल्यांकन कीजिए।

.....

.....

.....

5-5 lUnHkZ xzUFk

1. मजूमदार, आर.सी., हिन्दू कालोनीज इन फार ईस्ट
2. रे, निहार रंजन, थेरवाद बुद्विज्म इन बर्मा
3. पाण्डेय, आर.एन.,दक्षिण–पूर्व एषिया में भारतीय संस्कृति

bdkbZ&6 Hkkjrh; lLdfr dk rRo] cks/ dk ifjp; ,oa foLrkj

bdkbZ dh :ijs[kk

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 भारतीय संस्कृति के तत्व

6.3 बौद्व धर्म का परिचय एवं विस्तार

6.4 सारांश

6.5 बोध प्रश्न

6.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6-0 izLrkouk

चम्पाा दक्षिण पूर्व एशिया में स्थित एक महत्वपूर्ण उपनिवेश था। यहाँ की सभ्यता तथा संस्कृति पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव पूर्णतः दिखाई देता है। चम्पा के भारतीय उपनिवेशकों ने यहाँ परभारतीय धर्म एवं मान्यताओं के अनुरूप स्थापित करने का प्रयास किया। यद्यपि चौथी शताब्दी ई० में यहाँ बौद्ध धर्म प्रविष्ट हो चुका था, जैसा कि कान्ह लेख के आधार पर इलियट ने विचार व्यक्त किया है, पर चंपा में ब्राह्मण धर्म की ही प्रधानता थी। ब्राह्मण धर्म में यद्यपि शैव धर्म को यहाँ सर्वाधिक प्रतिष्ठा उपलब्ध थी तथा इसे राजकीय धर्म के रूप में विकसित होने का अवसर मिला, लेकिन इसके साथ–साथ विष्णु, ब्रह्मा तथा अन्य देवी–देवताओं को भी यथोचित स्थान मिला था। मन्दिरों एवं देवताओं की मूतियों की प्रतिष्ठा शासकों के नाम पर की जाती थी। विभिन्न देवी–देवताओं की पूजा–उपासना के साथ–साथ अनेक प्रकार के पौराणिक यज्ञों एवं धार्मिक कृत्यों का भी अनुष्ठान होता रहा। श्री भद्रबर्मा के चोदिन्ह अभिलेख में 'अग्नये त्वा जुष्टं करिष्यामि' मन्त्र द्वारा यज्ञ में आहुति देने के लिये प्रयुक्त. होने वाले घृत आदि को पवित्र किये जाने का उल्लेख है। वाजसनेयी संहिता और शतपथ ब्राह्मण में भी याज्ञिक अनुष्ठान में हवि को पवित्र करने के लिये इसी ढंग के मन्त्र का विधान है ''अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि, वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि, बर्बाहरसि लुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि'' ब्राह्मणग्रन्थों के इस मन्त्र की स्पष्ट छाया श्रीभद्रबर्मा के अभिलेख पर विद्यमान है। यह तभी सम्भव था, जबकि चम्पा में याज्ञिक कर्मकाण्ड का भी भली–भांति प्रचार हो। वो–चन्ह में उपलब्ध श्रीमार राजकुल के अभिलेख में विश्वजित् अतिरात्र यज्ञ का स्पष्ट रूप से संकेत विद्यमान है। यह सर्वमेध यज्ञ का अन्यतम अंग था, और इसे अनुष्ठान करने वाला व्यक्ति अपना सर्वस्व दान कर दिया करता था। इस अभिलेख में यज्ञकर्ता द्वारा वह सब सुवर्ण रजत तथा सब स्थावर व जंगम धन सम्पत्ति दान कर दी गई थी, जो उसके पास थी। राजा प्रकाशधर्म के माईसोन अभिलेख में अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख है, और उसे सर्वाधिक पुण्य देने वाला कहा गया है। अभिलेखों में अनेक स्थानों पर यज्ञों, यज्ञ क्रियाओं तथा यज्ञ भाग का उल्लेख आया है, और एक स्थल पर तो पार्वत्य प्रदेश (गिरिप्रदेश) में राजा श्रीन्द्रबर्मा द्वारा भक्ति और शुद्ध मन से शिव क्षेत्र तथा यजक्षेत्र के प्रदान किये जाने का भी उल्लेख है।

6-1 mn~ns';

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त शिक्षार्थी जान सकेंगे–

- भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों के बारे में।
- बौद्व धर्म के विस्तार के बारे में।

6-2 Hkkjrh; lLd`fr dk rRo

भारतीयों ने चम्पा में न केवल औपनिवेशिक राज्य की स्थापना की बल्कि भारतीय राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक प्रणाली, धर्म, कला, भाषा, साहित्य, लिपि आदि का भी पूर्णतया प्रचार–प्रसार किया। यहाँ के

स्थानीय तत्त्व या तो पूर्णरूपेण समाप्त कर दिए गये या फिर उन्हें भारतीय जीवन पद्धतियों में आत्मसात कर लिया गया। वास्तव में यहाँ के स्थानीय तत्त्व इतने अविकसित थे कि, उनके पूर्णतया समापन अथवा समाहित करने के अतिरिक्त अन्य विकल्प ही नहीं था। अग्रलिखित पंक्तियों में चम्पा में विकसित भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विविध पक्षों के अनुशीलन का प्रयास किया जा रहा है।

6-3 cks) /ke dk ifjp; ,oa foLrkj

इसमें संदेह नहीं है कि चम्पा का प्रमुख धर्म पौराणिक (ब्राह्मण) या फिर भी कतिपय ऐसे साक्ष्य हैं जिससे यहाँ बौद्धधर्म के अस्तित्त्व का भी समर्थन मिल जाता है। चम्पा में बौद्ध धर्म के प्राचीनतम प्रमाण के रूप में तृतीय गती ई० के आस–पास की उपलब्ध अमरावती शैली की बौद्ध मूर्तियों का उल्लेख किया जा सकता हैं। चीनी इत्तिवृत्तों से ज्ञात होता है कि जब 605 ई० में चीनियों ने चम्पा की राजधानी पर अधिकार स्थापित किया तो वे अपने साथ 1350 बौद्ध ग्रंथ भी उठा ले गये। चीनी यात्री इत्सिग ने भी उल्लेख किया है कि चम्पा में आर्यसम्मितीय सम्प्रदाय का प्रचलन था। सर्वस्तिवाद सम्प्रदाय के बहुत कम लोग थे। चम्पा के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि यहाँ महायान बौद्धधर्म का व्यापक प्रभाव था। और यह लगभग पन्द्रहवीं शती ई० तक वि।मान रहा । समन्त नामक एक व्यक्ति ने 829 ई० में बुद्ध तथा शंकर की प्रतिमाएँ स्थापित करवायी थीं। इसी प्रकार 875 ई० में 'लक्ष्मीन्द्र ग्रामस्वामी' इन्द्रबर्मा ने लोकेश्वर की प्रतिमा स्थापित की थी, जिसे बाद में लक्ष्मीन्द्र लोकेश्वर नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। इसने भिक्षु संघ के लिए एक विहार भी निर्मित कराया था, जहाँ उनकी आवश्यकता की सभी वस्तुओं की व्यवस्था थी। इस शासक को मृत्यु के उपरान्त 'परमबुद्ध लोक' नाम से विभूषित किया गया। भद्रबर्मा के विषय में भी कहा जाता है कि उसने नागपुष्ण के सम्मान में मन्दिर तथा विहार निर्मित करवाया था। तृतीय इन्द्रबर्मा के न्हान व्यू लेख (तिथि शक सम्वत् 833 = 911 ई०) में राजद्वार तथा उसके पुत्र सुकृति, द्वारा शिवमन्दिर तथा अवलोकितेश्वर के निमित्त विहार के निर्माण का उल्लेब किया गया है। डोंग–डुओंग मन्दिर के भग्नावशेषों में बुद्ध की बहुत–सी प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं। इन सब साक्ष्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि चम्पा में बौद्ध धर्म का प्रवेश तृतीय शती ई० के कुछ पूर्व हो गया था तथा यह यहाँ पन्द्रहवीं शती ई० तक विद्यमान रहा। लोकनाथ, लोकेश्वर, सुगत, स्वभयद, अभयद, शाक्यमुनि, अमिताभ, वज्ज्र–पाणि, वैरोचन, परमुदितलोकेश्वर आदि नामों से यहाँ बुद्ध की पूजा की जाती थी। उनका विश्वास था कि मनुष्यों के मोक्षार्थ परमलोकेश्वर की उत्पत्ति हुई है। बौद्ध धर्म सामान्य जन का ही धर्म नहीं था बल्कि इस ओर शासकीय वर्ग के लोगों का भी झुकाव था। कई शासकों ने बुद्ध प्रतिमाओं तथा विहारों की स्थापना करायी थी। यहाँ अधिकांशतः महायान सम्प्रदाय का ही प्रचार–प्रसार था। पर, जैसा कि चीनी यात्री ने वर्णित किया है, कुछ लोग आर्य सम्मितिनिकाय एवं सर्वास्तिवाद निकाय के भी अनुयायी थे। एक लेख में प्रसिद्ध बौद्ध सूत्र 'ये धर्मा हेतु प्रभवाः' का भी उल्लेख मिलता है। यहाँ से बुद्ध को खड़ी एवं बैठी प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं। खड़ी मूतियों में डोंग–डुओंग से उपलब्ध कांस्य–प्रतिमा विशेषतः उल्लेखनीय है। चम्पा की बुद्ध प्रतिमाओं में इसे सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। बुद्ध के साथ–साथ अवलोकितेश्वर, बोधिसत्त्व तथा प्रज्ञापारमिता आदि की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई है। कुछ मूतियों में बुद्ध को धर्मचक्रप्रवर्तन तथा अभय मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। चम्पा में बौद्धधर्म के सम्बन्ध में एक तथ्य और उल्लेखनीय है। यहाँ बौद्ध धर्म का ब्राह्मण धर्म से कोई विरोध नहीं था। तृतीय इन्द्रबर्मा ने शैवधर्म एवं बौद्ध धर्मों के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया था। राजा का आचरण जनसाधारण भी करते थे।यद्यपि चम्पा में प्रधानतया पौराणिक हिन्दू धर्म का प्रचार था, पर उसके साथ–साथ बौद्ध धर्म की भी वहाँ सत्ता थी। सम्भवतः, शुरू में चम्पा में बौद्ध धर्म ही अधिक प्रचलित था। सातवीं सदी के शुरू में जब चीन के एक सेनापति लिऊ फंग ने चम्पापुर पर आक्रमण किया था (६०५ ई०), तो वहाँ से जो लूट वह अपने देश को ले गया था, उसमें 1350 बौद्ध ग्रन्थ भी थे। प्रसिद्ध चीनी यात्री इत्सिग सातवीं सदी के उत्तरार्ध में चम्पा आया था। उसने लिखा है, कि इस देश में बहुसंख्यक बौद्ध आर्य–सम्मितीय निकाय के हैं, और कुछ सर्वास्तिवाद निकाय के। 826 ईस्वी में समन्त नामक एक व्यक्ति ने जिन (बुद्ध) और शंकर की दोनों की मूतियों को प्रतिष्ठापित किया था। ये सब तथ्य यह प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त हैं, कि सातवीं सदी से पूर्व ही चम्पा में बौद्ध धर्म का भली–भाँति प्रचार हो चुका था।

चम्पा के कतिपय लेखों में राजनय तथा वैदेशिक सम्बन्धों की चर्चा भी की गयी है। शासक के लिए साम, दाम, दण्ड एवं भेद नीति की जानकारी अनिवार्य थी। चम्पा से देशान्तर विशेषकर चीन, अनम एवं कम्बुज राजदूत भेजे जाते थे और इन देशों से निरन्तर दौत्य सम्बन्ध बना रहता था तथा दूत आते थे। राजनय के लिए कभी–कभी कुछ विशेष व्यक्तियों को विदेशों में भेजा भी जाता था। बुद्धिमानी, गम्भीरता, धर्मपरायणता,

राजनीतिमत्ता आदि को राजदूत के गुणों में स्वीकार किया गया था। इनके जाने से कार्यसिद्धि में किंचित् संदेह नहीं रहता था। राज–द्वार को जावा की प्रथम यात्रा में ही कार्यसिद्धि उपलब्ध हो गयी थी। उसके विषय में उल्लिखित है कि उसकी नीति सदा राजाओं की अभीष्ट नीति में प्रतिबद्ध रहती थी। वह इसे अच्छी तरह जानता था कि कौन सी बात राजा के लिए इष्ट तथा कौन सी अनिष्ट है और वह सदा राजा के हित में तत्पर रहता था। राजदूतों के आगमन एवं प्रेषण सम्बन्धी कार्यों के लिए विभिन्न देशों की भाषाओं को जानकारी भी अनिवार्य थी। इसके लिए चम्पा में योग्य व्यक्तियों की कमी नहीं थी। होबा कुए के अभिलेख के अनुसार उसका एक मंत्री सभी देशों से आए हुए दूतों के संदेशों के अभिप्राय को एक क्षण में ही समझ जाता था, जो उस के अत्यन्त कठिन परिश्रम का ही फल था।

6-4 lkjk"k

सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि चम्पा में भारतीय संस्कृति का व्यापक प्रचार–प्रसार था। यहाँ के अनेक अभिलेख इस तथ्य का समर्थन करते है कि यहां के न केवल धार्मिक बल्कि सामाजिक,राजनीतिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव भी दिखाई देते है। जिसका कारण दोनो दे"ाों के मध्य सतत सांस्कृतिक आदान–प्रदान माना जाता है।

6-5 cks/k iz"u

1. भारतीय संस्कृति के विभिन्न तत्वों का वर्णन कीजिए।

   .....
   .....
   .....

2. बौद्व धर्म के विस्तार का उल्लेख कीजिए।

   .....
   .....
   .....

6-6 lUnHkZ xzUFk lwph

1. मजूमदार, आर.सी., हिन्दू कालोनीज इन फार ईस्ट
2. रे, निहार रंजन, चम्पा
3. पाण्डेय, आर.एन.,दक्षिण–पूर्व ए"िया में भारतीय संस्कृति

bdkbZ&7 lkekftd] vkfFkd ,oa /kkfeZd fLFkfr&"kSo धर्म एवं वैश्णव धर्म

bdkbZ dh :ijs[kk

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 चम्पा की सामाजिक स्थिति

7.3 चम्पा की आर्थिक स्थिति

7.4 चम्पा की धार्मिक स्थिति

7.4.1 शैव धर्म

7.4.2 वैष्णव धर्म

7.5 सारांश

7.6 बोध प्रश्न

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

7-0 izLrkouk

चम्पा दक्षिण–पूर्व एशिया का एक महत्वपूर्ण राज्य है। यहाँ की सभ्यता तथा संस्कृति पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव दृष्टिगत होता है। धार्मिक दृष्टि से यहा पर शैव धर्म का प्रभाव सर्वाधिक है। ऐसी मान्यता है कि यहाँ पर भारतीय राज्य की स्थापना हुई थी। चम्पा का इतिहास पूर्णतः एक धार्मिक समन्वय एवं संयोजन का इतिहास तथा केन्द्र रहा है।

7-1 mn~n"ks;

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

- चम्पा की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के विविध पक्षों के विषय में।
- चम्पा की धार्मिक स्थिति विशेष रूप से शैव एवं वैष्णव धर्म के विषय में।

7-2 pEik dh lkekftd fLFkfr

प्राचीन चम्पा का सामाजिक जीवन लगभग भारतीय परम्परा के अनुकूल वर्णाश्रम व्यवस्था के आधार पर गठित था। समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्णो का अस्तित्व था। इनमें, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय तो भारतीय औपनिवेशको के साथ ही यहाँ आए थे। कुछ वैश्य भी इनके साथ व्यापारादि निमित्त गये थे किन्तु शूद्रों के जाने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। अतः कभी–कभी उच्च वर्ग के लोग भी दासता का जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य किये जाते थे। अभिलेखों में प्रायः इन चारों वर्णों का उल्लेख प्राप्त होता हैं। इनमें ब्राह्मण तथा क्षत्रिय समाज के स्तंभ माने जाते थे। ब्राह्मणों की हत्या को महान् अपराध माना जाता था। माइसोन लेख (तिथि 657 ई०) में ब्रह्महत्या को पाप तथा अश्वमेध को सबसे बड़ा पुण्य कहा गया है। राजा को भी 'ब्रह्मांशप्रभवः' माना जाता था। ब्राह्मणों के उपरान्त द्वितीय स्थान पर क्षत्रिय थे। कभी–कभी तो राजा के रूप में इन्हें ब्राह्मणों एवं पुरोहितों से भी उच्च स्थान उपलब्ध हो जाता था क्योंकि एक लेख में ब्राह्मणों तथा पुरोहितों द्वारा राजा के चरणस्पर्श करने का उल्लेख किया गया है। लेकिन इससे राजा की मात्र राजनीतिक श्रेष्ठता ही द्योतित होती है न कि क्षत्रियों का ब्राह्मणों की अपेक्षा उच्च स्थान। सत्यता तो यह है कि यहाँ ब्राह्मण एवं क्षत्रिय दोनों समान तथा एक दूसरे के पूरक थे। इसका कारण उपनिवेशन में उनके समान सहयोग को माना जा सकता है। चम्पा का समाज ब्रह्मक्षत्र प्रधान था। इन दोनों में परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित होते थे। रुद्रबर्मा का पिता

ब्राह्मण था, जबकि उसकी माता क्षत्रिय मनोरथबर्मा की दौहित्री थी। प्रकाशधर्म की बहन ब्राह्मण सत्य कौशिक के साथ व्याही गयी थी। आर० सी० मजूमदार के अनुसार चम्पा का समाज सामान्यतः दो वर्गों में विभाजित था। उच्च वर्ग या अभिजात वर्ग और निम्न वर्ग।अभिजात या उच्च वर्ग के अन्तर्गत ब्राह्मण तथा क्षत्रिय आते थे तथा निम्न वर्ग में शेष लोग। लेकिन अभिजात वर्ग में कभी–कभी अन्य वर्ग के लोग भी समाहित कर लिए जाते थे, जो अपनी सम्पत्ति अथवा राजकीय सेवाओं के कारण शासक की ओर से सम्मान प्राप्त कर लेते थे। कभी–कभी कुछ व्यक्तियों को उनकी योग्यता तथा विद्वता के कारण भी समाज में उच्च स्थान प्राप्त हो जाता था। अभिलेखों में दास–दासियों का उल्लेख मिलता है। इस वर्ग में चम्पा के मूल निवासियों के साथ–साथ विजित देशों के युद्ध–बन्दी भी सम्मिलित थे। सम्राट् इन्हें मन्दिरों की सेवा में नियुक्त कर देते थे।

भारत से जो निवेशक वहाँ बसने के लिए गये थे, वर्षों और आश्रमों की परम्परा को वे अपने साथ ले गए थे। दासों की सत्ता के सम्बन्ध में बहुत से संकेत चम्पा के अभिलेखों में वि।मान हैं। राजा जयइन्द्रबर्मा द्वारा महालिंगदेव के मन्दिर के लिये दासों सहित कृषियोग्य भूमि के दान का उल्लेख है। इसी प्रकार 766 ईस्वी के यंगतिकुल अभिलेख में रजत, सुवर्ण, रत्न, हार, गौ, भैस गादि के साथ ऐसी–दासियों के दान किए जाने का भी वर्णन है, जो 'अन्तःपुरविलासनी' थी। यद्यपि चम्पा और भारत के समाज में पर्याप्त अन्तर था, पर वहाँ के भारतीय या भारतीय संस्कृति को अपनाये हुए राजा वर्णाश्रम–व्यवस्था की स्थापना के आदर्श को अपने सम्मुख रखते थे।

ikfjokfjd thou] fookg ,oa fL=;ksa dh fLFkfr

चम्पा के लेखों तथा चीनी स्रोतों से इनके पारिवारिक जीवन, विवाह–संस्थाओं तथा स्त्रियों की स्थिति पर भी कुछ प्रकाश पड़ता है। कान्ह लेख में वर्णित है कि श्रीमार ने अपने पुत्रों, भाइयों तथा सम्बन्धियों में समान रूप से धन वितरित किया था। सामान्यतः पितृसत्तात्मक पारिवारिक व्यवस्था थी जिसमें पिता से पुत्र को सम्पत्ति का अधिकार मिल जाता था, लेकिन कभी–कभी मातृपक्ष के लोग भी इस अधिकार को प्राप्त कर लेते थे। बहु–विवाह का प्रचलन था। विवाह कुलों के अतिरिक्त भी होते थे। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वर्णों मे पारस्परिक विवाह के कई उदाहरण मिलते है। शासक कई विवाह भी करते थे। जयसिंहबर्मा ने एक विवाह देवलिदेव की कन्या तथा दूसरा यवद्वीप कुमारी तपस्वी से किया था। राजमहलों में राजाओं के मनोरंजनार्थ कुछ स्त्रियाँ रहती थीं।ब्राह्मणों और क्षत्रियों द्वारा चम्पा के निवासियों के उच्चवर्ग का निर्माण होता था। एक अभिलेख से इस वर्ग के व्यक्तियों की वेशभूषा तथा रहन–सहन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

[kkuikuu] oL=kHkj.k] vyadj.k ,oa eukfoukn

चंपा निवासियों का मुख्य आहार चावल था। भोजन पकाने तथा करने के लिए सोने, चाँदी, काँस तथा तांबे के बर्तनों का प्रयोग किया जाता था।लेखों में भोजन के बाद ताम्बूल खाने का प्रचलन था। चीनी साक्ष्यों तथा कलात्मक अवशेषों से तत्युगीन वस्त्राभरणों तथा आभूषणों के विषय में कुछ जानकारी मिलती है। शासक गले में माला, मस्तक पर तिलक, कर्णकुण्डल, करधनी, मयूर छत्र, मुकुट तथा रेशमी वस्त्र, धारण करता था। शरीर में विविध प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों का भी लेप किया जाता था। उच्च वर्ग के लोगों द्वारा प्रयुक्त सुगन्धित चन्दन से वायुमण्डल सुवासित हो जाता था। स्त्री–पुरुष, दोनों ही सामान्यतः कटि के नीचे परिधान धारण करते थे तथा उसके ऊपर का भाग खुला रहता था। स्त्रियाँ पैर तक तथा पुरुष मात्र घुटने तक वस्त्र धारण करते थे। स्त्री–पुरुष दोनों कमर में पेटी बाँधते थे। केश–विन्यास अत्यन्त सावधानी से करते थे तथा इसमें पर्याप्त समय भी देते थे। चीनी साक्ष्यों में विवृत है कि ये लोग रंग–बिरंगे वस्त्र धारण करते थे लेकिन यह कथन केवल उच्च वर्ग के व्यक्तियों के लिए ही यथार्थ प्रतीत होता है।

गायन, वादन तथा नृत्य इनके मनोरंजन के प्रमुख साधन थे।नृत्य, गायन तथा वादन में पुरुष तथा स्त्रियाँ दोनों भाग लेती थीं।यहाँ के लेखों में नर्तकों एवं नर्तकियों का प्रायशः उल्लेख मिलता है। नर्तकियाँ मन्दिरों को समर्पित भी की जाती थीं।यहाँ से उपलब्ध नृत्यकला के उदाहरणों में एक नर्तकी की मूर्ति विशेषतः उल्लेखनीय है। इस समय यह तूरेन संग्रहालय में है। इस शिल्प से चम्पा की विकसित नृत्यकला का अनुमान लगाया जा सकता है। मन्दिरों के भित्तियों आदि पर उत्कीर्ण मूर्तियों व चित्रों में पुरुषों और स्त्रियों की केश–सज्जा जिस ढंग से बनाया गया है वह कलात्मक है।

7-3- pEik dh vkfFkd thou

चम्पा की अर्थव्यवस्था कृषिपरक थी। मुख्य रूप से चावल का उत्पादन किया जाता था। उन्नत कृषि के लिए सिंचाई की समुचित व्यवस्था की थी। अभिलेखों मेंशासकों द्वारा नहरों के निर्माण करवाये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। शासक विक्रान्तबर्मा ने सत्यमुख लिंग देवता के निमित्त प्रदत्त भूमि की सिंचाई की व्यवस्था के लिए नहर के ऊपर बाँध का निर्माण करवाया था। इसी प्रकार जयपरमेश्वरबर्मा ने भी चम्पेश्वर तथा स्वयमुत्पन्न देवताओं के निमित्त प्रदत्त भूमि की नहरों का जीर्णोद्धार करवाया था।कृषि के साथ–साथ यहाँ कुछ अन्य उ ोगों तथा व्यापार–वाणिज्य की प्रगति के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। लोग सूती, रेशमी वस्त्र, आभूषण, जरी का काम तथा बर्तन निर्माण का कार्य बड़े पैमाने पर करते थे। चीनी साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि यहाँ रेशम के कीड़े पाले जाते थे तथा कपास उत्पन्न की जाती थी। वस्त्रों पर जरी का काम करने में लोग अत्यन्त कुशल थे। वे सोने–चाँदी, मोतो तथा मणि अत्यन्त सरलता से वस्त्रों में पिरो देते थे। यहाँ आभूषण धारण करने का बड़ा रिवाज था। इसीलिए समाज का एक बड़ा समुदाय आभूषण निर्माण में लगा था। सुनार आभूषणों के साथ–साथ अनेक प्रकार की साज–सज्जा की सामग्री भी निर्मित करते थे। भाण्ड उ ोग भी अत्यधिक विकसित था तथा अन्य वस्तुओं के साथ वे सोने–चाँदी के बर्तनों का भी अत्यधिक निर्माण करते थे। कुछ लोग हाथी–दाँत के काम में लगे थे। अस्त्र–शस्त्र, जलपोत तथा नौकाएँ भी बनायी जाती थीं तथा शिल्प में इसे भी प्रमुखता उपलब्ध थी। शिल्प तथा व्यवसाय–चम्पा के आर्थिक जीवन का मुख्य आधार खेती थी। इनमें जुलाहे, स्थपिति, सुवर्णकार आदि के शिल्प प्रमुख थे। महीन वस्त्रों पर सोने और चाँदी की जरी का काम किया जाता था, और उन पर रत्न भी जड़े जाते थे। मुकुट, कंठहार, केयूर, कंकण आदि बहुत प्रकार के आभूषण सुवर्णकारों द्वारा बनाये जाते थे। सुवर्णकार केवल आभूषण ही नहीं बनाते थे, अपितु सोने और चाँदी के वृक्ष, लता, पुष्प आदि बनाकर उनसे राजभवन को सुसज्जित भी किया करते थे। तांबे व पीतल सदृश धातुओं के तो बर्तन बनते ही थे, साथ ही सोने और चांदी को भी बरतन बनाने के लिए प्रयुक्त किया जाता था। इसी प्रकार अस्त्र–शस्त्र बनाने, नौकाएं व जहाज बनाने और हाथी दांत का काम करने में भी बहुत–से शिल्पी व्यस्त रहा करते थे। भवन निर्माण का शिल्प भी चम्पा में बहुत उन्नत था। मन्दिरों और राजप्रासादों के अतिरिक्त वहाँ कोष्ठागार भी बड़ी संख्या में बनाये जाते थे, जिनमें अन्न जमा करके रखा जाता था। चम्पा के अभिलेखों में राजकीय कोष के साथ बहुधा कोष्ठागारों का भी उल्लेख किया गया है।

jkt dh; vk; d lk/ku

राजकीय आय का मुख्य आधार मुख्यतः भूमिकर होता था। भारतीय प्रणाली के अनुसार इसमें उपज का छठा हिस्सा लिया जाता था। कभी–कभी इसे दशवाँ भाग भी कर दिया जाता था। लेकिन ऐसा विशेष अवसरों पर किया जाता था तथा इसमें राजाके अनुग्रह को मुख्य माना जाता था। भद्रबर्मा ने भद्रेश्वर मन्दिर के लिए भूमि कर 1/10 कर दिया था। मन्दिरों की भूमि को कभी–कभी कर से पूर्णतया मुक्त कर दिया जाता था। जर्यासहबर्मा ने कई मन्दिरों को भूमिकर से मुक्त कर दिया था। इसके अतिरिक्त राजा को आयात–निर्यात की जाने वाली वस्तुओं से भी आय होती थी। बन्दरगाहों पर आने वाले जहाजों पर राज्य कर्मचारी स्वयं जाकर माल के 1/5 भाग को कर के रूप में वसूल लेते थे। उत्पादनों पर भी कर लगाया जाता था और इसकी मात्रा भी उत्पादन का पाँचवाँ भाग होती थी।

7-4 pEik dh /kkfeld fLFkfr

7-4-1 'ko /ke

शैव धर्म यहाँ का राजकीय धर्म था। इनके अधिकांश मन्दिर शैव धर्म से सम्बन्धित हैं। चम्पा का प्राचीनतम मन्दिर भद्रेश्वर शिव मन्दिर है, जिसका निर्माण भद्रबर्मा ने करवाया था। चम्पा में तीन ऐसे स्थान हैं, जहाँ बहुत से प्राचीन मन्दिर विद्यमान हैं। इनमें दो ऐसे हैं, जहाँ शैव मन्दिरों की ही सत्ता है। ये स्थान माइसोन और पो–नगर हैं। इनके मन्दिरों का निर्माण शिव तथा उनसे सम्बन्धित देवी–देवताओं की मूतियों को प्रतिष्ठापित करने के लिये ही किया गया था। सम्भवतः, राजा भद्रबर्मा द्वारा निर्मित भद्रेश्वर शिव का मन्दिर चम्पा में सबसे पुराना शिवमन्दिर था। अपने नाम से शिव का विशेषण (भद्रबर्मा से भद्रेश्वर) रखने की जो प्रथा इस राजा द्वारा प्रारम्भ की गई थी, बाद के राजाओं ने उसका अनुसरण किया। राजा भद्रबर्मा द्वारा भद्रेश्वर शिव के जिस मन्दिर का निर्माण चौथी सदी के अन्त या पाँचवीं सदी के शुरू में किया गया था, वह चम्पा का सर्वप्रधान

सर्वमान्य राष्ट्रीय मन्दिर था। उसके समीप अन्य भी बहुत से मन्दिरों का निर्माण किया गया। एक सदी के लगभग बाद यह मन्दिर आग लगने से ध्वंस हो गया था, और राजा शम्भबर्मा द्वारा इसका जीर्णोद्धार किया गया था। तब से इस मंदिर को संभुद्रेशवर कहा जाने लगा। इसके अनुसार शिव ने स्वयं इस लिंग को भूगु को दिया। यद्यपि चम्पा में शिव की लिगायत रूप में ही अधिक उपासना की जाती थी पर शिव के मानवीय स्वरूप अज्ञात नहीं थे। इनकी मानवीय मूतियाँ भी यहाँ समान भक्तिभाव से निर्मित की गयीं। शिव को खड़े एवं बैठे दोनों ही मुद्राओं में प्रदर्शित किया गया। माइसोन मन्दिर में शिव की खड़ी मूर्तियाँ मिलती हैं। कभी–कभी इन्हें नन्दी के साथ तांडव नृत्य करते हुए भी प्रदर्शित किया गया है।

भारत की भाँति चम्पा में भी शिव के साथ अनेक देवी–देवताओं को संहत कर दिया गया था। इनमें सर्वाधिक महत्त्व शक्ति को उपलब्ध था। यह उमा, गौरी, भगवती, महाभगवती, देवी, महादेवी, मातृलिगेश्वरी, भूमीश्वरी आदि नामों से पूज्य थी। शिव के समान इस आ।शक्ति की भी मूर्तियाँ निर्मित की जाती थी। कहा जाता है कि 817 ई० में हरिबर्मा ने एक नवीन पत्थर की मूर्ति स्थापित की थी तथा उसे स्वर्णजटित भी करवाया था। उसने 818 ई० में शक्ति की एक स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित की थी जिसे कम्बुज आक्रमणकारी 944–947 ई० के मध्य उठा ले गये थे। तदनन्तर इसके स्थान पर प्रस्तरप्रतिमा स्थापित की गयी। चम्पा के दक्षिणी प्रदेश कौठार में शक्ति उपासना का अधिक प्रचलन था। यहाँ भगवती कौठारेश्वरी देवी का एक मन्दिर बनवाया गया था जिसे शंभुभद्र श्वर मन्दिर के समान ही प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। अभिलेखों में भी अन्य देवताओं के साथ कार्तिकेय का उल्लेख किया गया है। कार्तिकेय की उपलब्ध दो प्रतिमाओं में इन्हें इनके वाहन मयूर के साथ प्रदर्शित किया गया। अन्य शेष दो मूर्तियों में इन्हें गैंडे पर आरूढ़ दिखाया गया है। चम्पा में स्कन्द की भी पूजा प्रचलित थी। इस समय तक स्कन्द की पांच मूर्तियाँ चम्पा से उपलब्ध हुई हैं। साथ ही, वहाँ के अभिलेखों में भी अनेक स्थानों पर इस देवता का उल्लेख मिलता है। चम्पा में उपलब्ध हुई कार्तिकेय अथवा स्कंद की दो मूर्तियों में उन्हें मयूर पर आरूढ़ साथ में दो गैंडों को भी बनाया गया है।

7-4-2 o"ko /ke

शैव सम्प्रदाय के साथ–साथ वैष्णव सम्प्रदाय का भी चम्पा में प्रचारथा। चम्पा के अभिलेखों में नारायण, पुरुषोत्तम, हरि, गोविन्द, माधव आदि अनेक नामों से विष्णु का उल्लेख किया गया है। अनेक राजाओं के शौर्य को प्रदर्शित करने के लिए विष्णु से उनकी उपमा दी गई है। 769 ईस्वी में उत्कीर्ण इन्द्रबर्मा प्रथम के अभिलेख में राजा के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि उसने विष्णु के समान अपनी शक्ति द्वारा शत्रुओं का विनाश किया था। चम्पा के निवासी भगवान विष्णु या नारायण को सम्पूर्ण संसार का पालन करने वाला, क्षीर सागर में शेषनाग की शैय्या बनाकर शयन करने वाला, चार भुजाओं वाला और अनादि मानते थे। वे विष्णु के अवतार के रूप में राम और कृष्ण की भी पूजा किया करते थे।

चम्पा के अभिलेखों में गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले और कंस चाणूर आदि का संहार करने वाले कृष्ण का उल्लेख किया गया है। चम्पा में विष्णु की भी अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। एक मूर्ति में भगवान् विष्णु पद्मासन लगाये बैठे हैं। उनके चार हाथों में पद्म, चक्र, शंख और गदा है। एक ऐसी मूर्ति भी मिली है, जिसमें कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उठाया हुआ है। पौराणिक परम्परा में गरुड़ को विष्णु का वाहन माना गया है। चम्पा में जहाँ विष्णु को गरुड़ पर आरूढ़ दिखाया गया है, वहाँ गरुड़ की पृथक् मूर्तियाँ भी मिली हैं। इन मूर्तियों में मुख तो गरुड़ पक्षी का है, पर शेष शरीर सिंह का है। लक्ष्मी की भी अनेक मूतियाँ चम्पा में उपलब्ध हुई हैं। कुछ मूतियों में उनके चार हाथ दिखाये गए है और कुछ में दो।भारतीय प्रतिमा लक्षणों के अनुरूप चम्पा में भी विष्णु को विविध रूपों में प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया।

स्मरणीय है कि शेषशायी विष्णु की मूर्तियाँ भारत में भी उपलब्ध हुई हैं। इस दृष्टि से गुप्तकालीन देवगढ़ मन्दिर में विराजमान मूर्ति विशेषतः उल्लेखनीय हैं। विष्णु को पद्मासनस्थ मुद्रा में भी प्रदर्शित किया गया है। विष्णु के वाहन गरुड का प्रदर्शन कभी–कभी तो विष्णु के साथ और कभी–कभी पृथक् रूप में मिलता है। विष्णु की शक्ति एवं सहचरी के रूप में लक्ष्मी को भी इनके साथ सयुक्त किया गया तथा इन्हें पद्मा एवं श्री नाम प्रदान किया गया।

7-5 lkjk"k

चम्पा के सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक जीवन में एक सातत्य दिखाई देता है जो समन्वय एवं सह–अस्तित्व की भाव को इंगित करता है। उनके सामाजिक जीवन के विविध आयामों पर भारतीय परम्परा एवं मूल्यों का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इसके साथ ही धार्मिक जीवन के प्रत्येक पक्ष पर भारतीय परम्परा एवं रीति–रिवाज का प्रभाव दिखाई देता है।सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि चम्पा के लोगों का जीवन मूल्यों तथा समन्वय की भावना से ओत–प्रोत था।

7-6 cks/k iz"u

1. चम्पा के सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

2. चम्पा के आर्थिक तत्वों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

3. चम्पा के धार्मिक जीवन का मूल्यांकन कीजिए।

.....

.....

.....

7-7 lUnHkZ xzUFk lwph

1. मजूमदार, आर.सी., हिन्दू कालोनीज इन फार ईस्ट
2. पाण्डेय, आर.एन.,दक्षिण–पूर्व एषिया में भारतीय संस्कृति

bdkbZ&8 dyk ,oa okLrqdyk

bdkbZ dh :ijs[kk

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 कला एवं वास्तुकला

8.3 सारांश

8.4 बोध प्रश्न

8.5 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8-0 izLrkouk

भारतीय कला की भाँति चम्पा की कला भी धर्म से अनुप्राणित थी अर्थात् कलाकारों ने धर्म से सम्बन्धित कलाकृतियों का ही सृजन किया। मन्दिर, धार्मिक भवन एवं देवी–देवता की मूर्तियाँ ही उनकी कला के मुख्यविषय थे। स्वतंत्र तथा गौण कलाओं को अधिक प्रश्रय नही मिला। इस प्रकार चम्पा की कला राजकीय कला थी। मन्दिरों का निर्माण केवल राजधानियों अथवा केन्द्रीय स्थानों में किया गया। राजकीय होने के कारण इनके सम्वर्धन में शासकों का पूर्ण सहयोग था। इसीलिए चम्पा के राजनीतिक उत्कर्ष एवं अपकर्ष का कला पर भी विशेष प्रभाव पड़ा ।

8-1 mn~n”;

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

- चम्पा की कला के विविध आयामों के विषय में।

8-2 dyk ,oa okLrqdyk

चम्पा में मुख्यतः वास्तुकला तथा मूर्तिकला का ही विकसित स्वरूप दृष्टिगत होता है। यद्यपि चम्पा में कम्बुज के अंकोरवाट तथा जावा के बोरोबुदुरएवं स्मारक नहीं निर्मित हुए पर जो कुछ बने उन्हें तत्युगीन कलाकारों की कलात्मक प्रतिभा का देदीप्यमान प्रमाण माना जा सकता है। पर्सी ब्राउन के अनुसार तीसरी तथा चौथी शताब्दी ई० में वास्तुकला की काष्ठ शैली विकसित थी जिसका अनुकरण ईंट निर्मित भवनों में किया गया, लेकिन अब इसका कोई उदाहरण अवशिष्ट नहीं है। मन्दिरों का निर्माण एक ऊँचे धरातल पर किया गया है। देवस्थान जिसे चम्पा में 'कलन' कहा गया है, मध्य में देवमूर्ति का स्थान हैं। कलन भारतीय शिखर–विमान का प्रतिनिधित्व करता है। मन्दिर के गर्भगृह में पूर्व की ओर एक द्वार बनाया गया है। चम्पा के मन्दिर स्थापत्य को शिल्प शैली के आधार पर कई वर्गों में रखा जाता है। चम्पा के मन्दिरों को प्राचीन शैली, मध्य शैली तथा अंतिम शैली नामक तीन वर्गों में विभाजित किया है। प्राचीन मन्दिरों के मूर्त अवशेष मुख्यतः माइसोन, डोंग–पो नगर से उपलब्ध हुए हैं। इनमें माइसोन तथा पो नगर के मंदिर शैव सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं, जबकि–डोंग डुओंग के बौद्ध मन्दिर हैं। शिव के साथ–साथ उमा, गणेश तथा स्कन्द की मूतियाँ उपलब्ध होती हैं। कुछ मन्दिरों में अन्य पौराणिक देवी–देवताओं की मूर्तियाँ भी हैं।यह इस बात का प्रमाण है कि चम्पा निवासी मन्दिरों एवं धार्मिक भवनों के अलंकरण में अधिक रुचि लेते थे।

मूर्तिकलासे इस देश की मूर्ति निर्माण कला पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। शिव की दो मानवाकार खड़ी मूतियाँ माइसोन से मिन्नी हैं, जो प्रायः एक जैसी हैं। इनमें शरीर के विविध अंग भली–भाँति संतुलित हैं, और

मुखमण्डल पर प्रसन्नता का भाव अभिलक्षित है। शिव की एक मूर्ति नृत्य मुद्रा में उपलब्ध हुई है। उनके एक हाथ में निशूल है, दूसरा, हाथ टूट गया है। बायाँ पैर नृत्य की मुद्रा में ऊपर की ओर उठा हुआ है। उनके कानों में कुण्डल है, बाहों में वाजूबन्द है, हाथों में कंगन हैं, वक्षस्थल पर माला है, और पैरों में नूपुर है। उन्होंने सिर पर ऊंचा मुकुट घारण किया हुआ है, जो मालाओं से अलंकृत है। बिन्ह दिन्ह से प्राप्त एक मूति ध्यानावस्था में बैठे हुए शिव की है। उनके माथे पर तीसरा नेत्र है, जो खुला हुआ है। कुण्डल, कंगन आदि आभूषणों के अतिरिक्त शिव ने सर्प भी धारण किया हुआ है। शिव के मुखमण्डल पर मन्द स्मित है, और उनकी आँखें ध्यान में अर्धोन्मीलित हैं। सिर पर जटाओं और मुकुट के साथ चन्द्रमा भी अंकित है।

चम्पा से प्राप्त नर्तकी की एक मूर्ति कला की दृष्टि से अत्यन्त आकर्षक एवं उत्कृष्ट है। नर्तक का शरीर बहुत लचकीला है। और उसने अपने हाथों और पैरों को नृत्य की मुद्रा में फैलाया हुआ है। अन्य दो नर्तक भी नृत्य मुद्रा में हैं। अन्यत्र प्राप्त एक प्रस्तर फलक पर तीन नतंकियों को नृत्य करते हुए अंकित किया गया है। माइसोन के एक मन्दिर में जहाँ शिव का ताण्डव नृत्य अंकित है, ऐसे दृश्य भी उत्कीर्ण हैं जिनमें नृत्य और वादन किये गए हैं। एक दृश्य में एक व्यक्ति वीणा बजा रहा है, दूसरे के सामने दो तबले रखे हैं और साथ में नृत्य हो रहा है। इसी प्रकार के नृत्य और संगीत के अन्य भी दृश्य चम्पा के प्राचीन मन्दिरों के बाह्य भागों पर अंकित हैं। मन्दिरों के द्वारों, लिन्टलों तथा कानिश आदि को चित्रित करने के लिए वहाँ पुष्प–पत्न, लता, पशु–पक्षी, नाग, गान्धर्व, अप्सरा, हाथी, सिह, मकर, गरुड़ आदि की आकृतियों का आश्रय लिया गया है। इसमें सन्देह नहीं, कि चम्पा में भी भवन निर्माण कला, मूर्तिकला और चित्रकला अच्छी उन्नत दशा में थीं ।

चम्पा के मन्दिरों पर जो अनेक मंजिलों वाली ऐसी छतें बनाने की प्रथा थी जो नीचे की तुलना में ऊपर की ओर लगातार छोटी होती जाती थीं, वह सम्भवतः भारत की द्रविड़ शैली से ली गई थी। सातवीं सदी में निर्मित मामल्लपुरम् के रथमन्दिरों और कांजीवरम् तथा बादामी के मन्दिरों की छतें भी प्रायः इसी ढंग की हैं। मामल्लपुरम् के धर्मराज रथ अर्जुन और रथ मन्दिरों की छतों की यदि चम्पा के बहुरथ संख्यक मन्दिरों की छतों से तुलना की जाए, जो उनमें सादृश्य दिखाई देगा। धर्मराज शिव का मन्दिर है, जिसे 'अत्यन्तकामपल्लवेश्वर' भी कहते हैं। चम्पा के शम्भु– भद्रेश्वर सदृश कितने ही मन्दिरों के नाम भी इसी ढंग के हैं। पल्लव राजाओं द्वारा अपने नाम पर स्वनिर्मित मंदिरों के नाम रखने की प्रथा का चम्पा में भी अनुकरण किया गया है। भारत के जो उपनिवेशक चम्पा में जाकर बसे थे, वे भारत की भाषा, शासन व्यवस्था और धर्म के समान भारत की कला को भी अपने नये देश में ले गये थे। अतः यदि भारतीय भवन–निर्माण–कला तथा मूर्तिकला का चम्पा की कला पर प्रभाव दिखाई पड़े, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। माइसोन के एक मन्दिर के स्तम्भ पर एक चित्र उत्कीर्ण है, जिसमें तीन नर्तक नृत्य करते हुए अंकित किये गये हैं।

8-3 lkjk”k

उपर्युक्त शैव, वैष्णव, बौद्ध आदि मूर्तियों के साथ–साथ चम्पा से स्थापत्य के अन्य अनेक उदाहरण भी उपलब्ध हुए हैं जिन्हें शिल्प के अन्तर्गत रखा जा सकता है। चम्पा के कलाकारों ने अपनी कलात्मक प्रतिभा का प्रदर्शन पूर्णरूपेण किया है। इस दृष्टि से माइसोन के प्रमुख मन्दिर पर तक्षित एक नृत्य का दृश्य उल्लेखनीय है। मध्य में एक आधार पर बैठे नंदी पर शिव नृत्य कर रहे हैं। इसके दोनों ओर तीन व्यक्ति हैं। दायें ओर वाला व्यक्ति नृत्य कर रहा है और शेष दो तबला एवं बांसुरी बजा रहे हैं। दूसरी ओर किनारे एक व्यक्ति हाथ जोड़े खड़ा है। उसके समीप कोई देवी तथा दो कुमार खड़े हैं। ऊपर देवतागण उड़ते हुए प्रदर्शित हैं। यहाँ से नृत्य के कतिपय अन्य चित्र भी उपलब्ध हुए हैं, जो कलात्मक दृष्टि से अत्यन्त आकर्षक हैं। यहाँ देवी–देवताओं के साथ–साथ द्वारपालों, गन्धर्वो, नागों, हस्तियों, सिहों, मकरों आदि के चित्र भी उत्कीर्ण किए गये तथा उनकी मूर्तियाँ निर्मित हुईं। इनमें हिंसा एवं दर्प का भाव परिलक्षित है। नकली द्वारों को अलंकृत करने के लिए द्वारपालों की मूर्तियाँ निर्मित की गयी थीं। गज, सिंह, मकर आदि का शिल्पांकन मन्दिरों के बाह्य भागों के अलंकरणार्थ किया गया था।उपर्युक्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि चम्पा की मूर्तिकला एवं उद्भुत् कला के विषय ही पूर्णतया भारतीय नहीं थे बल्कि यहाँ के कलाकारों ने भारतीय परम्परा के अनुरूप उन्हें तक्षित करने का भी प्रयास किया। इन पर उत्तर भारत की गुप्तकालीन कला तथा दक्षिण भारत की अमरावती एवं पल्लव

कला शैलियों का प्रभाव है।

8-4 ck/k i:'u

1. चम्पा के कला एवं वास्तुकला के विविध पक्षों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

8-5 lUnHk xUFk lph

1. पाण्डेय, आर.एन.,दक्षिण–पूर्व ए"ाया में भारतीय संस्कृति
2. विद्याालंकार,सत्यकेतु,दक्षिण–पूर्वी और दक्षिण ए"ाया में भारतीय संस्कृति

bdkbl&9 Hkkjrh; /kel d rRo&cdkã.k ,o ckn /kel

bdkbl dh :ijs[kk

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 ब्राह्मण एवं बौद्ध धर्म

9.3 सारांश

9.4 बोध प्रश्न

9.5 संदर्भ ग्रंथ

9-0 çLrkouk

यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि मानव वर्तमान कंबोडिया में कितने समय से रह रहे थे, वे कहाँ से आए थे, या तीसरी शताब्दी ई.पू. में लेखन शुरू होने से पहले वे कौन सी भाषाएँ बोलते थे।?वहाँ से प्राप्त पुरातात्त्विक साक्ष्यों विशेष कर मृद्भांडो की वैज्ञानिक तिथि 4000 ईसा पूर्व तक जाती है जिससे ज्ञात होता है कि कंबोडिया में इस समय लोग मृद्भांड बनाने तथा उनका प्रयोग करने लगे थे। कंबोडियावासी अपने घर लकड़ी तथा मिट्टी का प्रयोग करके बनाते थे, तथा भोजन में मछली का प्रयोग बहुतायत मात्रा में करते थे एवं सूअर और जल भैंस पालते थे।1950 के बाद हुए पुरातात्त्विक खोजों से ज्ञात होता है कि कंबोडिया तथा दक्षिण–पूर्व एशिया में तुलनात्मक रूप से परिष्कृत संस्कृति थी। यहाँ की खोजों से ज्ञात होता है कि वे मिट्टी के पात्र बनाने में निपुण थे तथा कुछ विद्वानों का मानना है कि इस क्षेत्र में लोग चावल की खेती और कांस्य की ढलाई तकनीकी से भली–भांति परिचित थे। समय के साथ आगे बढ़ते हुए उन्होने प्राकृतिक संसाधनो का दोहन करना प्रारम्भ किया तथा यहाँ के प्राकृतिक संसाधनो के विषय में ज्ञान धीरे –धीरेयहाँ से बाहर गया और इसी के तहत भारतीय कंबोडिया के संपर्क में आएं।

दक्षिण–पूर्वी एशिया भारत के सांस्कृतिक प्रसार का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। भारत के पूर्व में बर्मा, मलेशिया, इण्डोनेशिया, स्याम, कम्बोज (कम्बोडिया), लाओस, विएतनाम एवं फिलीपीन आदि के राज्य हैं। इन सभी क्षेत्रों में भारतीयों ने सर्वप्रथम धन प्राप्ति की लालसा में व्यापार–वाणिज्य के माध्यम से कदम रखा क्योंकि यह क्षेत्र बहुमूल्य खनिजों, सोने व मसालों के कारण लंबे समय से आकर्षण का केंद्र रहा तथा सोने की इस क्षेत्र में उपलब्धता के कारण ही भारतीय इसे स्वर्णभूमि के नाम से अभिहित करते थे। यह सम्पूर्ण क्षेत्र अपनी समृद्धता के कारण ही भारत के साथ ही साथ अरबों, पुर्तगालियों, डच व अंग्रेजों आदि को भी समय–समय पर अपनी ओर आकर्षित करता रहा।जब व्यापार–वाणिज्य के माध्यम से दक्षिण–पूर्वी एशिया के लोगों के साथ भारतीय संपर्क में आए तो इनके शिष्टाचार व संस्कृति से वे प्रभावित हुए। धीरे–धीरे भारतीयों ने अपनी बस्तियाँ बनाना प्रारम्भ किया तथा बहुत से भारतीय लोगों ने यहाँ की महिलाओं के साथ विवाह भी किया। पारिवारिक वातावरण स्थापित करने से उन लोगों में भारतीयों के प्रति आत्मीय जुड़ाव का मार्ग प्रशस्त हुआ जिसके फलस्वरूप विभिन्न भारतीय धर्म, कला–संस्कृति एवं साहित्य भी वहाँ पहुंची जिसके स्पष्ट प्रमाण इन क्षेत्रों में आज भी यत्र–तत्र दिखाई देते हैं।

यद्यपि दक्षिण–पूर्वी एशिया के साथ भारत का व्यापारिक सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन काल से रहा है। जिनके पीछे–पीछे अनेक धर्मप्रचारक जैसे–शैव, वैष्णव, बौद्ध आदि धर्मों के प्रचार–प्रसार हेतु भी इन क्षेत्रों में पहुंचे भारतीय धर्मप्रचारकों ने इन क्षेत्रों में अपने धर्मों, धर्माचार्यों द्वारा स्थापित मतों एवं सिद्धान्तों का प्रचार–प्रसार ही नही किया अपितु सभ्यता एवं संस्कृति के सन्मार्ग पर उन्हें अग्रसर भी किया। बौद्ध धर्मावलम्बियों के साथ ही साथ शैव, वैष्णव आदि धर्म प्रचारक भी इन देशों में जाकर वहाँ के निवासियों को अपने धर्मों की ओर आकृष्ट किया। इन धर्मप्रचारकों का उद्देश्य केवल धर्म प्रचार ही नहीं था अपितु बहुत से सांस्कृतिक उपनिवेशों की स्थापना भी रहा है। इन प्रचारकों ने भारतीय सांस्कृतिक वैशिष्टता की अद्भुत झांकी प्रस्तुत की, वो हमें आज भी उनके दैनिक जीवन में परिलक्षित होती हुई दिखाई देती है।

9-1 mís';

दक्षिण–पूर्व एशिया विशेषकर कंबोज में भारतीय ब्राह्मण एवं बौद्ध धर्म के तत्त्वों की प्रधानता दिखाई देती है तथा उसके व्यापक प्रसार को इन क्षेत्रों में रेखांकित किया जा सकता है। जैसा कि विदित है कि 9वीं शताब्दी में राजा जयबर्मा द्वितीय के शासन काल में कम्बोज में नए युग का आरंभ हुआ और 11वीं शताब्दी आते आते यह देश एक विशाल व शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में परिणित हो गया। यद्यपि भारत के साथ उनका परिचय इससे पूर्व में भी था जिसकी जानकारी हमे कम्बोज से प्राप्त अभिलेखों व पुरातात्त्विक स्रोतों तथा चीनी विवरणों से होती है। भारतीय धर्म के तत्त्व हमें कम्बोज के प्रशासन व धार्मिक व्यवस्थाओं में भी देखने को मिलता है। उदाहरण के तौर पर अङ्गचुमणिक अभिलेख से राजा भवबर्मा के दो मंत्रियों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है जिनके बारे मे उल्लेख मिलता है कि वे अन्य गुणों के साथ धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र के ज्ञाता थे, जिसका श्लोक निम्नलिखित है–

rL; rk ef=.kkokLrke leEra kqronhuk

/ke'kkL=kFk 'kkL=Kk /kekFkkfoo #fi.kkA

उपरोक्त श्लोक अर्थशास्त्र के पुरोधा आचार्य चाणक्य के शास्त्र से अभिप्रेरित प्रतीत होता है। इसी प्रकार अनेकों स्थानों पर कम्बोज की शासन व्यवस्था में भारतीय धर्मशास्त्रों व अन्य स्रोतों का उपयोग किया गया है।

इसके अतिरिक्त धार्मिक परंपरा के पुट तो कम्बोज में बहुतायत में दिखाई देते हैं। क्योंकि भारतीयों ने व्यापार–वाणिज्य के साथ–साथ धर्म को भी कम्बोज में स्थापित करने का कार्य किया। यही कारण है कि भारतीय अभिलेखिक परंपरा जिस प्रकार अभिलेखों के लेखन में शासकों की आस्थानुसार देवी तथा देवता की स्तुति से प्रारम्भ होती थी ठीक उसी पद्धति का प्रयोग कम्बोज देश में भी देखने को मिलता है। यहाँ भी अधिकतर अभिलेखों का आरंभ देवी–देवता की स्तुति से ही प्रारम्भ होती दिखाई देती है जैसे "नमोस्तु परमार्थय त्रौलोक्य मूर्तये" तथा "तं वंदे हरिम" आदि। अतः उपरोक्त तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि कम्बोज में पौराणिक हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म आदि की प्रधानता थी।यहाँ के एक अभिलेख से याज्ञिक कर्मकांड का भी उल्लेख मिलता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भाषा, धर्म, संस्कृति आदि की दृष्टि से कम्बोज भारत का ही एक भाग था और उसका सांस्कृतिक वातावरण पूर्णरूपेण भारतीय प्रतीत होता है।अतः प्रस्तुत इकाई में हम कंबोडिया या कम्बोज में भारतीय धर्म के तत्व–ब्राह्मण एवं बौद्ध धर्म को समझने का यथोचित प्रयास करेंगे।

9-2 ckã.k ,oa ck) /ke

दक्षिण–पूर्व एशिया से जितने संस्कृत अभिलेख प्राप्त हुए हैं, उनमें सर्वाधिक संख्या कम्बोडिया से उपलब्ध है। पुराणों और आर्य ग्रंथों में सात समुद्रों का उल्लेख मिलता है। भारतीय मनीषियों ने इन सात समुद्रों का समीकरण दक्षिण–पूर्व एशिया के सात देशों से किया है। यहाँ समुद्र के मार्ग से पहुँचा जा सकता है। पृथ्वी के सप्तद्वीपों की कल्पना पौराणिक भूगोल की निजी विशिष्टता है। पुराणों में कहीं–कहीं नव द्वीपों का भी वर्णन मिलता है। कौण्डिन्य का नाम तो सुदूरपूर्व के शासकों में एक प्रतीक बन गया था। कम्बोज से सम्बन्धित अनेक चीनी अनुश्रुतियों से यह सिद्ध होता है कि कौण्डिन्य नामक शासकों ने इस क्षेत्र की शासन सत्ता को अपने अधीन किया था। इनमें प्रथम कौण्डिन्य ईसा की प्रथम शती में और दूसरा कौण्डिन्य चौथी शती के अन्त में इस क्षेत्र में पहुँचा था। कौण्डिन्य के आगमन के बाद से यहाँ भारतीय सांस्कृतिक चेतना का इतना प्रचार–प्रसार हुआ कि यहाँ के जनमानस में भारतीय भाषा, लिपि, साहित्य, धर्म, दर्शन, शासन, सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाओं का उत्तरोत्तर विकास होता गया और ये सभी क्षेत्र भारतीय सांस्कृतिक उपनिवेश बन गये। इस क्षेत्र के निम्न प्रदेशों–कम्बोज, दक्षिण लाओस, स्याम और मलाया प्रायद्वीप समूह में भारतीय मूल के शासकों के प्रभाव के विकसित होने में सहायता मिली। भारत और कम्बोज की किंवदन्तियों से हमें जो प्रमाण मिले हैं, वे फूनान में हिन्दू धर्म को प्रथम शती से पूर्व का नहीं मानते। इसके अनुसार स्वेन तिएन ने (जिसका समीकरण कौण्डिन्य से किया गया है) सोमा राजकुमारी से विवाह करके फूनान की सम्प्रभुता प्राप्त की थी। एक अन्य दन्तकथा के अनुसार जावा का एक ब्राह्मण कम्बोज में राज्य स्थापना के लिए आया था। वह और कोई नहीं, कौण्डिन्य ही था। सम्भवतः कौण्डिन्य जावा के मार्ग से फूनान पहुँचा रहा होगा। कौण्डिन्य से पूर्व भौगोलिक एकता तथा और जातीय संगठन के कोई प्रमाण अभी तक इस समृद्धिशाली देश से प्राप्त नही होते है।वी० ए०

स्मिथ के अनुसार , "हिन्दचीन और हिन्देशिया के प्राचीन निवासी उसी वर्ग के थे जिसके भारतीय मुंडा तथा उससे मिलती हुई अन्य खस आदि जातियाँ"। इनके अनुसार इन समस्त जातियों का उद्‌गम भारत ही था तथा ये जातियाँ भारत से ही बाहर गयी थीं। सिल्वा लेवी भी स्मिथ के मत की ही पुष्टि करते हैं।

भाषा के आधार पर भी सुदूरपूर्व और भारत की मुंडा तथा खस जातियों के मध्य अनेक समानताएँ पायी जाती हैं। इतिहास भी साक्षी है कि भारत से बाहर जाने वाले व्यक्ति उत्तरी भारत के उच्च और सभ्य वर्ग के थे। अभिलेखों से इस प्रकार के प्रमाण मिलते हैं जो शक संवत् और दक्षिण भारतीय लिपि के प्रयोग की पुष्टि करते हैं। शक संवत् या तो उत्तरी भारत से कम्बोज पहुँचा या तीसरी शती में पल्लवों द्वारा दक्षिण – पूर्व तट को विजित करने के पश्चात् पहुँचा।शक संवत् का प्रयोग भी कम्बोज में भारतीय प्रभाव की ही पुष्टि करता है। कम्बोज के उपलब्ध लेखों के आधार पर यह निश्चित किया जा सकता है कि प्राचीन काल में वहाँ एक असभ्य जाति रहती थी जिसकी रानी का नाम ल्यु येह अथवा सोमा था। भारत से पहुँचे ब्राह्मण कौण्डिन्य ने इससे विवाह किया। कहा जाता है कि कौण्डिन्य इन्द्रप्रस्थ के राजा अमृत्यवंश का पुत्र था । सोमा और कौण्डिन्य से जो पुत्र उत्पन्न हुआ, वही आगे चलकर कम्बोज का शासक बना जिस समय कौण्डिन्य वहाँ पर पहुँचा, कम्बोज में दो राज्य थे प्रथम फूनान और द्वितीय कम्बोज। प्रारम्भ में फूनान अत्यधिक उन्नति कर रहा था परन्तु बाद में फूनान की शक्ति का पतन हो गया और कम्बोज ने फूनान को अपने अधीन कर लिया। इस वंश के शासक फन–चान के काल में भारत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुए।

पाँचवीं शती में उल्लिखित एक ग्रंथ से यह ज्ञात होता है कि पश्चिमी भारत का एक निवासी किंग–सि–लि व्यापार के लिए फूनान आया। इस व्यापारी ने फूनान के राजा को अपने देश का सम्पूर्ण वर्णन सुनाया तथा यह भी कहा कि उसका देश 5000 मील दूर है। वहाँ पहुँचने में 3–4 वर्ष लगते हैं। सम्राट् ने सू–वू को अपने प्रतिनिधि के रूप में इसके साथ भेजा। लेवी का मानना है कि "समुद्रगुप्त की उत्तर भारत की विजयों ने वहाँ के लोगों में सुदूरपूर्व जाने की अभिलाषा विकसित की"। उसकी मान्यता यह भी है कि 357 ई० में फूनान का राजा चन्दन भारतीय कुषाण वंशज से था तथा ईसा की चौथी शती के मध्य से पाँचवीं शती के मध्य तक भारत से काफी संख्या में अनेक राजकुमार, ब्राह्मण, विद्वान् और वीर सुदूरपूर्व गये। इसी समय फूनान में नवीन हिन्दू चेतना जाग्रत हुई।

पाँचवीं या छठीं शती में हिन्दू धर्म के साथ–साथ बौद्ध धर्म ने भी अपना प्रभाव स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया था। कौण्डिन्य के वंशजों द्वारा जिन प्रदेशों की स्थापना की गयी थी, उनके नाम भी बौद्ध धर्म के प्रभाव की पुष्टि करते हैं। यहाँ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि अभी तक ब्राह्मण कौण्डिन्य के सम्बन्ध में किसी निश्चित मत की स्थापना नहीं हो सकी है। पिलियो के अनुसार कौण्डिन्य प्रथम शती में पश्चिम से फूनान आया था। विक्टर गोनलियर का मानना है कि कौण्डिन्य एक काल्पनिक नाम है। सोदेस का मत है कि चोलों और पल्लवों के एक राजकुमार के नाग–कन्या से विवाह करने की कथा प्रचलित है। सम्भवतः यह राजकुमार ही कौण्डिन्य था, जो भी हो कौण्डिन्य भारतीय था, यह बात अनेक साक्ष्यों से प्रमाणित हो चुका है।

भारतीय धर्मशास्त्रों ने कम्बोज के धर्म को अत्यधिक प्रभावित किया था। कम्बोज के अनेक अभिलेखों में ऐसे ब्राह्मणों का विवरण दिया गया है जो वेद, वेदांग, स्मृतिग्रंथों, बौद्ध ग्रंथों तथा धर्मशास्त्रों में बड़े प्रवीण थे। पाँचवीं शती के एक संस्कृत अभिलेख के अठारह श्लोकों में कुरुक्षेत्र तीर्थ के पवित्र स्नान का वर्णन भी किया गया है। इस स्नान को करने से एक हजार अश्वमेध यज्ञों, सौ वाजपेय यज्ञों और एक लाख गायों को दान देने के समान पुण्य प्राप्त होता है। नैमिष तीर्थ को भी इस अभिलेख में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इस अभिलेख में कुछ श्लोक महाभारत से भी उद्धृत किये गये हैं। छठीं शती ई० के एक अन्य अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि रामायण, महाभारत और पुराणों के पवित्र पाठ के लिए प्रतिदिन व्यवस्था की जाती थी तथा मन्दिर में इन धार्मिक पुस्तकों की प्रतियाँ दान देना एक पवित्र कार्य माना जाता था।

कम्बोज के राजाओं में यशोबर्मा का शासनकाल भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह एक धर्मनिष्ठ राजा था। इसने महाकाव्य पर एक टीका स्वयं लिखी। शिवपुरी में एक महावि।ालय खुलवाया। अनेक आश्रम बनवाये। हर्षबर्मा का बनाया हुआ मन्दिर नोम–बकेंग की पहाड़ी के समीप है। इस अवधि में त्रिभुवनेश्वर स्वामी शिवसोम आदि विद्वानों द्वारा धर्म–विस्तार के लिए किये गये अथक प्रयास भी उल्लेखनीय हैं। इस काल में कम्बोज में शैव और बौद्ध धर्म की अच्छी प्रगति होती रही और कम्बोडिया निवासी उन्हें अपनी इच्छानुसार अपनाते रहे। कम्बोज में संस्कृत में लिखे गये अभिलेख यह सिद्ध करते हैं कि इन अभिलेखों को लिखने वालों को भारतीय

महाकाव्यों और पुराणों का विशद् ज्ञान था। वे भारतीय दर्शन और आध्यात्मिक विचारों से पूर्ण रूप से परिचित थे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत से हजारों मील दूर स्थित होने के पश्चात् भी कम्बोज का वातावरण पूर्णतया भारतीय था। यह स्वयं में काफी आश्चर्यजनक है ।

कम्बोज के विद्वान् पाणिनि के व्याकरण से भली–भाँति परिचित थे। यशोबर्मा के अभिलेख के अनुसार महाभाष्य का अध्ययन उसके समय में किया जाता था। राजा का एक मंत्री होरा (ज्योतिष ग्रंथ) शास्त्री में अत्यन्त निपुण था। स्मृतिकार मनु का कम्बोज के अभिलेखों में कानून निर्माता के रूप में उल्लेख किया गया है। कम्बोज की विधि के निर्माण का मुख्य स्रोत मनु का धर्मशास्त्र ही था।यद्यपि ब्राह्मण विधि संहिता, बौद्ध धर्म व स्थानीय परम्पराओं के प्रभाव के कारण काफी संशोधित हो चुकी थी। कम्बोज के कुछ अभिलेखों में वात्स्यायन का भी उल्लेख किया गया है।

धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त लौकिक साहित्य भी कम्बोडिया में काफी प्रचलित था। नवीं शती ई० के पूर्व के एक अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि मीमांसा, वैशेषिक न्याय, समीक्षा, अन्वीक्षिकी और अर्थशास्त्र का कम्बोज में नियमित रूप से अध्ययन किया जाता था। संस्कृत काव्य भी इनके अध्ययन का प्रमुख विषय था। प्रे–रूप अभिलेख के चार श्लोक रघुवंश के श्लोकों की भाँति प्रतीत होते हैं। इन श्लोकों में अनेक स्थानों पर उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया गया है जिनका प्रयोग कालिदास ने अपने साहित्य रचना में किया है। इससे सिद्ध होता है कि कम्बोजवासी भारतीय काव्य परम्परा से अत्यधिक प्रभावित थे। कम्बोज (कम्बोडिया) के राजाओं के अभिलेखों से उस स्थान के नियम, विनियम और धर्म के प्रयोग किये जाने वाले विभिन्न स्वरूपों, विशेष रूप से शैव और वैष्णव मत का अत्यन्त सूक्ष्म परिचय भी प्राप्त होता है। इन अभिलेखों से देवी–देवताओं के केवल नाम का ही ज्ञान नहीं होता है अपितु इनके पीछे क्या दार्शनिक कारण था तथा कौन से दार्शनिक तत्त्वों ने इसको प्रभावित किया इसका सूक्ष्म विवेचन भी होता है। सम्राट् तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा विभिन्न देवी–देवताओं की मूर्तियों एवं मन्दिरों का निर्माण इस तथ्य की पुष्टि करता है कि धर्म का मनुष्यों के दैनिक जीवन में अत्यधिक प्रभाव था। अधिकांश अभिलेखों में पवित्र स्थानों तथा मन्दिरों के निर्माण का उल्लेख किया गया है जिनमें से अब अनेक मन्दिर ध्वंसावशेषों के रूप में वि।मान हैं। हिन्दू धर्म के कम्बोज में प्रभाव की पुष्टि वहाँ के राजाओ, प्रमुख व्यक्तियों और पुरोहितों के संस्कृत नामों से भी होती है। राजकुमार अपने गुरु से जो शिक्षा ग्रहण करते थे, उसमें गणित और ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण स्थान था। संस्कृत व्याकरण का अध्ययन अनिवार्य था। इसके अतिरिक्त दर्शन के विभिन्न स्वरूपों व धर्मशास्त्र का अध्ययन भी राजकुमार को करवाया जाता था। यहाँ वेद, विशेष रूप से अथर्ववेद और वेदांग का अत्यन्त सावधानी से अध्ययन किया जाता था। भारतीय सभ्यता और संस्कृति प्राचीन काल में कम्बोज में जिन भागों में पहुँची, उनमें भारत और चीन से जाने वाला स्थल मार्ग भी था। परन्तु इस काल में समुद्री मार्ग का प्रचलन निरापद मार्ग होने के कारण अधिक था।

बौद्ध जातक कथाओं में इस देश का उल्लेख नारिकेल द्वीप के नाम से किया गया है। टालेमी ने हिन्द–चीन तथा इण्डोनेशिया के हिन्दू राष्ट्र ग्रंथ में उस समय भारतीयों द्वारा बनाये गये विशाल जलपोतों का वर्णन किया है। इन पर 700 व्यक्ति सुगमता से समुद्र की यात्रा कर सकते थे। फ्रांसीसी विद्वान् पीलिये ने लिखा है कि इस क्षेत्र में उपलब्ध प्राचीन शिलालेखों की लिपि हिन्दू सभ्यता की देन है। पेरिप्लस ऑफ द एरीथियन सी में भी भारतीय जहाजों के हिन्द–चीन जाने का वर्णन मिलता है।

9-3 lkjk'k

कम्बोज में मानव अधिवास के प्रमाण प्रागैतिहास काल से ही मिलने लगते है तथा समय के साथ–साथ उनमें उत्तरोतर विकास परिलक्षित होता है जो किसी भी मानव समुदाय के लिए आवश्यक है। हम देखते हैं कि वंहा मानव भाषा व लिपि का विकास करते हुये परस्पर संवाद स्थापित करता हुआ आगे बढ़ता जाता है तथा अपने आप को एक समुदाय के रूप में स्थापित करने का सार्थक प्रयास करता है। उत्तरोत्तर प्रगति करता हुआ मानव उस क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनो का समुचित दोहन करना प्रारम्भ करता है जिसके फलस्वरूप भारतीय तथा अन्य क्षेत्रों के व्यापारी, व्यापार–वाणिज्य की दृष्टि से उनके संपर्क में आते हैं तथा भारतीय धर्म, संस्कृति व परम्पराएं उनके माध्यम से वहाँ पहुँचती है। साथ ही साथ भारत से धार्मिक परम्पराओं के संवाहक भी अपने धर्म के प्रचार–प्रसार हेतु वहाँ पहुँचते हैं जिसकी परिणति ब्राह्मण एवं बौद्व धर्म के मूल तत्त्वों के रूप में वंहा आज भी दिखाई देती है।

9-4 ckS/k ç'u

प्रश्न 1 कम्बोज का संक्षिप्त परिचय देते हुये वहाँ के पुरातात्त्विक खोजों की चर्चा करें ?

.....

.....

.....

प्रश्न 2 भारतीय धर्म के मूल तत्त्वों पर टिप्पणी कीजिये ?

.....

.....

.....

प्रश्न 3 कम्बोज के जनमानस पर ब्राह्मण धर्म का क्या प्रभाव पड़ा? संक्षेप में प्रकाश डालिए?

.....

.....

.....

9-5 lanHkZ xzUFk

1- Majumdar, R.C. 1944, Hindu Colonies in Far East, General printers Publishers Limited, Calcutta

2- Majumdar ,R-C- 1944, Kambuj dess, University of Madras, Madras

3- Sastri, K. A. Nilkanth, 1940- ŚRĪ VIJAYA, Bulletin de l^École française d^EÛtrême&Orient 40 no- 2-

4- Vidyalankar, Satyketu, 2015, Dakshin Purvi aur Dakshini Asia mein Bharatiya Sanskriti, Shree Saraswati Sadan,New Delhi

bdkbi&10 lkekftd] vkfFkd ,oa /kkfeid fLFkfr

bdkbi dh :ijs[kk

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 सामाजिक स्थिति

10.2.1 वर्ण और जाति प्रणाली

10.2.2 शिक्षा

10.2.3 मनोरंजन

10.2.4 विवाह

10.2.5 समाज और नारी

10.2.6 आभूषण और श्रृंगार

10.2.7 भोजन और पेय

10.2.8 मृतक संस्कार

10.2.9 दास प्रथा

10.3 आर्थिक स्थिति

10.3.1 भूमि एवं कृषि

10.3.2 उद्योग और व्यवसाय

10.3.3 माप और तौल

10.3.4 वाणिज्य, व्यापार तथा यातायात

10.4 धार्मिक स्थिति

10.4.1 शैव धर्म

10.4.2 वैष्णव धर्म

10.4.3 बौद्ध धर्म

10.4.4 धार्मिक समन्वय

10.5 सारांश

10.6 बोध प्रश्न

10.7 संदर्भ ग्रंथ

10-0 çLrkouk

प्राचीन कम्बोज के इतिहास के अध्ययन के साथ–साथ उसके सामाजिक आर्थिकऔर धार्मिकस्थिति का भी वास्तविक ज्ञान अवश्यक है जिससे उस देश की प्राचीन व्यवस्था से आम जनमानस परिचित हो सके तथा कम्बोज के वास्तविक लोकजीवन को जान सके।विदित है कि वहाँ के संस्कृत अभिलेखों में कम्बोज देश की तत्कालीन सामाजिक, आर्थिकऔर धार्मिक व्यवस्था का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। व्यापार–वाणिज्य के माध्यम से भारतीयों के सम्पर्क में आकर कम्बोजवासियों ने सभ्यता एवं संस्कृति के क्षेत्र में उन्नति की एवं भारत के ही धर्म,आचरण, संस्कृति आदि को अपना लिया।

10-1 mnn~ ;

प्राचीन काल में दक्षिण–पूर्व एशिया में अन्य देशों की तरह कम्बोज भी भारतीय सभ्यता व संस्कृति से प्रभावित दिखाई देता है जिसके न केवल साहित्यिक बल्कि पुरातात्त्विक प्रमाण भी प्राप्त होते हैं।साहित्यिक स्रोतों में ब्राह्मण एवं बौद्ध ग्रंथ तथा चीनी ग्रंथ प्रमुख हैं जबकि पुरातात्त्विक दृष्टि से आभिलेखिक साक्ष्य महत्त्वपूर्ण है।9वीं शताब्दी से 11वीं शताब्दी तक कम्बोज एक विशाल व शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में परिणित हो गया।यद्यपि भारत के साथ उनका परिचय इससे पूर्व में भी था जिसकी जानकारी कम्बोज से प्राप्त अभिलेखों व पुरातात्त्विक स्रोतों तथा चीनी विवरणों से होती है।भारतीय सभ्यता के तत्त्व कम्बोज के जनजीवन में भी देखने को मिलता है।कम्बोज में धार्मिक परंपरा के प्रमाण व्यापक रूप से दिखाई देता है क्योंकि भारतीयों ने व्यापार–वाणिज्य के साथ –साथ धर्म को भी कम्बोज में स्थापित करने का कार्य किया। यहाँ के अभिलेख भी भारतीय अभिलेख लेखन की तरह देवी–देवताओं के स्तुति के साथ आरंभ होते हैं तथा एक अभिलेख से तो याज्ञिक कर्मकांड का भी उल्लेख मिलता है। संक्षेप में कह सकते हैं कि सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक दृष्टि से कम्बोज ने भारत से बहुत कुछ सीखा तथा उसका सांस्कृतिक वातावरण पूर्णरूपेण भारतीय प्रतीत होता है। प्रस्तुत इकाई में वहाँ की प्राचीन कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति जानने समझने का प्रयास करेंगे।

10-2 lkekftd fLFkfr

प्राचीन कम्बोज का सामाजिक जीवन भारत से अत्यन्त प्रभावित था। वहाँ प्रचलित व्यवस्थाओं को सुविधानुसार विभिन्न बिन्दुओं में विभाजित कर समझने का प्रयास किया गया है जो निम्नलिखित हैं :–

10-2-1 o.k vkj tkfr ç.kkyh

भारतीय वर्ण व्यवस्था के अनुकूल कम्बोज अभिलेखों में चारवर्णों का उल्लेख मिलता है। वहाँ के राजा अपने देश के समाज–संगठन को भारत के चातुर्वर्ण्य पर आधारित समाज के अनुरूप बनाने के निमित्त सदैव प्रयत्नशील रहा करते थे। उन्होंने भारतीय आश्रम व्यवस्था से प्रभावित होकर अपने समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोपरि माना गया और उनके वैवाहिक सम्बन्ध राजवंश में भी स्थापित होते थे। इस संसर्ग से वहाँ 'ब्राह्म–क्षत्रिय 'जाति उत्पन्न हुई जिसका कई अभिलेखों में उल्लेख है। वैश्यों का उल्लेख किसी भी अभिलेख में नहीं हैं पर वे समाज के एक आवश्यक अंग थे। उनसे सम्बन्धित चम्पा में एक अभिलेख है। समाज में ब्राह्मणों को उच्च स्थान प्राप्त करने का श्रेय उन कौण्डिन्य ब्राह्मणों को है जिन्होंने कम्बोज देश में आकर अपनी सत्ता स्थापित की और अपने प्रवास में वहाँ की रानियों से विवाह किया। एक अभिलेख में राजा सूर्यवर्मन के विषय में यह कहा गया है कि उसने अपने राज्य में वर्ण दृ भाग की स्थापना की थी और शिवाचार्य नामक विद्वान को श्रेष्ठत्व की स्थिति प्रदान की थी। किन्तु अपने देश की विशिष्ट परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर वह समाज को एक नया रूप देने में भी संकोच नहीं करता था। राजा जयवर्मन पंचम ने दो नये वर्णों का निर्माण किया जिन्हें ख्मुक और कर्मान्तर कहा जाता था। इन वर्णों के जो व्यक्ति विद्या, शील और आचार में श्रेष्ठ हों, उन्हें आचार्य, चतुराचार्य, प्रधान सदृश महत्त्वपूर्ण पदों पर भी नियुक्त किया जाता था। इन दो नये वर्णों के विशिष्ट कार्य क्या थे, यह स्पष्ट नहीं है। व्यवसाय निर्धारण हेतु जन्म–जाति किसी प्रकार का बन्धन न था। एक अभिलेख के अनुसार ब्राह्मणों द्वारा हाथी हाँकना, गणिका सम्बन्धी, कर्मार और पुरोहित का कार्य करना बताया गया है। अरब इतिहासकारों के मतानुसार सप्तवर्ण की समानता भारतीय समाज के सात अंगों के विभाजन से की जा सकती है। इन नयी जातियों का विवाह तीन ऊँचे वर्णों से हो सकता था। सम्राट् ने भी इन नयी जातियों के निर्माण में अपनी स्वीकृति दी थी। अंकोरवाट के चित्रों में भी विभिन्न जातियों के व्यक्ति अपनी वेश–भूषा में दिखाये गये हैं। इन जातियों के अतिरिक्त अन्तर्जातीय विवाहों से उत्पन्न सन्तानों का भी अभिलेख में उल्लेख है जिन्हें दान दिया जाता था। एक अभिलेख में त्रिभुवन राज द्वारा विजयागीश्वर की मूर्ति स्थापना का उल्लेख है। उनकी बहन का नाम तेनवई और बहनोई का नाम सोमवज्र था। अभिलेखों में कुछ ऐसे भी नाम प्राप्त हैं जिनमें स्थानीय और भारतीय सम्मिश्रण है, जैसे लोज युधिष्ठिर , मृतोत्र जयेन्द्र पण्डित, मृतोज पृथ्वीचन्द्र पण्डित आदि। ऐसा प्रतीत होता है कि वे स्थानीय और भारतीय वैवाहिक सम्बन्धों से उत्पन्न थे। वर्ण का आधार कर्म न होकर जन्म था। ब्राह्मण कुल में उत्पन्न व्यक्ति ब्राह्मण ही होता था, चाहे वह कोई भी व्यवस्था या कार्य करता हो। राजा हर्षवर्मन तृतीय के पल्लव स्टेले

अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि कम्बोज देश के ब्राह्मण कुलों में व्यक्ति कतिपय ऐसे कार्य भी करते थे जिनका ब्राह्मणों से कोई सम्बन्ध नहीं था। इनमें हाथी के महावत का काम , शिल्पी का काम तथा गणिका कार्य उल्लेखनीय है। इन कार्यों को करने वालों को भी ब्राह्मण ही माना जाता था। कम्बोज समाज निम्नांकित तीन मुख्य वर्गों में विभक्त था –साधारण जनता, दास एवं पहाड़ी दास।स्रोतों से ज्ञात होता है कि साधारण जनता सामयिक सैन्य सेवा में जिम्मेदारी के साथ संलग्न थी। ये नवीन सैन्यदल, शस्त्रों से सुसज्जित बाजों के साथ प्रस्थान करते थे। इनका अपना एक अलग दल समाज में था। दास लोग साधारण जनता से निम्न वर्ग के थे। इस वर्ग में ऋण लेने वाला, लड़ाई के कैदी इत्यादि आते थे। राजकीय अनुदान द्वारा लड़ाई के कैदी एवं अन्य दास मन्दिरों और आश्रमों को प्राप्त थे। दास–दासियों में वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित हो जाते थे। एक अभिलेख में 9 दासी पत्नियों के 43 दास पति का वर्णन मिलता है। पहाड़ी दासों की एक अलग श्रेणी थी। समाज में कुछ ऐसे भी दास थे जो अपने स्वामी की आज्ञा के पालन करने में हिचकते थे इसीलिए उन्हें पहाड़ों की तलहटी तथा जंगलों में रहने को बाध्य किया जाता था। इन सबके अतिरिक्त राजकुल के स्वामिभक्त लोगों का एक वर्ग अलग था जिन्हें संजक कहा जाता था और स्वामिभक्ति के लिए प्राणों को न्योछावर करना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं थी।

10-2-2 f'k{kk

शिक्षा से मनुष्य का जीवन प्रज्ञासम्पन्न, विशुद्ध, परिष्कृत एवं समुन्नत ही नहीं होता, वरन् समाज भी नैतिक निर्देशों का पालन करता हुआ सन्मार्ग पर चलकर विकसित होता है। शिक्षा का तात्पर्य प्रकाश से है, वैसा प्रकाश जो व्यक्ति और समाज को चमत्कृत कर दे। यदि व्यक्ति में अन्तर्दृष्टि का विकास नहीं हुआ और उसे अन्तर्ज्योति की उपलब्धि नहीं हुई तो वह मूर्ख ही है, क्रियावान पुरुष ही सच्चे अर्थों में शिक्षित हैं। इसलिए शिक्षा जहाँ हमें अन्तर्ज्योति, अर्न्तज्ञान और संस्कार प्रदान करती है वहाँ उसका उद्देश्य यह होना चाहिए कि इस योग्य बनें कि एक सम्मानित नागरिक की भाँति आत्मनिर्भर होकर जीवनयापन कर सकें। शिक्षा का उद्देश्य जीने योग्य बनाना ही नहीं, बल्कि जीविका के योग्य भी बनाना है। शिक्षा वैयक्तिक जीवन के परिष्कार का कार्य तो करती ही है, साथ ही साथ समाज को भी उन्नत बनाती है। अपने विभिन्न क्षेत्रों में अर्जित थाती को सँजोये रखने के लिए शिक्षा की आवश्यकता प्रत्येक समाज को पड़ती है।

कम्बोज देश के अभिलेखों में उक्त देश की शिक्षा प्रणाली तथा साहित्य का पूर्णतया ज्ञान उपलब्ध होता है। देश में शैक्षणिक परम्परा का अनुकरण किया गया था, जैसा कि अध्ययन विषय, शिक्षा–प्रणाली, विभिन्न स्तर के शिक्षक, शैक्षिक केन्द्र आदि से प्रतीत होता है। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि कम्बोज अभिलेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि भारत से प्रकाण्ड विद्वानों के आगमन से इनको बड़ा प्रोत्साहन मिला था और इसीलिए भारत के साथ शैक्षणिक सम्पर्क बना हुआ था। कम्बोज में भारतीय आगन्तुकों में अगस्त्य वेद और वेदांग में पारंगत थे तो वंही सर्वज्ञ मुनि नामक आर्यावर्त निवासी ब्राह्मण चारों वेदों के ज्ञाता तथा शिवभक्त भी थे। कम्बोज देश में आकर उन्होने तथा उनके वंशजों ने उच्च पदों को सुशोभित भी किया। एक कथानक से ज्ञात होता है कि हिरण्यदामन नामक तांत्रिक शिवकैवल्य को ब्रह्मविनाशिक्ष,नयोतर, सम्मोह तथा शिरच्छेद नामक चार तांत्रिक ग्रंथों में शिक्षा प्रदान करने हेतु भारत से कम्बोज जयवर्मन द्वितीय के निमंत्रण पर आया था। कम्बोज देश से जो विद्वान् शिक्षा प्राप्त करने भारत आये, उनमें इन्द्रवर्मन के गुरु शिवसोम ने भगवान् शंकर के चरणों में शास्त्रों का अध्ययन किया था। सोदे के मतानुसार गौड़ शैली में लिखे कुछ अभिलेख यह संकेत करते हैं कि इनके लेखक या तो पूर्वी भारत के निवासी थे अथवा कुछ दिन वहाँ रह चुके थे। भारत के साथ शैक्षणिक सम्पर्क इनकी शिक्षा के स्तर को ऊँचा करने में सहायक सिद्ध हुआ।

कम्बोज देश में प्राचीन भारतीय शिक्षा–प्रणाली का अनुसरण किया गया था। वहाँ से अभिलेखों में उपाध्याय और अध्यापक का उल्लेख मिलता है। विद्यार्थियों को अन्तेवासिन् अथवा शिष्य कहा जाता था। उसी प्रकार परमेश्वर के मन्दिर में विजय की उपाध्याय पद पर नियुक्ति हुई थी। जयमहाप्रधान का दौहित्र जयमंगलार्थ श्री इन्द्र जयवर्मन के समकालीन अध्यापक पद पर नियुक्त हुआ था। शब्दकोष के अनुसार उपाध्याय केवल वेद, वेदांग और व्याकरण के खण्ड अध्यापन से ही अपनी जीविका चलाता था। प्रायः मन्दिर वि॥ के केन्द्र थे और यहाँ पर शिक्षक और छात्र रहते थे तथा भोजन और आवास उनको मिल जाता था। इनमें स्त्रियों का स्थान नगण्य था किन्तु उनके पढ़ने का अलग प्रबन्ध था। कम्बोज अभिलेखों में बहुत से विदेशियों का उल्लेख मिलता है तथा शिक्षित स्त्रियों के नाम भी अंकित हैं। योगेश्वर पण्डित की एक विख्यात शिष्या जनपदा थी जिसने

केशव नामक ब्राह्मण से विवाह किया था। जयवर्मन सप्तम की प्रथम रानी ने भी अपनी बड़ी बहन से शिक्षा पायी थी जो स्वयं विदुषी थीं और बौद्ध आश्रमों में शिक्षा देती थीं। अपनी छोटी बहन की मृत्यु के बाद उन्होंने स्वयं सम्राट् से विवाह कर लिया। एक अभिलेख में तिलका नामक एक विदुषी का उल्लेख है जो विद्या में वागीश्वरी भगवती की समानता रखती थी।

विश्व के अन्य देशों के समान प्राचीनकाल में कम्बोज देश में शिक्षा मुख्यतया मन्दिरों एवं धर्मस्थलों में केन्द्रित थी। यही नहीं मन्दिरों एवं विहारों के साथ आश्रम स्थापित थे जिनमें विद्यार्थी गुरुओं से शिक्षा प्राप्त करते थे। कम्बोज के आश्रम शैव, वैष्णव एवं बौद्ध मन्दिरों के साथ स्थापित थे। इनमें शिक्षण कार्य करने वाले गुरु कुलपति कुलाध्यक्ष, आचार्य, उपाध्याय एवं अध्यापक कहलाते थे। कुलपति का कार्य आश्रम की व्यवस्था करना होता था। आभिलेखिक साक्ष्यों के अनुसार, मन्दिर तथा आश्रम शिक्षा केन्द्र थे जिनकी विधिवत प्रणाली थी। यशोबर्मा (889–900 ई.) द्वारा बनवाया गया यशोधराश्रम हीरे–मोती, सोना–चाँदी, गाय–भैंस, हाथी–घोड़े तथा स्त्री–पुरुषों से भरा पड़ा था। आवास की भी व्यवस्था थी। कुलपति, कुलाध्यक्ष , आचार्य, उपाध्याय तथा शिक्षक अध्ययन–अध्यापन का कार्य सम्पन्न करते थे। यहाँ अध्यापिकाओं का भी उल्लेख मिलता है। पाठ्यक्रम में अनेक धर्मों, शैव, वैष्णव, बौद्ध आदि धार्मिक ग्रन्थों तथा वेदों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। जयवर्मन पंचम के बन्तेश्राई के अभिलेख में आश्रम के अध्यक्ष को आदेश दिये जाने का उल्लेख मिलता है कि वहाँ के अध्यापकों द्वारा वेद का पाठ होता रहे। ये ही आश्रम वि॥ के बड़े केन्द्र थे और यहाँ से ब्राह्मण तथा बौद्ध विद्वान शिक्षा प्राप्त कर निकलते थे। शिक्षण केन्द्र स्वतंत्र थे और अध्यापक तथा शिष्य में जातीय आधार पर कोई भेद–भाव नहीं था। अभिलेखों में इनके प्रशासन सम्बन्धी नियमों का उल्लेख है। कम्बोज देश की शिक्षा की प्रगति में बौद्ध विहारों का स्थान भी प्रमुख रहा है। तेप प्रनम के अभिलेख में यशोवर्मन द्वारा बौद्ध आश्रमों के प्रति दिये गये दानों का उल्लेख मिलता है। कम्बोज देश में अनेक बौद्ध शिक्षा केन्द्र थे, जो सौगताश्रम के नाम से प्रसिद्ध थे। इन आश्रमों में बौद्ध भिक्षुओं का केवल आवास स्थल ही न था बल्कि वहाँ उच्च कोटि के विद्वान् भी रहा करते थे तथा बौद्ध शिक्षा का आदान–प्रदान होता था। यहाँ बौद्ध धर्म और व्याकरण का भी अध्ययन होता था।

भारतीय संस्कृति, सभ्यता, विचार तथा शिक्षा का कम्बोज देश में इतनी तेजी से प्रसार न होता, यदि राजकीय प्रोत्साहन न मिला होता। आश्रमों में अध्यापक और अन्तेवासियों के सहायतार्थ राजकीय अनुदान दिया जाता था। इसके अतिरिक्त उच्च श्रेणी के पुरुषों, व्यापारियों और कृषकों की ओर से भी अन्न तथा वस्त्र प्राप्त होता रहता था। शिक्षा क्षेत्र में यशोवर्मन, सूर्यवर्मन द्वितीय और जयवर्मन सप्तम का प्रमुख योगदान था। वे कवियों को भी प्रोत्साहित करते थे और देश में उस प्रकार के कवि–सम्मेलनों का आयोजन किया जाता था जैसा कि राजशेखर ने अपनी काव्य मीमांसा में उल्लेख किया है। यह ज्ञात होता है कि कवि–सम्मेलनों में कभी–कभी इस प्रकार की प्रतियोगिता होती थी जिसमें कवियों को पुरस्कार से विभूषित किया जाता था। एक अभिलेख में शूर का अपने प्रतिद्वन्द्वी भीमक को पराजित करने का उल्लेख है। इसी अभिलेख में एक अन्य कवि मौर्य का भी नाम अंकित है। जयवर्मन द्वितीय का गुरु भागवत कवि था, जो श्रीनिवास कवि कहलाता था और उसने पृथ्वीचन्द्र पण्डित की उपाधि प्राप्त की थी तथा उसे एक स्वर्ण की पालकी भी मिली थी साथ ही उल्लेख मिलता है कि जयेन्द्र पण्डित के शिष्य फालपरिय को कवीन्द्र पण्डित की उपाधि से विभूषित किया गया था तथा यशोवर्मन की शिक्षा शिवसोम के शिष्य वामशिव द्वारा हुई थी जो इन्द्रवर्मन का भी शिक्षक था। जयेन्द्रवर्मन ने भी उदयादित्य वर्मदेव को शिक्षा दी थी। शिक्षा जगत् में जयवर्मन की तुलना पाणिनि से की गयी है। अभिलेखों से प्रकट होता है कि निम्नलिखित राजाओं ने देश की शिक्षा–प्रगति में सराहनीय योगदान किया। राजा भववर्मन,राजा इन्द्रवर्मन,जयवर्मन द्वितीय, यशोवर्मन,सूर्यवर्मन द्वितीय उदयादित्यवर्मन आदि

अभिलेखों में किन विषयों का अध्ययन–अध्यापन होता था यह भी उल्लिखित है। शैव, वैष्णव, बौद्ध आदि धर्मों के धार्मिक साहित्य का कम्बोज की शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान था। अध्यापक और शिष्य की इच्छा तथा विद्वत्ता के अनुकूल विषयों का पठन–पाठन था। संस्कृत अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि धर्म और दर्शन के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया जाता था। राजशास्त्र का अध्ययन किया जाता था। सर्वत्र व्याकरण, निरुक्त, खगोल और काव्य विषय का अध्ययन किया जाता था। इस काल में अनेक मनुष्य ज्योतिष का अध्ययन करते थे। स्डोक कॉक थॉम अभिलेख में गन्धर्व वि॥, शिल्प विद्या, होरा शास्त्र और चिकित्सा–शास्त्र का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त अन्य अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि निम्नलिखित विषयों के अध्ययन हेतु अध्यापक नियुक्त किये गये थे यथा– 1. वेद 2. धर्मशास्त्र 3. योगाचार 4. सांख्य 5 पातंजलि योग, 6. न्याय, 7. वैशेषिक, 8 मीमांसा, 9 शिव सिद्धान्त 10. अंगशास्त्र, 11 . आयुर्वेद 12. ज्योतिषशास्त्र 13 अर्थशास्त्र, 14 रामायण और

महाभारत , 15. पुराण, 16. काव्य, व्याकरण, संगीत, नृत्य, कला, ज्योतिष आदि।

यद्यपि सभी पुराणों का नाम अभिलेखों में उपलब्ध नहीं है परन्तु सावित्री, वासुदेव, कंसवध तथा हिरण्यकशिपु आदि की कथाओं से यह ज्ञात होता है कि देश में पौराणिक कथाएँ प्रचलित थीं। अभिलेखों के रचयिताओं ने मनुस्मृति से भी बहुत कुछ उद्धृत किया है। कालिदास के ग्रंथ रघुवंश से भी विद्वान् लोग परिचित थे क्योंकि एक अभिलेख में दक्षिण और दिलीप का वर्णन है जिसमें रुद्रवर्मन के साम्राज्य की तुलना दिलीप के राज्य से की गयी है। एक अन्य अभिलेख में प्रवर सेन के सेतुबन्ध, सिंहावलोकित न्याय तथा गौतम के न्याय सूत्र का उल्लेख है। सम्भवतः विद्वानों को कौटिल्य के अर्थशास्त्र की भी जानकारी रही हो। कम्बोज देश के अनेक अभिलेखों में वेद तथा वेदांग, व्याकरणिक, पाणिनि की अष्टाध्यायी आदि का उल्लेख है। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि प्रशस्तिकार शुद्ध संस्कृत लिख सकते थे और साहित्य क्षेत्र में उनका अच्छा ज्ञान था।

कम्बोज देश के साहित्य जगत् में प्राचीन भारतीय साहित्य के तीनों अंगों–संस्कृत, पालि और प्राकृत को अपनाया गया किन्तु संस्कृत को ही सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। कहा जाता है कि संस्कृत वहाँ की राजभाषा थी। एक अभिलेख में गुणाढ्य का भी उल्लेख है जिससे ज्ञात होता है कि प्राकृत भाषा के भी अध्ययन का प्रचार था किन्तु प्राकृत भाषा में कोई अभिलेख उपलब्ध नहीं है। सम्भवतः यह प्रतीत होता है कि कम्बोज में आये हुए ब्राह्मण अपनी भाषा की विशिष्टता को पवित्र रखना चाहते थे। लेखन के लिए ब्राह्मी लिपि का ही प्रयोग हुआ किन्तु कहीं–कहीं पर दक्षिण पल्लव लिपि में भी लेख मिलते हैं। इस सम्बन्ध में विद्वानों के विचारों में मतभेद रहा है। इसी आधार पर यहाँ के भारतीय औपनिवेशकों का उद्‌गम स्थान उत्तरी अथवा दक्षिणी भारत माना गया है। इस सम्बन्ध में यह भी कहा जा सकता है कि प्राचीन कम्बोज देश में विदेशियों का अभाव न था और स्त्रियों को अपनी बुद्धि के आधार पर ज्ञान प्राप्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। शैक्षणिक क्षेत्र में भारत के साथ भी कम्बोज देश का सम्बन्ध रहा और वहाँ से विशेष विषय की शिक्षा के लिए भारतीय प्रकाण्ड विद्वान् बुलाये जाते थे। शिक्षा–केन्द्रों में आश्रम (गुरुकुल) का विशेष प्रबन्ध था। उन्होंने नवीन ग्रंथों की रचना की, जैसे यशोवर्मन ने महाभाष्य पर टीका लिखी है, इत्यादि।

10-2-3 eukj a tu

कम्बोज में नृत्य, गीत, वादन एवं नाटक मनोरंजन के मुख्य साधन थे। नर्तकियाँ गायन और वादन में पारंगत थीं और वे वीणा, दुन्दुभि और ताल का प्रयोग करती थीं। इनके अतिरिक्त पुरुष भी नृत्य कला में निपुण थे। भारत की ही तरह नर्तकियाँ देवालयों को अर्पित की जाती थीं। एक अभिलेख में सात नर्तकियों, ग्यारह गायकों और चार वीणा, कंजरी और लाहू पर वादन करने वालों के मन्दिर के प्रति अर्पण करने के उल्लेख हैं। प्रायः दक्षिण भारत में नर्तकियाँ देवालयों में नृत्य एवं सेवा हेतु अर्पित की जाती थीं। वे देवदासी कहलाती थीं। कम्बोज के पुरुष भी प्रायः गायन तथा वादन में निपुण होते थे। एक अभिलेख में एक गायक के विषय में लिखा है जिसका पिता जयवर्मन, धरणीन्द्रवर्मन प्रथम तथा सूर्यवर्मन द्वितीय के समकालीन एक राजकीय उच्च पदाधिकारी था। प्रह आइन कोसी अभिलेख में अनेक वाद्यों तथा वादन–यंत्रों का उल्लेख है–जैसे पटह, वीणा, घण्टा, मृदंग, पणव, भेरी और काहल आदि। कम्बोज के बहुत से परिवार गायन और वादन के लिए प्रसिद्ध थे तथा वंहा नाटक खेले जाते थे। जयवर्मन पंचम का गुरु वराह कथाकार और नाटककार भी था। वह महान् विद्वान था। उसकी प्रतिभा चतुर्मुखी थी। वह विविध विषयों का पारंगत पण्डित था। यहाँ पुरुष नौका विहार भी करते थे। जयवर्मन सप्तम के समकालीन सामन्त ने वसन्त में शिवरात्रि के उपलक्ष्य में नृत्य का भी आयोजन किया था। इनके अतिरिक्त मनोरंजन के अन्य साधनों में मुष्टि युद्ध तथा उत्सवों का भी आयोजन किया जाता था। वसन्तोत्सव धूमधाम से मनाया जाता था जिसका वर्णन भी अभिलेखों से प्राप्त होता है। मुर्गों तथा वन सूकरोंका युद्ध भी मनोरंजन के साधन थे।

10-2-4 fookg

विवाह प्रायः स्वजाति (स्व–वर्ण) में किये जाते थे, किन्तु अन्तर्जातीय विवाहों का भी प्रचलन कम्बोज समाज में विद्यमान था जैसा कि ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के बीच विवाह के उल्लेख से प्रकट होता है। कम्बोज देश के समाज में ब्राह्मणों और क्षत्रियों का स्थान सर्वोच्च था और इन वर्गों में परस्पर विवाह सम्बन्ध हो सकता था। यद्यपि ब्राह्मण , क्षत्रिय कन्या से विवाह कर सकता था किन्तु ब्राह्मण कन्या का विवाह अपने वर्ण से बाहर प्रायः केवल राजकुल के ही पुरुष से होता था, साधारण क्षत्रिय कुल के पुरुष से नहीं। उदाहरण के लिए–भववर्मन प्रथम की बहन का सोमशर्मा नामक ब्राह्मण से विवाह हुआ था,जयवर्मन द्वितीय ने भवस्वामिनी नामक एक

ब्राह्मणी से विवाह किया था,जयवर्मन सप्तम की दोनों रानियाँ ब्राह्मण कुल की थीं,जयवर्मन अष्टम ने नरपति देश के एक ब्राह्मण की प्रभा नामक कन्या से विवाह किया था। कम्बोज में अन्तर्जातीय विवाह के अतिरिक्त दहेज की भी प्रथा प्रचलित थी क्योंकि यह जानते हैं कि नागराज की कन्या सोमा का विवाह कौण्डिन्य के साथ हुआ था तो उसे नागराज की ओर से अपने साम्राज्य का एक भाग दहेज में दिया गया था। वैवाहिक सम्बन्ध प्रायः पिता अथवा अभिभावक द्वारा निश्चित किये जाते थे एक अभिलेख में मृतोत्र श्री सर्वाधिकार की पौत्री मेसोंक द्वारा स्वयं विवाह प्रस्ताव लेकर जाने का उल्लेख है और दहेज में एक घोड़ा तथा कुछ अन्य पदार्थों के दिये जाने का उल्लेख है। कम्बोज देश में विवाह संस्था का क्या स्वरूप था इस विषय में कतिपय संकेत अभिलेखों में पाये जाते हैं जो महत्त्व के हैं। सम्भवतः दास वर्ग के लोगों के लिए बहुपति–विवाह की प्रथा भी विद्यमान थी। कम्बोज देश में विधवा विवाह का प्रचलन था जिसकी पुष्टि लेखों से होती है। सूर्यवर्मन द्वितीय के फनोम रुन अभिलेख के अनुसार सूर्यवर्मन के पूर्वज हिरण्यवर्मन के तीन पुत्र थे जिनमें सबसे छोटे को युवराज कहते थे। उसका विवाह विजयेन्द्रलक्ष्मी के साथ हुआ था। युवराज की मृत्यु हो जाने पर विजयेन्द्रलक्ष्मी ने हिरण्यवर्मन के द्वितीय पुत्र जयवर्मन षष्ठ के साथ विवाह किया और जब उसकी भी मृत्यु हो गयी तो हिरण्यवर्मन के सबसे ज्येष्ठ पुत्र धरणीन्द्रदेव के साथ उसने पुनः विवाह किया। सूई वंश (चीन) के एतिहासिक दस्तावेज के अनुसार विवाह के अवसर पर कन्या को सुन्दर नवीन वेशभूषा से आभूषित किया जाता था और दोनों वर्ग के लोग आठ दिनों तक एक साथ जीवन यापन करते थे साथ ही दीप बराबर जलता रहता था और विवाह के बाद पति अपनी पत्नी के साथ अलग रहता था।

10-2-5 lekt vkj ukjh

समाज में स्त्रियों का उच्च स्थान था। भारतीय गृहणियों के समान उनका मुख्य काम घर की व्यवस्था करना था तथा वहाँ की मण्डियों में स्त्रियाँ प्रायः दुकानें भी चलाती थीं। राजमहलों की व्यवस्था में भी स्त्रियों का प्रमुख हाथ रहता था। कुछ स्त्रियाँ रक्षा कार्य करती थीं और अन्य स्त्रियाँ राजमहलों में दासी तथा मनोरंजन के लिए नियुक्त की जाती थीं। ये राजकीय पदाधिकारी भी थीं। तिलका नामक विदुषी को विद्वत्ता के उपलक्ष्य में आभूषण उपहार दिया गया था तथा उसे वाग्देवी उपाधि से भी विभूषित किया गया था। अभिलेखों तथा साहित्य में स्त्रियों की अभिरुचि का उल्लेख है। नारी शिक्षा का प्रचलन था। राजा के मंत्री और न्यायाधीश के पदों पर स्त्रियाँ भी नियुक्त होती थीं। जयवर्मन के समकालीन अभिलेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन कम्बोज में सती प्रथा भी प्रचलित थी।

10-2-6 vkHk"k.k vkj J`xkj

चीनी सूई वंश के इतिहास से यह पता चलता है कि सम्राट् स्वर्णजड़ित रेशमी वस्त्र धारण करते थे। भारतीय वस्त्र धोती मुख्य रूप से चित्रों में दिखायी गयी है। यह कटि के चारों ओर बाँधी जाती थी और इसमें चुन्नट भी होती थी। सम्राट् के समान ब्राह्मण भी कुण्डल पहनते थे किन्तु वीर क्षत्रिय कुछ भी नहीं पहनते थे सम्राट् उदयादित्यवर्मन ने यज्ञोपरान्त जो आभूषण दक्षिणा में अर्पित किये, उनमें मुकुट, कुण्डल, केयूर, कटक तथा मुकुटवेणी मुख्य थे। पुरोहितों की पोशाक विशेष प्रकार की थी।यज्ञों के अवसर पर पुरोहित विशेष प्रकार के टोपी और कुर्ता धारण करते थे। सम्भवतः यह धार्मिक तथा न्यायालय का वस्त्र था। अभिलेखों से पता चलता है कि चाँदी के मूठ लगे दर्पण का प्रयोग यंहा होता था। चीनी वृत्तान्तों में 165'' व्यासतथा 40 पौण्ड के दर्पण का वर्णन है। कहा जाता है कि यह दर्पण फूनान में पश्चिम भारत से आया था क्योंकि इस प्रकार के अनेक दर्पण भारत से प्राप्त हुए हैं। चीनी वृत्तान्तों से हमें यह भी जानकारी मिलती है कि नारियाँ अपने हाथ–पैर को रँगाती थीं और बालों को कंघी से सँवारती तथा जूड़ा बाँधती थीं। नर्तकियाँ प्रायः हार, अँगूठी, इत्र, लाल रंग और चीनी आभूषण धारण किये चित्र में दिखायी गयी हैं। चीनी विवरणों में कम्बोज देश के निवासियों के परिधान के विषय में जो लिखा गया है उसकी पुष्टि अंकोरवाट में अंकित चित्रों द्वारा भी होता है। अंकोरवाट की चित्रावलियों में पुरुषों तथा स्त्रियों के बहुत से चित्र हैं उनमें उन्हें धोती पहने हुए दिखाया गया है। दुपट्टा या उत्तरीय कन्धों पर ओढ़ा जाता था और सिर पर ऊँची तमौलि रहती थी। बयोन के मन्दिर की भित्तियों पर जो चित्र अंकित हैं उनमें कहीं दाढ़ी वाले ब्राह्मण यज्ञोपवीत पहन कर वृक्ष की छाया में बैठे हैं और कहीं राजा केवल एक धोती पहने और गले में एक हार डाले बैठा है। धोती दुपट्टा आदि के लिए सूती और रेशमी दोनों प्रकार के कपड़ों का प्रयोग होता था। पुरुष और स्त्रियाँ दोनों आभूषण पहना करते थे। राजा बड़े–बड़े मोतियों की माला और हाथ–पैर में रत्न जड़ित कटकंकण पहनता था। वह नंगे पैर चलता था और उसके हाथ–पैर महावर से रँगे होते

थे। जनसाधारण में स्त्रियाँ भी अपने हाथों और पैरों को रँगाती थीं ।

10-2-7 Hkkstu vkj i;

कम्बोज के अभिलेखों में वहाँ के लोगों के भोजन के सम्बन्ध में अनेक संकेत मिलते हैं। अभिलेखों के अनुसार तंडुल (चावल) ही कम्बोज के निवासियों का मुख्य भोजन था, जो पकाया जाता था। व्यंजन के निमित्त नमक, जीरा तथा इलायची डाली जाती थी तथा अदरक, तेल और मधु का भी प्रयोग होता था। प्रोम अभिलेख में भोज्य पदार्थों में खार्य, भात्त, मुदग्, घृत, खीर, मधु, गुड़ और तेल का उल्लेख है। मक्खन का भी एक अन्य अभिलेख में उल्लेख है। सूई वंश तथा टांग वंश के इतिहास में भी कम्बोज के भोज्य तथा पेय पदार्थों का उल्लेख है। प्रथम ग्रंथ के अनुसार कम्बोज निवासियों का मुख्य भोजन मक्खन, मलाई, शक्कर और पनीर था। प्राचीन भारतीयों की भाँति कम्बोज निवासी भी विभिन्न प्रकार के व्यंजनों का उपयोग करते थे। वे भुने हुए मांस को रोटी के साथ खाते थे। सुरा पीने का भी कहीं–कहीं उल्लेख मिलता है। सुरा ईख, मधु, तंडुल और जंगली पत्तियों से तैयार की जाती थी। नमक समुद्र के पानी से तैयार किया जाता था। भोजन में घट, कढ़ाई, कलश, शराब–तश्तरी तथा बड़े–बड़े घड़ो का उल्लेख है तथा स्वर्ण और रजत के पात्रों का भी प्रयोग किया जाता था।

10-2-8 e'rd lLdkj

अन्त्येष्टि क्रिया के सम्बन्ध में लिअंग वंश के इतिहास से यह ज्ञात होता है कि शव विसर्जन का चार प्रकारों से अन्तिम संस्कार किया जाता था–1. शव को आग द्वारा जलाकर 2. शव को नदी में फेंककर 3. शव को भूमि में गाड़कर 4. शव को निर्जन क्षेत्र में पशु–पक्षियों को खाने के लिए छोड़ देना। दाहकर्म करते समय मूँछ और बाल को कटवा लिया जाता था। सूई वंश के इतिहास में इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण वृत्तान्त उपलब्ध हैं। इस ग्रंथ के अनुसार मृतक के परिवार वाले एक सप्ताह तक न तो कुछ खाते थे और न बाल बनवाते थे। मृतक शरीर के साथ पुरोहित प्रार्थना करते थे और गाते हुए श्मशान तक जाते थे और सब प्रकार के वृक्षों की लकड़ियों पर शव को रखकर दाह–संस्कार करते थे। स्वर्ण या रजत के कलश में भस्म को डालकर वह पात्र किसी नदी में फेंक दिया जाता था। कभी–कभी शव जंगली पशुओं के लिए छोड़ दिया जाता था। निर्धन लोग इस काम के लिए मिट्टी की डिबिया प्रयुक्त करते थे जो नाना प्रकार से चित्रित एवं अलंकृत की हुई होती थी। शव के सम्बन्ध में चीनी ग्रंथों का यह विवरण महत्त्वपूर्ण है कि "वे सूतक मानते हैं, बिना भोजन किये और बिना बाल कटवाये एक सप्ताह तक स्त्री–पुरुष रोते–बिलखते रहते हैं। मृतक के साथ बौद्ध भिक्षुओं और ब्राह्मण पुरोहितों के साथ एकत्र हो, वे बाजे के साथ जुलूस निकालते हैं। सुगन्धित लकड़ी की चिता पर शव को भस्म कर दिया जाता है और चिता की राख को स्वर्ण या रजत की डिबिया में रखकर नदी में फेंक देते हैं"।

10-2-9 nkl çFkk

कम्बोज अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि देश में दास प्रथा भी प्रचलित थी। लोनवेक स्तम्भ अभिलेख में उल्लेख मिलता है कि"राजा के आदेश पर 400 दासों में से केवल 200 दासों को लाया गया जिनमें 5 नृत्य में और 5 गायन में प्रवीण थे"। चम्पा अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि बर्मा और थाई देश के दासों को चम्पा के देवालयों में अर्पित किया गया। सूर्यवर्मन द्वितीय ने अंकोरवाट निर्माण हेतु दासों को लगाया था। जब हेमशृंगगिरि और जयेन्द्रगिरि का किला बनाया गया था तब उसमें भूमि और दास दान किये गये। अनेक स्थानों पर दासों के दान का अभिलेखों में वर्णन है। खमेर के एक अभिलेख में उल्लेख मिलता है कि 40 दास तथा सम्पत्ति देव–त्रिभुवन एकनाथ को अर्पित किया गया और उपज को विभिन्न मुख्य दासों में बाँटा गया। फनोम बन्ते नन अभिलेख (जो खमेर भाषा में है)के अनुसार 902 शक में आचार्य त्रिभुवनाचार्य तथा उनके परिवार के सदस्य ने देवत्रिलोक विजयीश्वर को कुछ दास अर्पित किये। एक दूसरे खमेर अभिलेख फनोम प्राह विहार में गम्भीरेश्वर के मन्दिर को दास समर्पण करने का उल्लेख है।राजा का दासों पर पूर्ण अधिकार था और दासों के दान को राजा की अनुमति प्राप्ति के बाद वैधानिक माना जाता था। कम्बोज में तीन प्रकार के दास होते थे जो निम्न प्रकार के हैं–1. पुत्रवत् अंगीकार दास 2. पैतृक दास 3. युद्धबन्दी।इसके अतिरिक्त निम्न प्रकार के दासों का भी उल्लेख हमें मिलता 1. जन्मजात या दास पिता से जन्म लेकर 2. ऋण तथा दण्ड भुगतान नहीं करने के कारण 3. युद्ध बन्दी 4. निर्धन 5. स्वेच्छा से बने दास।

कम्बोज में दासों के निमित्त बहुत कठोर नियम थे। पुरुष और स्त्री दोनों दास होते थे तथा दोनों में विवाह हो सकता था। एक दास कन्या अनेक दास पुरुष से विवाह कर सकती थी। ईशानवर्मन के अभिलेख में

42 दासों एवं उनकी 9 पत्नियों का उल्लेख है। जयवर्मन प्रथम के अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि लिंग पर्वत के निवासी यदि कोई मृत्युदण्ड के दोषी हैं, उन्हें केवल बन्दी बनाकर, दण्ड से मुक्त कर दिया जाता था। चीनी स्रोतों के अनुसार ये मजदूर सदैव स्वामी की रक्षा के निमित्त युद्ध करने को तैयार रहते थे। मैकडोनल्ड ने ठीक ही कहा है कि सभ्य और धनी खमेर समाज मजदूरों के श्रम पर ही आधारित है। दासों की स्थिति अच्छी नहीं थी। समाज के निम्न श्रेणी में उनकी गणना थी। सामाजिक व्यवस्था में राजा सबसे ऊँचा और दास सबसे नीचे था। गृह–निर्माण एवं कीर्ति स्तम्भ समाधियों का निर्माण इन दासों के श्रम से होता था तथा राजकीय महल एवं धनी मनुष्यों के गृह के विलासी जीवन में उनकी सेवा सहायक थी। इन निर्धनों की स्थिति अनेक पीढ़ियों तक ज्यों –की –त्यों बनी रहती थी। इनकी स्थितियों में किसी प्रकार का सुधार सम्भव न था। कभी–कभी कदाचित् विद्रोह हो जाता जिसे जन–विप्लव के नाम से जाना जाता था। अन्ततोगत्वा जब शत्रु ने देश पर आक्रमण किया तो इस प्रकार की आबादी ने उनका स्वागत किया और अन्त में इनका परिणाम यह हुआ कि शासन का अन्त हो गया।

10-3 vkfFkd fLFkfr

कम्बोज की आर्थिकस्थिति को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है :–

10-3-1 Hkfe ,oa d`f"k

कम्बोज की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान थी।अतः भूमि का विशेष महत्त्व था जो उर्वर एवं अनुर्वर दो भागों में विभक्त थी।कम्बोज देश की आर्थिक व्यवस्था किस आधार पर बनी थी और भारतीय उपनिवेशकों का इसमें क्या अंशदान था इसका अंकन तो केवल अभिलेखों से उपलब्ध सामग्री तथा अन्य सूत्रों के आधार पर ही हो सकता है। इस सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं है किन्तु हमको कृषि, पशुपालन, विभिन्न व्यवसायों, मुद्राओं, बाटों, व्यापार तथा अन्य सम्बन्धित विषयों पर अभिलेखों तथा चीनी सूत्रों से जानकारी प्राप्त हो सकती है। कम्बोज देश के मन्दिर निर्माण तथा उनके लिए दिये गये दानों से राष्ट्र तथा जनसाधारण की आर्थिक प्रवृत्ति के अतिरिक्त सम्पन्नता का भी संकेत मिलता है। कम्बोज समतल देश है जहाँ मेकांग और उसकी सहायक नदियों से जलप्लावित होता रहता है। विभिन्न दिशाओं से अनेक नदियाँ आकर टोनलेसैप झील में गिरती हैं। जल स्रोतों की उपलब्धता के कारण बिना कठिन परिश्रम के ही धान की उपज पर्याप्त होती है। अपरिमित व्यय के बिना नदियाँ और झील मछलियाँ प्रदान करती है। अधिक खा।पदार्थ प्राप्त होते हुए भी मनुष्य अपनी प्रबल शक्ति कला तथा भवन निर्माण में लगाते थे। सिंचाई के लिए बड़े–बड़े तालाब एवं बाँध बनाये गये। जब सिंचाई के निमित्त पानी की आवश्यकता होती, उस समय यंत्र द्वारा तालाब आदि से पानी काम में लाया जा सकता था। अभियन्ताओं ने नहरों का जाल बिछा दिया जिससे फसल की सिंचाई का पर्याप्त लाभ हुआ और आवागमन का कार्य सालों भर चलता रहा।

फसल या खाद्य–पदार्थ की अधिक उपज ने कम्बोज जीवन की आर्थिक अवस्था को ठीक रखा, य।पि घरेलू कठिनाइयाँ, संग्राम और बाह्य आक्रमण की बराबर आशंका बनी रहती थी। राजाओं तथा जन साधारण के दान से बनाये गये मन्दिरों से यह प्रमाणित होता है कि कम्बोज की आर्थिक व्यवस्था अच्छी थी। देशवासी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त अपनी सम्पत्ति को अंगकोर वाट, बयोन और अन्य मन्दिरों में लगाते थे। कम्बोज वासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। कृषि के मुख्य उत्पादन धान, फल, प्याज, तीसी तथा अन्य तिलहन, ईख और विभिन्न प्रकार के सुरा थे। निम्नलिखित अभिलेखों से कृषि के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी उपलब्ध है–1. ईशानवर्मन के वाट सबब अभिलेख।13 2. फनोम बन्ते अभिलेख। 14 3. बन्ते टेम्पुल अभिलेख। 15 हम यह जानते हैं कि कम्बोज कृषिप्रधान देश था। मुख्यतः कृषि घरेलू जानवरों पर निर्भर था। खेत जोतने , हेंगा देने और सामान ढोने के काम में जानवर प्रयुक्त होते थे यंत्रों द्वारा कृषि कार्य सम्पन्न नहीं होता था। देश में धान की उपज का मुख्य कारण, उर्वरा भूमि तथा अनुकूल जलवायु था। वहाँ के निवासियों का मुख्य भोजन तंडुल ही था। लेखों में मुद्‌ग एवं तिल का भी उल्लेख है। 18 देशवासी कई प्रकार के पशु पालते थे। इनमें गाय का सबसे अधिक महत्त्व था क्योंकि यह सभी पशुओं से अधिक उपयोगी होती थी। कृषि कार्य के लिए लोग बैल भी पालते थे। कम्बोज निवासी कृषि के अतिरिक्त पशु– पालन भी करते थे जिनमें गाय, बैल, हस्ती, भेड़, अश्व, बकरी, मुर्गी और सूकर मुख्य थे। भैंसा भी खेत जोतने के काम में लगाया जाता था। अभिलेखों से यह प्रतीत होता है कि कृषि के लिए देश में पर्याप्त पानी तथा श्रमिक आसानी से उपलब्ध था। प्रायः कृषि कार्य में खरीदे हुए दास लगाये जाते थे जिन्हें ' कृषिबल ' कहा जाता था। पर दासों के दैनिक पारिश्रमिक का कहीं

उल्लेख नहीं मिलता है। एक अभिलेख में इन दासों द्वारा पैदा की हुई उपज के विभाजन का उल्लेख है। चीनी सूत्रों के अनुसार कम्बोज देश के लोग एक बार अन्न बोते थे तथा उसे तीन बार काटते थे। खेतों की सीमा के झगड़े का निर्णय सरकार द्वारा किया जाता था जिसकी जानकारी राजा को भी रहती थी। सरकार का निर्णय पत्थर या धातु पर अंकित किया जाता था। सरकार भूमि का दान भी पत्थर या धातु पर अंकित किया जाता था। बी.एन. पुरी के मतानुसार , एक अन्य अभिलेख में राजकीय प्रशस्ति द्वारा भूमि के विनिमय का उल्लेख है और इस कार्य में निम्नलिखित व्यक्ति सीमा निर्धारण में सहायता करते थे–1. स्थानीय ग्रामों से प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा मुखिया 2. दशक ग्राम 3. ग्रामवृद्ध 4. दस ग्राम के एक तृतीय प्रधान 5. अनेक साक्षी पुरुष राजा जयवीरवर्मन के प्रसत त्रपन अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि कवीन्द्र पण्डित को दान में दिये गये एक ऐसे भूखण्ड का उल्लेख है जिसका उपभोग वह भगवान् नारायण के निमित्त करना चाहता था। राजा ने स्थानीय कर्मचारियों की सहायता से इस भूखण्ड की सीमाओं को निर्धारित कराया और पुनः श्री कवीन्द्र पण्डित को प्रदान कर दिया ।

10-3-2 m|kx vkj 0;olk;

कम्बोज देश के अनेक अभिलेखों में व्यवसायों तथा श्रेणियों के संगठन का उल्लेख है। श्रेणी का निर्माण अति प्राचीन है और इसका उद्देश्य उक्त श्रेणी को व्यवसाय के निमित्त सुरक्षा प्रदान करना था। श्रेणी तथा उनके संगठन और कर्तव्य पर प्राचीन भारतीय साहित्य तथा अभिलेखों में उल्लेख मिलता है। चर्मकार , सुवर्णकार अथवा हिरण्यकार का पर्यायवाची शब्द है जिसका उल्लेख साहित्य तथा लेखों में मिलता है। एक अभिलेख में सुवर्णकार संघ का उल्लेख है। जयवर्मन सप्तम के प्रह–को अभिलेख में, इनके संघ के प्रमुख का उल्लेख तथा एक अन्य अभिलेख में श्रेष्ठपुर विषय के कर्मचारी संघ का विवरण है किन्तु इन संघों या श्रेणियों के अधिकार और कर्तव्यों का विवेचन किसी भी अभिलेख में नहीं किया गया है। किन्तु भारतीय स्रोतों के अनुसार उनका कार्य अपने व्यवसायों के अधिकारों और उनकी उपज की खपत का प्रबन्ध, उनके पारस्परिक झगड़ों का निपटारा तथा ब्याज देकर धन जमा करना था। कम्बोज के अनेक अभिलेखों में शिल्पी का भी उल्लेख है। यह स्थापत्याचार्य से भिन्न था। वह केवल गृह निर्माण से ही सम्बन्धित था। शिल्पियों का अन्य व्यवसायों से भी सम्पर्क था और इनकी समानता कर्मार से की जा सकती है। सुवर्णकार को वहाँ चामोकार कहा जाता था और उनका व्यवसाय सर्वश्रेष्ठ था। उनके निर्मित आभूषण की कम्बोज में बहुत माँग थी। कम्बोज के अनेक अभिलेखों में आभूषणों का वर्णन है, जो कई प्रकार के बनाये जाते थे। अनेक आभूषणों में फूलों की नक्काशी की जाती थी। एक चीनी स्रोत के अनुसार कम्बोज निवासी आभूषणों में नक्काशी भी करवाते थे। इससे यह प्रतीत होता है कि कम्बोज निवासी कलाकार भी थे। देश में कपड़ा बुनने तथा बर्तन बनाने का कार्य किया जाता था किन्तु यह व्यवसाय उन्नत अवस्था में नहीं था। इसके अतिरिक्त कम्बोज में कर्मार (धातु के काम करने वाले),वाय (जुलाहा), भिषक (वैद्य) और उपल दक्षिणी (पत्थर काटने वाले) तथा काष्ठ कला के भी उपयोगी व्यवसाय प्रचलित थे। देवालय और मठों के देव पूजा में बर्तन का व्यवहार किया जाता था। धातु के काम करने वाले का उद्योग अत्यन्त विकसित अवस्था में था। मछुआ धीवर कर्म द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते थे। शिकारी धनुष और बाण से शिकार कर अपना जीवन निर्वाह करते थे। व्यवसाय तथा उद्योगों में जाति का प्रतिबन्ध नहीं था। एक लेख के अनुसार ब्राह्मण कुल के लोग हाथी हाँकने वाले शिल्पी और राजकीय पुरोहित का काम करते थे। अधिकांश लोग हीरा या ज्योतिषी, अध्यापक, नाई , जुलाहे, हाथी हाँकने वाले तथा गांबिक का भी काम करते थे। एक अन्य अभिलेख में मध्य पेशा मालिनी का उल्लेख है जो देव मन्दिर में पुष्प अर्पित करने जाती थी। पान बेचने वाले ताम्बूलिक कहलाते थे। पहाड़ी जातियाँ तथा जंगली निवासी, बाँस, बेर, जंगली फल, चिड़ियाँ, मधु, गैंडा के सींग, हाथी–दाँत और गोंद आदि इकट्ठा करते थे। आज भी बर्मा, बोर्नियो तथा भारत की प्राचीन असभ्य जातियाँ इन वस्तुओं को इकट्ठा करती हैं।

10-3-3 eki vkj rky

कम्बोज अभिलेखों में माप और तौल सम्बन्धी विशेष सामग्री उपलब्ध है। कम्बोज देश में भारतीय तौल के मापदण्डों का प्रचलन था। 13 वीं शताब्दी में कम्बोज की मण्डियों में चीनी माप–तौल का भी प्रायः व्यवहार होता था।'' विभिन्न प्रकार के माप और तौल से यह ज्ञात होता है कि कम्बोज का आर्थिक जीवन अत्यन्त विकसित था। निम्न प्रकार के माप–तौल प्रायः सर्वत्र व्यवहार होता था जो इस प्रकार है–माप आढक– प्राचीन बटखरों में आढक था पर इसका उल्लेख किसी अभिलेख में नहीं है। यह चार सेर का बाट था। खारिक–प्राचीन

समय में खारिक सबसे बड़ा बाट था जो 256 सेर का होता था। एक अभिलेख में डेढ़ खारिक तंडुल का उल्लेख है। द्रोण–16 सेर के बाट को द्रोण कहा जाता था। 17 वीं शताब्दी में अन्न तौलने के काम में द्रोण का व्यवहार होता था। अर्थशास्त्र के अनुसार द्रोण 5 किलोग्राम 300 ग्राम के बराबर था किन्तु कौटिल्य के मतानुसार द्रोण चार प्रकार के थे। प्रस्थ–प्रस्थ लगभग एक सेर के बराबर था। कुडव–यह सबसे छोटा बाट था जो लगभग एक पाव के बराबर था। तुला–7 वीं शताब्दी में कम्बोज अभिलेख में तुला बाट का उल्लेख है जो 100 पल के बराबर था। इस बाट का प्रयोग धान तौलने में होता था। जी– तुला से छोटा बाट जी था शक अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि तिल , जौ और धान का तौल इस बाट से किया जाता था। लिह जी से छोटा बाट लिह था। यह अन्न तौलने की छोटी इकाई थी। कंसी एक प्रकार का धान तौलने का बाट था। कनान नमक तौलने के काम में लाया जाता था।तमलिन– अंगकोर शासन काल में रजत तौलने का यह मुख्य बाट था। फि–प्राचीन ख्मेर काल में फि का अर्थ टोकरी था। अन्न तौलने में इसका प्रयोग होता था। पाद लगभग 150 ग्रेन का होता था। पाद द्वारा मक्खन, दधि–तथा मधु की तौल होती थी। घटी या कुम्हार की हॉडी का प्रयोग घी तौलने या नापने के लिए होता था। घृतवटी से इसके विशेष मान का संकेत होता है।पण से मुद्रा और तौल दोनों का ही संकेत हो सकता है। यह 20 माशे तथा 4 काकणी का होता था। सीसा का प्रयोग अधिकांश तन्तुवाय करते थे।तुला 100 पल के बराबर था। पद सीनिरे और सीरे ये धान के क्षेत्र नापने की इकाई थी। 665 ई. के मूल ग्रंथ में उल्लेख है कि धान के एक क्षेत्र का नाप सीनिरे और दूसरे क्षेत्र का नाप पद से नापा गया और अंगकोर शासन काल में यह उल्लेख है कि धान का क्षेत्र पद और सीरे में नापा गया था। इससे स्पष्ट हो जाता हैं कि पद सीनिरे और सीरे भिन्न–भिन्न मापने की इकाई थी। वहाँ के शिलालेखों से ऐसा ज्ञात होता है कि सीरे से पद नापने की उच्च इकाई थी। मास–मास का सही अर्थ अज्ञात था किन्तु सम्भव है कि यह संस्कृत के माशा के समान था जो भूमि नापने की इकाई थी ईशानवर्मन के शासन काल में अनेक भूमि की नाप मास इकाई से नापा जाता था। 651 ई . के एक अभिलेख में उल्लेख है कि एक धान के क्षेत्र को पद और दूसरे क्षेत्र को मास से नापा गया था। यह सम्भव है कि एक पद में चार मास होते थे। अंतोन इकाई से तेल तथा अन्य तरल पदार्थ नापा जाता था। इसके अतिरिक्त भी नाप और तौल की अन्य इकाई थी। इनसे यह ज्ञात होता है कि कम्बोज देश का आर्थिक जीवन पूर्णतया परिपक्व था।

10-3-4 okf.kT;] 0;kikj rFkk ;krk;kr

यापार करना वाणिज्य है। वाणिज्य का आर्थिक विकास की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है। जहाँ कृषि, पशुपालन और वाणिज्य व्यवसायों की उन्नति न हो वहाँ देश की आर्थिक उन्नति कभी नहीं हो सकती। व्यापार के लिए विदेश भी जाया जाता था। व्यापार स्थल तथा जल मार्ग दोनों से होता था। कम्बोज अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि वहाँ का व्यापारिक जीवन भी विकसित था। भूमि बिक्री के निमित्त शासन की ओर से पदाधिकारी नियुक्त होते थे। भूमि बिक्री तथा सीमा निर्धारित करने के (अतिरिक्त) निमित्त ग्रामवृद्ध तथा अन्य पदाधिकारी सहायता देते थे। इनके द्वारा व्यापारिक समस्याएँ शीघ्र ही हल हो जाती थीं। व्यापार के मार्ग, व्यापारी, विनिमय, मोल भाव, सिक्के (मुद्रा) आदि की चर्चा अभिलेखों में है। क्रय–विक्रय कर का कहीं उल्लेख नहीं है किन्तु चीनी सूत्रों के अनुसार शासक को व्यापारिक कर स्वर्ण, रजत, मुक्ता तथा गन्ध वस्तु के रूप में दिया जाता था। देश के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी पूर्ण विस्तृत था। देश के अन्तर्गत स्वर्ण, रजत, ताँबा, टीन, हाथी–दाँत, मोर, मत्स्य और सुग्गा का क्रय–विक्रय होता था। नगर मण्डी देहाती बाजार के सादृश्य था। स्थानीय वाणिज्य और व्यापार प्रायः स्त्रियाँ भी करती थीं। यहाँ स्थायी दुकानें नहीं थीं। व्यापारी स्त्रियाँ राजकीय मार्गों के बगल में चटाई पर बिक्री की वस्तुओं को सजाये और फैलाये रहती थीं। दुकानदार सुपारी चबाते रहते और ग्राहक आते–जाते रहते थे। छोटी वस्तुओं का विनिमय चावल, अन्न तथा अन्य समान वस्तुओं से होता था पर बड़ा विनिमय स्वर्ण तथा रजत से होता था। इस प्रकार की दुकानें आज भी असम, मणिपुर, त्रिपुरा, नागालैण्ड, अरुणाचल प्रदेश एवं शिलांग में हैं जहाँ स्त्रियाँ सब्जी, फल और मछली का क्रय–विक्रय करती हैं। लिअंग वंश के इतिहास के अनुसार भारत और पार्थिया से व्यापार के लिए बहुत से व्यापारी फूनान आते थे और प्रायः हरेक वस्तु यहाँ बिकती थी। अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि कम्बोज का व्यापार उत्तर में टोकिन और पश्चिम में भारत के साथ होता था और वहाँ पर हीरा, चन्दन तथा अन्य पदार्थ मिलते थे। यहाँ एक प्रकार का कीमती हीरा भी मिलता था। चीनी स्रोत के अनुसार पश्चिम भारत से एक बड़ा जहाज फूनान आया था जिसमें बिक्री के लिए एक बड़ा शीशा था जो स्फटिक का था। दक्षिण सी वंश के इतिहास में कम्बोज देश के व्यापारिक सामानों में स्वर्ण, रजत और रेशम का मुख्य रूप से उल्लेख है। अधिकांश व्यापार समुद्री मार्ग से

होता था पर स्थल मार्ग का भी प्रयोग होता था। देश की मुख्य उपज चावल, कपास, मधु, तिल, अदरक, मसाले और इलायची थी। यातायात के साधनों में नावों तथा जलयानों का प्रयोग होता था और देश के आन्तरिक भाग में व्यापार के निमित्त स्थल मार्ग में हाथी काम में लाये जाते थे। यातायात के अन्य साधनों में बैलगाड़ी भी थी जो बैल या भैंसा द्वारा खींची जाती थी। धनी व्यक्तियों तथा उच्च पदाधिकारियों के निमित्त शिविका (पालकी) का प्रयोग होता था। सैनिक घुड़सवार का प्रचलन था। सैन्य दल के अतिरिक्त व्यापारी, आखेटक, संवाद भेजने के निमित्त अश्व का प्रयोग होता था। कृषक, सब्जी विक्रेता छोटे व्यापारी अपने सामानों को बहँगी द्वारा ढोते थे। यह प्रणाली आज भी दक्षिण पूर्वी एशिया, पूर्व भारत और बांग्लादेश में प्रचलित है। देश की उपज अधिक थी और राष्ट्रीय सम्पत्ति भी बढ़ती जा रही थी। समृद्धिशाली होने के कारण गृह तथा अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों के होते हुए भी देश अपने स्वतंत्र अस्तित्व को कायम रख सका। कम्बोज शासकों ने राजकीय कोष से सार्वजनिक कार्यों पर अतुल धन व्यय किये। कम्बोज के साधारण लोगों ने भी धार्मिक संस्था में अधिक दान प्रदान किया। जयवर्मन सप्तम ने अनेक राजकीय औषधालय बनवाये थे पर कम्बोज अभिलेख में उक्त देश के व्यवसायों का पूर्ण रूप से उल्लेख नहीं है और न कोई वहाँ की मुद्रा ही उपलब्ध है। पर यह सम्भव है कि आर्थिक जीवन में तौल तथा माप और मुद्राओं का प्रयोग होता था।

10-4 /kkfe'd fLFkfr

चेन–ला वंश की स्थापना के पश्चात् कम्बोज का वैभवशाली काल प्रारम्भ होता है। इस काल में कम्बोज का राजकीय धर्म शैव था, किन्तु वैष्णव और महायान बौद्ध धर्म को भी काफी सम्मान प्राप्त था। ये दोनों धर्म भी कम्बोज के महत्त्वपूर्ण धर्म थे। नीलकण्ठ शास्त्री का मत है कि चित्रसेन ने अपने सफल अभियानों के पश्चात् जिस शिवलिंग की स्थापना की, उसका समय 616 ई० से थोड़ा पूर्व रहा होगा। सुई वंश का इतिहास इस घटना को 589 ई० से 618 ई० के मध्य रखता है। इसकी पुष्टि चित्रसेन के अभिलेखों से भी होती है।

10-4-1 'k/ke

यह भली–भाँति ज्ञात है कि चित्रसेन ने राज्याभिषेक के समय महेन्द्रबर्मा नाम धारण किया था। दक्षिण भारत के पल्लव वंश के एक शासक का नाम भी महेन्द्रबर्मा था। यह संयोग की बात है कि पल्लव महेन्द्रबर्मा ने भी लगभग इसी समय तिरुचिरापल्ली नामक पहाड़ी पर एक शिवलिंग की स्थापना की। दोनों महेन्द्रबर्मा के अभिलेखों में बड़ी समानता है और वे एक ही प्रकार की संस्कृति को चित्रित करते हैं। दक्षिण भारत का कम्बोज पर यह काफी महत्त्वपूर्ण प्रभाव है। ईशानबर्मा के राज्यकाल के अनेक अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनकी लिपि दक्षिण भारतीय प्रकार की है। कुछ अभिलेखों पर तिथि नहीं है किन्तु वे राजा का नाम बताते हैं। इनमें आश्रमों की स्थापना तथा हरिहर की मूर्ति की स्थापना का उल्लेख मिलता है। ईशानबर्मा के दो अभिलेखों पर क्रमशः शक सं० 548 और 549 मिलती है। प्रथम अभिलेख जो बा–फोनाम प्रान्त से मिला है, राजा के यश और पराक्रम की प्रशंसा करता है। इसमें एक अधीन सामन्त का भी उल्लेख है जिसने अपने महाराजा की अनुमति से एक हरिहर मूर्ति की स्थापना की थी। दूसरा अभिलेख सम्बोर से प्राप्त हुआ है अन्य बातों के अतिरिक्त इसमें प्रमुख रूप से ईशानबर्मा का ही यशोगान है। इसमें एक आचार्य का भी उल्लेख मिलता है जो वैशेषिक न्याय, सांख्य, व्याकरण, तथा बौद्ध धर्म का प्रकाण्ड पण्डित था। राजा ईशानबर्मा ने इसे आध्यात्मिक विषयों का मंत्री नियुक्त किया था। इस अभिलेख में एक शिवलिंग स्थापित करने का उल्लेख प्राप्त होता है। उपर्युक्त अभिलेखों से ईशानबर्मा की शक्ति और उसके राज्य की समृद्धि का तो बोध होता ही है किन्तु पूर्ण रूप से फूनान विजय की पुष्टि नहीं होती है।

629 ई० का अंग चुमनिक का अभिलेख एक शिवलिंग और एक मन्दिर में रुद्राश्रम की स्थापना का उल्लेख करता है। इसमें किसी राजा का नाम तो वहाँ मिलता है किन्तु बाथे का मत है कि यह सब राजा ईशानबर्मा के शासन काल में हुआ। बेयांग मन्दिर का अभिलेख 604 ई० में एक मन्दिर निर्माण का उल्लेख करता है जिसमें शिव के चरणों की पूजा की जाती थी। यह अभिलेख अनेक दृष्टियों से बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। इस पर दक्षिण भारत का प्रभाव बहुत ही स्पष्ट है। अभिलेख की अत्यन्त ही शुद्ध संस्कृत भाषा मन को उत्प्रेरित करती है। कोई भी अभिलेखवेत्ता सातवीं शती के पल्लव अभिलेखों और बेयोंग अभिलेख में आसानी से अन्तर स्थापित नहीं कर सकता है। भारत में पाशुपत सम्प्रदाय का जो दर्शन है उसकी बहुत सुन्दर झाँकी बयोंग अभिलेख में अंकित है। योग का उल्लेख भी अत्यन्त ही रोचक है। इन तथ्यों से कम्बोज तथा फुनान में पाशुपत सम्प्रदाय के प्रबल प्रभाव का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। कम्बोज के अभिलेखों में शिवोपासना के अनेकानेक

उदाहरणों से यह तो स्पष्ट ही हैं कि कम्बोज का राज दरबार और दरबारी कवि सभी शिवमय हो गये थे। जयबर्मा पंचम के 968 ई० के अभिलेख से कम्बोज के शैव धर्म पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है। यह अभिलेख निम्नलिखित हैं–

nf{k.kkir fou;LFk ljlflf) çnkJh uke A

;ä e ;k ;fäfui.k;'k Jh io:r brhfjr% AA

इस अभिलेख में जयबर्मा पंचम की तुलना श्री पर्वत से की गयी है यह अभिलेख दसवीं शती तक दक्षिण भारत के प्रभाव की निरन्तरता को सिद्ध करता है। इस समय दक्षिण भारत शैव धर्म के एक शक्तिशाली केन्द्र के रूप में विख्यात हो चुका था और उसका सांस्कृतिक प्रवाह कम्बोज की ओर बना हुआ था।

जयबर्मा की प्रशस्ति में काँची के पल्लव शासकों तथा जगद्गुरु शंकराचार्य का उल्लेख प्राप्त होता है। इन्द्रबर्मा की नवीं शती के इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि राजगुरु शिवसोम ने भगवान् शंकर से शास्त्रों का ज्ञान अर्जित किया था। इससे यह स्पष्ट होता है कि हिन्दू धर्म प्रचारकों ने पूर्व की ओर जो सांस्कृतिक धारा प्रवाहित की, वह निरन्तर गतिमान थी। हिन्दुओं के कुछ रीति–रिवाज आज भी कम्बोज में जीवित हैं। कम्बोज के राज परिवार में चूड़ा कर्म संस्कार उन विशिष्ट ब्राह्मणों द्वारा कराया जाता था जिन्हें वे अपनी भाषा में बाकू कहते हैं। वर्तमान समय में इस संस्कार में बौद्ध विधि का काफी सम्मिश्रण हो गया है किन्तुख्मेर लोग अब भी कहते हैं कि इस संस्कार का शुभारम्भ कम्बोज में भगवान् शिव ने किया था।

जब कम्बोज में बौद्ध धर्म प्रबल हुआ तो अनेक हिन्दू देवी–देवताओं को उसने अपने में आत्मसात् कर लिया। किन्तु हिन्दू धर्म के प्रभाव का अन्त नहीं किया जा सकता। बाकू नाम से जाने जाने वाले ब्राह्मण नौम–पेन्ह में आज भी अस्तित्व बना हुआ है। राजमहल के पवित्र संस्कारों का आयोजन ये ही लोग करते हैं। अमोनियर ने बाकू ब्राह्मणों के कार्यों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। सोदेस ने लिखा है कि ये ब्राह्मण आज भी शपथ समारोह में वहाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करते हैं। कालान्तर में कम्बोज के ब्राह्मण भी वहाँ के अन्य निवासियों की भाँति बौद्ध मतावलम्बी हो गये थे राजमहल में जो छोटा–सा मन्दिर है वहाँ रखी हुई पवित्र तलवार की रक्षा ये ब्राह्मण लोग ही करते हैं। इस मन्दिर में ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित मूर्तियाँ, बौद्ध मूर्तियाँ तथा एक भव्य लोकेश्वर की मूर्ति भी स्थापित की गयी है। कम्बोज के राजप्रासाद में धार्मिक एवं लौकिक आदर्शों का एक स्वस्थ समन्वित स्वरूप दृष्टिगोचर होता है जो स्वयं में काफी महत्त्वपूर्ण है। राजा अपने जीवन में धार्मिक आचार्य से शिक्षा ग्रहण करते थे। 713 ई0 के एक अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि जयबर्मा प्रथम की पुत्री का विवाह एक शैव मतावलम्बी ब्राह्मण से हुआ था जिसका नाम शकस्वामिन था जो का भारत में उत्पन्न हुआ था। राजेन्द्रबर्मा की पुत्री राजलक्ष्मी का विवाह एक ब्राह्मण दिवाकर भट्ट से हुआ था जो कालिन्दी नदी के तट पर उत्पन्न हुआ था। कालिन्दी नदी कृष्ण के बाल्यकाल से सम्बद्ध होने के कारण एक पवित्र नदी मानी जाती है। दो अन्य ब्राह्मणों के विदेश से आने का उल्लेख है ये जयबर्मा, पंचम के काल में कम्बोज आये थे। इन्होंने कम्बोज में जमीन लेकर शिव मन्दिर की स्थापना की थी।

कम्बोज में सर्वाधिक रूप से ध्यान आकृष्ट करने वाला तथ्य यह है कि इस देश में भारतीय संस्कृति एवं धर्म का बाह्य रूप प्रभावहीन नहीं था इस देश को भारतीय धर्म की उस आत्मिक भावना ने प्रभावित किया था जो भारतीय संस्कृति की मूल थी। हिन्दू धर्म कम्बोज में केवल सम्राटों तक प्रचलित नहीं था अपितु राज्य के अन्य लोग भी इस धर्म के प्रति विशेष निष्ठा रखते थे। हमें सौभाग्यवश अनेक राजाओं के ऐसे दो नाम मिले हैं जिनमें एक उनका वास्तविक नाम है तथा दूसरा उनके इष्ट के नाम पर आधारित है। इन नामों में अधिकांश नाम शिव से सम्बन्धित हैं। कम्बोज में भारत की भाँति हरिहर की मूर्ति जो शम्भु और विष्णु का मिला–जुला रूप है, मिलती है। गया के विष्णु पद और लंका के बौद्ध पद की भाँति शिव–पद कम्बोज के अतिरिक्त अन्य कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। कम्बोज में हिन्दू साधु –संन्यासियों के निवास के लिए आश्रम बनाने की प्रथा का विकास हो चुका था। प्रजा की भलाई के लिए पवित्र पुस्तकों के पठन– पाठन की संस्था भी यहाँ विकसित हो चुकीथी।महामुनि, ईश्वरदत्त, मुनीश्वर, सोमदेव पण्डित, दिवाकर महामुनि, शिवाचार्य, योगेश्वर पण्डित, तपस्वी मनारशिव शिवबिन्दु, शंकर पण्डित तथा अन्य विद्वान् ऋषियों के रूप में कम्बोज में प्रतिष्ठित एवं सम्मानित थे। इनमें से कुछ ऋषि राजगुरु थे। कुछ सम्राटों ने अपने माता–पिता की स्मृति में शिवलिंगों की स्थापना मन्दिर बनवाकर की थी। एक अभिलेख में अगस्त्य नामक ब्राह्मण के परिवार का इतिहास उत्कीर्ण है जो वेदों एवं

वेदांगों का ज्ञाता था। लंका के हिन्दू काल वर्णिका में यह कहा गया है कि अगस्त्य मुनि इस प्रायद्वीप में आये और उन्होंने एक पवित्र स्थल पर तपस्या की। कम्बोज में हिन्दू धर्म का स्वरूप विकसित हुआ और शैव धर्म को कम्बोज में सर्वाधिक सम्माननीय स्थान प्राप्त था। एक लेख में पत्थर के बने शिव मन्दिर का उल्लेख है और उसके साथ में एक भक्तशाला का भी निर्माण हुआ। एक शिवलिंग 81 फीट की ऊँचाई पर स्थापित किया गया। लिंग के साथ अन्य मूर्तियों को भी स्थापित किया गया है। एक लेख में पार्वती की दो मूर्तियों की स्थापना का विवरण है। लेखों से प्रतीत होता है कि शिव की संहरण शक्ति की अपेक्षा पशुपति, नागपति तथा परमब्रह्म रूप में उपासना की जाती थी। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि कम्बोज में शिव की उपासना को सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। उन्हें एक प्रतीक के रूप में राजचिह्न के रूप में भी अपनाया गया था।

10-4-2 o".ko /ke

भारतीय धर्म परंपरा में शिव के बाद दूसरा स्थान विष्णु को दिया गया। वहाँ शैव धर्म के साथ– साथ वैष्णव धर्म का भी प्रचार था, पर अपेक्षाकृत वैष्णव सम्प्रदायों की संख्या कम थी। विष्णु की पूजा हरि, चतुर्भुज, नारायण, अच्युत, उपेन्द्र, केशव, मुरारि, कृष्ण, पद्मनाभ, त्रिविक्रम आदि नामों से की जाती थी। एक प्राचीन लेख में गुणबर्मा द्वारा विष्णु देवता की मूर्ति के प्रति दिये हुए दान का उल्लेख है और उन्हें स्वामिन कहा गया। एक प्राचीन लेख में विष्णु का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है–

uek ejkj ;T ;ki% Looh;n'k;fUuoA

Look flofj.kk nR;ku L=h:i.k o/kku ;% AA

कम्बोज में विष्णु की अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध हैं विष्णु गरुड़ पर बैठे हुए हैं। इनके सिर पर मुकुट है और हाथ में कमल का फूल धारण किये हुए हैं। विष्णु की मूर्ति में चार हाथ एवं एक सिर दर्शाया गया है। ब्रह्मा की पूजा जैसे भारत में प्रचलित तो है, पर अपेक्षाकृत मन्दिर कम हैं, कुछ ऐसी ही स्थिति कम्बोज में भी थी। वहाँ के निवासी ब्रह्मा को धाता, प्रजापति, चतुर्मुख और ब्रह्मा– इन चार नामों से स्मरण करते थे। ब्रह्मा को सृष्टि का रचयिता मानते थे। प्रजापति के रूप में वे संसार की रक्षा करते थे। कम्बोज में ब्रह्मा की जो मूर्तियाँ मिली हैं, उनमें विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल पर बैठे दर्शाये गये हैं। कम्बोज में बौद्ध धर्मावलम्बी भी इनकी बोधिसत्व के रूप में पूजा करते थे। बैंगकाक संग्रहालय में महात्मा बुद्ध के जन्म के समय की मूर्तियों में ब्रह्मा जी भी दिखाये गये हैं। क्षीर सागर में शयन करने वाले एवं भुजंग के फन को पलंग के रूप में प्रयुक्त करने वाले विष्णु भगवान् की स्तुति निम्न अभिलेख में की गयी है–

;tu ;kxer fdr?kefi ;% {kh jkn'k; ;k xgA

'kr 'k"k Hk txHkkx jpuki ;di"BkfJr AA

df{kçkUr lekfJr f=Hkouk ukE; fRFkr ek#gkA

¼jkKh½ Jh t ;oe.kkxefg"kh l Lokfeuh j{kr AA

फूनान के राजा जयबर्मा की प्रधान रानी कुलप्रभावती थी जिसने विष्णु की एक मूर्ति प्रतिष्ठापित करायी थी। उसने एक तालाब तथा एक आरामगृह का भी निर्माण कराया था। जयबर्मा एवं कुलप्रभावती के पुत्र गुणबर्मा के एक अभिलेख में चक्रतीर्थ स्वामी विष्णु के वैष्णव पद को प्रतिष्ठापित करने का उल्लेख है। विष्णु पद की पूजा पाँचवीं–छठीं शती में प्रारम्भ हो गयी थी। नवीं शती के प्रसात–कोक अभिलेख में सर्वप्रथम चक्री, चक्रपाणी, पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णु की स्तुति की गयी है। श्रीनिवास कवि द्वारा विष्णु की मूर्ति प्रतिष्ठापित करने का उल्लेख है। इस श्रीनिवास कवि की भांजी की पुत्री का विवाह जयेन्द्रबर्मा के साथ हुआ था जिसके पुत्र का नाम अमृतगर्भ था। इसने भी ईंटों के एक मन्दिर का निर्माण कराया था जिसमें हरि की मूर्ति प्रतिष्ठापित की गयी।

अंगकोरथाम के मन्दिर के एक अभिलेख के अनुसार यशोबर्मा के मामा विक्रान्त द्वारा प्रभु विष्णु की एक ही प्रतिमा प्रतिष्ठापित करने का वर्णन मिलता है। राजा जयबर्मा पंचम के गुरु यज्ञवराह के सम्बन्धी प्रवीण पण्डित ने पृथ्वी चन्द्र की पदवी धारण की थी उसने प्रभु विष्णु की एक मूर्ति वन्ते–थाई में प्रतिष्ठापित करायी

थी। ऐसा प्रतीत होता है कि शिव और विष्णु में अभेद मानकर उनकी संयुक्त मूर्तियों के निर्माण तथा पूजा की प्रथा कम्बोज देश से प्रारम्भ हो गयी थी। राजा ईशानबर्मा के अंग–पू अभिलेख में इस राजा द्वारा शंकर और अच्युत (शिव और विष्णु) की अर्द्ध–शरीर प्रतिमा के बनाये जाने का वर्णन है। (शंकराच्युत यौरर्द्ध शरीर प्रतिमाम्माम्) इन देवों की पूजा एक साथ होती थी। ईशानबर्मा के अन्य लेख में हरि एवं शंकर की संयुक्त मूर्ति का वर्णन है जिसे ताम्रपुर के शासक ने प्रतिष्ठापित किया था। इन दोनों लेखों का काल 7 वीं शती माना गया है।

कम्बोज के लेखों में कृष्ण और उनकी लीलाओं का भी उल्लेख मिलता है। सूर्यबर्मा के समय के शक सं० 963 के लेख में गरुड़ पर बैठे कृष्ण की मूर्ति का उल्लेख है। इसके पहले शक संवत् 850 का एक लेख प्रसत–निएग खमो के मन्दिर में मिला जिसमें विष्णु की आराधना का वर्णन मिलता है। उसके निकट ही कृष्ण को गोवर्द्धन पर्वत सबसे छोटी उंगली पर उठाये दिखाया गया है तथा विष्णु भगवान् वामन के रूप में तीन पगों में पृथ्वी, आकाशतथा ब्रह्माण्ड मण्डल को नापते हुए चित्रित किये गये है।

कम्बोज में अन्य देवी–देवताओं का भी वर्णन मिलता है जैसे गणेश, आदित्य तथा स्वयंभू ब्रह्मा का भी अनेक अभिलेखों में वर्णन मिलता है। एक लेख में शालिग्राम और सूर्य की प्रतिमाएँ फलक पर अंकित हैं। देवियों में मुख्यतः दुर्गा,गंगा, इन्द्राणी, वागीश्वरी, चतुर्भुजा, गौरी, सरस्वती का उल्लेख मिलता है। देवताओं में हनुमान, सूर्य, गणेश, कार्तिकेय, गणपति, यम आदि की भी पूजा होती है। इस प्रकार से भारतीय आराधकों की आराधना कम्बोज में खूब प्रचलित हो चुकी थी।

10-4-3 cks) /ke

यद्यपि पौराणिक हिन्दू धर्म का कम्बोज देश में प्राधान्य था तथापि बौद्ध धर्म का भी वहाँ प्रवेश हुआ। छठीं शती के अन्त एवं सातवीं शती के प्रारम्भ के एक लेख में प्रज्ञा–चन्द्र नामक व्यक्ति द्वारा बोधिसत्व शास्ता,मैत्रेय तथा अवलोकितेश्वर के प्रति दास एवं दासियों को अर्पित करने का उल्लेख है। कम्बोज में जो बौद्ध धर्म की लहर आयी,वह हीनयान शाखा की थी। 665 ई० के एक अन्य बौद्ध लेख से यह विदित होता है कि जयबर्मा प्रथम के राज्य में रत्नभानु और रत्नसिंह नामक दो बौद्ध भिक्षु निवास करते थे कम्बोज जाने वाले भिक्षुओं में ये प्रथम थे। दसवीं से तेरहवीं शती तक बौद्ध धर्म ने देश में खूब उन्नति की। इस समय राजाओं के अतिरिक्त मंत्रियों ने भी बौद्ध धर्म अंगीकार किया। मंत्रियों में सत्यबर्मा, कवीन्द्रारिमथन तथा कीर्ति पण्डित प्रमुख थे। इन मंत्रियों ने बौद्ध धर्म को प्रोत्साहन दिया। सत्यबर्मा का अंगकोर के फिमेनाक के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान था। कवीन्द्रारिमथन, राजेन्द्रबर्मा द्वितीय तथा जयबर्मा पंचम का मंत्री था। इसने अनेक बौद्ध मूर्तियों को स्थापित करवाया था। इसी प्रकार से कीर्ति पण्डित को सूर्य की भाँति बौद्ध धर्म फैलाने का श्रेय जाता है। इसी मंत्री ने महाविभाग तथा तत्त्व संग्रह की टीकाएँ बाहर से मँगायी थी तारानाथ के अनुसार वसुबन्धु के एक शिष्य ने कम्बोज में बौद्ध मत फैलाया।

कम्बोज के कुछ ऐसे राजा भी हुए जो हिन्दू तथा बौद्ध धर्म दोनों में आस्था और समन्वय रखते थे। उन्होंने दोनों धर्मों को राजाश्रय दिया। राजा यशोबर्मा ने ब्राह्मणाश्रम की भाँति सौगताश्रम का निर्माण कराया था। 1185 ई० में जयबर्मा के समय बौद्ध धर्म राजधर्म बन चुका था पर हिन्दू धर्म नष्ट नहीं हुआ तथा इनके देवी–देवताओं की भी पूजा प्रचलित रही। फीमानवस के अवशेषों में एक लेख प्राप्त हुआ है, उसमें शिव, ब्रह्मा एवं बौद्ध तीनों का एक साथ उल्लेख है। इसी स्थान पर संस्कृत एवं खमेर दोनों भाषाओं में एक लेख और मिला है–

cãeyf'koLdU/kfo".k'kk[klukruA

o{kjkt egkHkkX; lokJ; Qyçn% AA

(अर्थात्, हे पवित्र बोधिवृक्ष, तेरी जड़ें ब्रह्मा हैं, तेरा तना शिव जी हैं और तेरी शाखाएँ विष्णु जी हैं य तुझ पर कभी बिजली न गिरे, तुझको कुठार काट न सके)। इत्सिंग ने लिखा है कि फूनान में पहले बहुत से देवताओं की पूजा होती थी किन्तु बाद में बौद्ध धर्म विकसित हुआ। छठीं सातवीं शती में बौद्ध धर्म कम्बोज में प्रविष्ट हुआ। 10 वीं से 13 वीं शती तक का काल बौद्ध धर्म के उत्कर्ष का काल रहा। 1296 ई० में चा – ता–क्वान नामक चीन यात्री कम्बोज पहुँचा था। इसने यहाँ विविध धर्मों का वर्णन इस प्रकार किया है– '' पढ़े–लिखों को

पण्डित कहा जाता था। इसके अतिरिक्त भिक्षु और पाशुपत थे। मैं नहीं जानता कि पण्डित लोग किसकी पूजा करते थे और कौन सी पुस्तकें पढ़ते थे। इनका दूसरों से यही भेद है कि ये गले में सफेद धागा पहनते हैं। समाज में इनकी स्थिति ऊँची मानी जाती है। '' सम्भवतः धागे का प्रयोग यज्ञोपवीत के लिए आया है। उसने आगे लिखा है– ''भिक्षु लोग सिर मुड़ाते हैं और पीले कपड़े पहनते हैं। ये अपना दायाँ कन्धा नंगा रखते हैं , नंगे पैर चलते हैं। इनके मन्दिरों की छतें खपरैल की हैं। इनके पूजा स्थलों में घन्टे, झण्डे, नगाड़े आदि कुछ भी नहीं हैं। ये दिन में केवल एक बार भोजन करते हैं। मांस–मछली तो खाते हैं पर शराब नहीं पीते। बुद्ध के लिए भी मांस की भेंट देते हैं। ताड़पत्रों पर लिखी पुस्तकों का पाठ करते हैं।

जयबर्मा सप्तम ने प्रज्ञापारमिता के रूप में अपनी माता की मूर्ति का निर्माण कराया था। इस मूर्ति को प्रतिष्ठापित कर मन्दिर का खर्च चलाने के लिए राजविभार नामक नगर को दान स्वरूप दिया था। जयबर्मा सप्तम की रानी इन्द्रदेवी भी बौद्ध धर्म के प्रति अपार श्रद्धा रखती थी। नगेन्द्रतुंग, तिलकोत्तर और नगेन्द्र नामक बौद्ध विहारों में उसने बौद्ध भिक्षुणियों को बौद्ध धर्म की शिक्षा दी थी। इस जयबर्मा सप्तम की तुलना मौर्य सम्राट अशोक से की जा सकती है। इसके बौद्ध धर्म के प्रति राजाश्रय एवं बौद्ध धर्म की उन्नति के कार्य अशोक की भाँति ही थे। राजा श्रीन्द्रबर्मा के 13 वीं शती के एक अभिलेख कोक–स्व– चाक के अनुसार त्रिरत्न के प्रति नमस्कार निम्न शब्दों में किया गया है–

fo|)efo |)ku| |f)|Eikidftu\A

/kEeUokfj;|?kPp |rr| |fj|k ue%AA

इस प्रकार बुद्ध, धर्म और संघ का प्रसार भारत के समान यहाँ अपनी जड़ें बड़ी मजबूत कर चुका था। तेरहवीं शती कम्बोज में बौद्ध धर्म का स्वर्ण युग माना जाता है।

10-4-4 /kkfeZd |eUo;

कम्बोज में पहले शैव धर्म पहुँचा था तदनन्तर बौद्ध धर्म, भाषाशास्त्रियों का यह मत भी उल्लेखनीय है कि भाषा में संस्कृत के शब्दों की बहुतायत है साहित्य में यहाँ रामायण , महाभारत तथा पुराणों की कथाओं का बाहुल्य है। पूजा, उपासना, कर्मकाण्ड एवं प्रथा, परम्पराएँ भारत से मिलती–जुलती हैं। स्वर एवं व्यंजनों का क्रम भी वैसा ही है कम्बोज के मन्दिरों तथा ऐतिहासिक स्थानों से उपलब्ध मूर्तियों, भित्ति चित्रों तथा शिलालेखों आदि में अंकित एवं उत्कीर्ण की हुई सामग्रियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कम्बोज में भारतीयता का प्रभाव काफी विस्तृत एवं चहुमुखी था। इसके अतिरिक्त शिव विष्णु, कार्तिकेय, गणेश, शालिग्राम सूर्य, दुर्गा भवानी, भगवती, चतुर्भुजा , सरस्वती, गंगा, इन्द्राणी आदि की मूर्तियों की स्थापना एवं उनके लिए बने देवालयों के भी अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। कई स्थानों पर तो आज भी इन देवताओं की मूर्तियों के साथ कम्बोज के मूल देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित हैं तथा उनकी पूजा की परम्परा भी जीवित है।

भारतीय उपासना प्रणालियों में यज्ञ का अनिवार्य स्थान है। कम्बोज के साक्ष्यों से यह ज्ञात होता है कि एक मध्य देश की स्त्री मालिनी ने विशाल यज्ञ कराया था। यह तथ्य इस बात का प्रबल प्रमाण है कि कम्बोज में नर और नारी समान रूप से यज्ञ करत थे। अनेक तपस्वी स्त्रियों– उमा, इन्द्रा के चमत्कारी वर्णन भी शिलालेखों से मिलते हैं। कम्बोज में बौद्ध धर्म की स्थिति हिन्दू धर्म के एक अंग के रूप में थी बौद्ध धर्म न तो ब्राह्मण धर्म से अलग ही था और न ही इसकी हिन्दू धर्म से कोई प्रतिस्पर्धा थी। यशोबर्मा के काल में 100 महाविद्यालयों में उच्च कोटि की शिक्षा की व्यवस्था का भी उल्लेख कम्बोज में मिलता है। कम्बोज के योग्य प्राध्यापकों में सोमशिव शंकर स्वामी, विनय पण्डित, जयमाला, जयेन्द्र योगेश्वर अगस्त्य , सर्वज्ञमुनि जय महाप्रधान, केशव आदि उल्लेखनीय हैं। अध्यापन का कार्य पुरुषों के अतिरिक्त स्त्रियाँ भी करती थीं अनेक स्त्रियों तिलका राजदेवी, इन्द्रादेवी, जनपदा और जयराज इस काल की प्रसिद्ध विदुषी प्राध्यापिकाएँ थीं। यशोबर्मा के शासनकाल में आश्रम पद्धति पुनः जीवित हुई, ऐसा वर्णन अनेक शिलालेखों से मिलता है। इसके शासनकाल में कम से कम सम्पूर्ण राष्ट्र में सौ आश्रमों का निर्माण किया गया था। जब खमेर के निवासियों में हिन्दू धर्म को नये धर्म के रूप में प्रचारित किया गया तो उन्होंने सहर्ष इसे स्वीकार किया। उन्होंने कुछ ख्मेर देवी–देवताओं के नाम परिवर्तित कर दिये तथा उन्हें शिव का नाम दिया। इस प्रकार शिव भगवान् को ख्मेर निवासियों ने कुछ ऐसे नामों से सुशोभित किया जो ख्मेर के अतिरिक्त अन्य कहीं भी नहीं मिलते हैं। ख्मेर देवी–देवताओं का

हिन्दूकरण अत्यधिक शीघ्रता से हुआ। एक ओर तो ख्मेर निवासी हिन्दू धर्म को ग्रहण कर रहे थे तथा दूसरी ओर हिन्दू धर्म स्थानीय संस्कृति व धर्म को स्वयं में आत्मसात् कर रहा था। सोदेस, वार्थ तथा बारगुन ने अपने अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि कम्बोज प्राचीन काल में एक प्रकार से छोटा भारत था। वहाँ पर भारतीय संस्कृति और धर्म का पूर्ण आधिपत्य था। फिनौट ने अंगकोरवाट से प्राप्त लेखों के आधार पर यह मत प्रकट किया है। कि संसार में इस अद्भुत ध्वंसावशेषों के निर्माण की प्रेरणा तथा कथा–सामग्री का निश्चित रूप से भारत से आयात किया गया था। पारमेन्टियर के प्रकाशित ग्रंथ चम्पा तथा कम्बोज के अभिलेख के आधार पर जो निष्कर्ष निकलते हैं,वे सिद्ध करते हैं कि अनाम तथा कम्बोज में भारतीयता की जड़ें अत्यन्त गहरी थीं। अयमोनियर ने भी अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है कि कम्बोज की शासन व्यवस्था तथा सांस्कृतिक उन्नति में भारतीयों का असाधारण योगदान रहा है।

कम्बोज के मन्दिरों, स्मारकों, दुर्गों, भवनों की शिल्पकला पूर्ण रूप से भारतीय है। वे देखने में ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे वे भारत में ही बने हों अथवा उन्हें भारतीयों ने ही बनाया है। कम्बोज की वर्ण– व्यवस्था, नवीन जातियों का उद्भव, विवाह–प्रथा, वेशभूषा, खान–पान, वस्त्र, आभूषण, पात्र, स्त्रियों की स्थिति तथा मृतक संस्कार आदि पर दृष्टिपात करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस देश में ब्राह्मणधर्मी पुरोहितों का ही प्राधान्य रहा। कम्बोज में ब्राह्मणों ने धर्म का प्रचार किया था तथा क्षत्रियों ने कुशल शासन व्यवस्था को स्थापित करने में योगदान दिया था। फ्रेंच इतिहासकार पिलिओ के मत में लगभग 1000 विद्वान् ब्राह्मणों की संख्या इस देश में वि।मान थी। इन विद्वानों में शिवकैवल्य हिरण्यदामन, अगस्त्य, दिवाकर, हृषिकेश, वामशिव, शिवाचार्य, त्रिभुवनराज, लोज युधिष्ठिर, पृथ्वीन्द्र पण्डित, विशालाक्ष, कवीन्द्र आदि उल्लेखनीय हैं। आज कम्बोज का राजधर्म बौद्ध है। वहाँ का सामान्य जन य।पि बौद्ध मतानुयायी हैं तथापि वहाँ के पूजागृहों तथा मन्दिरों में आज भी धनुषधारी राम और हनुमान की प्रतिमाएँ देखने को मिल जाती हैं।

कम्बोज की राजकीय मुद्रा पर हनुमानजी का अंकन आज भी होता है। वहाँ के सैनिक ध्वज पर हनुमानजी का चित्र आज भी अंकित किया जाता है। कम्बोज की वर्तमान भाषा की वर्णमाला देवनागरी लिपि के आधार पर ही थोड़े–बहुत परिवर्तनों के साथ बनी हुई है। भाषा में संस्कृत के शब्दों की प्रधानता है। वर्तमान में कम्बोज के अनेक विश्वविद्यालयों में पालि भाषा के अध्ययन–अध्यापन की विशेष व्यवस्था है। आज भी कम्बोज में चूड़ा–कर्म के पश्चात् केशों को ताम्रपत्र में बन्द करके मेकांग नदी में प्रवाहित करने की प्रथा वि।मान है। प्रत्येक मांगलिक अवसर पर रोली–अक्षत के तिलक लगाने की प्रथा का आज भी कम्बोज में हम देख सकते हैं। ऐतिहासिक साक्ष्यों के आलोक में कह सकते हैं कि कम्बोज को भारतीय संस्कृति एवं धर्म ने हर क्षेत्र में प्रभावित किया। यह प्रभाव इतना अधिक था कि आज लगभग 2000 वर्षों के पश्चात् भी इसे समाप्त नहीं किया जा सका।

10-5 lkjk'k

कम्बोज के सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वहाँ के जनजीवन में भारतीय जीवन परंपरा के गुण निहित दिखाई पड़ते हैं जिसने वंहा के सम्पूर्ण समाज को सभी पक्षों में प्रभावित किया। व्यापार–वाणिज्य के माध्यम से भारतीय कम्बोजवासियों के संपर्क में आए और शनै–शनै उन्होने अपनी वैविध्य संस्कृति से उन्हे प्रभावित किया जिसके फलस्वरूप वे भारतीय संस्कृति के संपर्क में आए और अपने दैनिक जीवन में उसका पालन करने लगे।भारतीय संस्कृति की यह छाप इतनी गहरी पड़ी कि आज 21वीं शताब्दी में भी उनके जीवन में भारतीय झलक देख सकते हैं।

10-6 ck/k ç'u

प्रश्न संख्या 01: कम्बोज की सामाजिक स्थिति के बारे मे चर्चा कीजिए ?

.....

.....

.....

प्रश्न संख्या 02: कम्बोज के समाज पर शैव और वैष्णव धर्म के प्रभावों को समझाइए ?

.....
.....
.....

प्रश्न संख्या 03: कम्बोज के धर्म और समाज पर भारतीय धर्म के प्रभावों की चर्चा कीजिए ?

.....
.....
.....

प्रश्न संख्या 04 : कम्बोज में बौद्ध धर्म के विकास और उसके स्वरूप को समझाइए ?

.....
.....
.....

प्रश्न संख्या 05:कम्बोज के व्यापार–वाणिज्य पर टिप्पणी कीजिए ?

.....
.....
.....

10-7 lnHk xFk lph

1. Majumdar, R.C., 1944, Hindu Colonies in Far East, General printers Publishers Limited, Calcutta
2. Majumdar, R.C., 1944, Kambujdess, University of Madras, Madras
3. Sastri, K. A. Nilkanth, 1940- ^^ŚRĪ VIJAYA-^^ Bulletin de l^École française d^EÛtrême&Orient 40, no- 2
4. Vidyalankar, Satyketu,2015,(ed) Dakshin Purvi aur Dakshini Asia meinBharatiya Sanskriti, Shree Saraswati Sadan, New Delhi

bdkbZ&11 dyk ,oa okLrqdyk&vadkjokV dk efUnj

bdkbZ dh :ijs[kk

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 अंकोरवाट के निर्माता एवं अवस्थिति

11.3 अंकोरवाट मंदिर का स्थापत्य

11.4 अंकोरवाट का महत्त्व

11.5 सारांश

11.6 बोध प्रश्न

11.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

11-0 çLrkouk

विश्व के अद्भुत आश्चर्यजनक स्थापत्य कृतियों की यदि बात की जाए तो वर्तमान कंबोडिया (जिसे पहले कंबोज के नाम से जाना जाता था) अंकोरवाट का नाम अग्रणी है। खमेर शासकों द्वारा 12 वीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में निर्मित यह उनकी सर्वोत्तम कृति है जो लगभग 400 एकड़ में फैली हुई है।यद्यपि प्रारम्भ में इसका निर्माण एक हिन्दू मंदिर के रूप में हुआ था परंतु आगे चल कर 12 वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में बौद्ध मंदिर के रूप में स्थापित हुआ। हालाँकि, समय की थपेड़ व इतिहास की अज्ञानता के कारण, अंकोरवाट धीरे–धीरे जीर्ण–शीर्ण और पृथ्वी के गर्भ में दबता चला गया, परंतु 1840 के दशक में, अंकोरवाट को फ्रांसीसी खोजकर्ताओं द्वारा फिर से खोजा गया और तदोपरांत इसे यूनेस्को की विश्व धरोहर स्थल के रूप में नामित किया गया।इस इकाई का उद्देश्य भी अंकोरवाट के मंदिर के ऐतिहासिक वैभव तथा स्थापत्य–कला की विशेषताओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करते हुये अतीत की समृद्धशाली भवन निर्माण व स्थापत्य तकनीकी से छात्र–छात्राओं को परिचित कराना है।इसके अतिरिक्त ख्मेर शासकों के अंकोरवाट मंदिर निर्माण में योगदान एवं हिन्दू तथा बौद्ध परम्पराओं का 12 वीं शताब्दी में कंबोडिया मे महत्त्व आदि को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है, जिससे वर्तमान पीढ़ी अपनी अद्भुत ज्ञान कौशल परंपरा की थाती को जान सके और उसपर गर्व कर सके।

11-1 mís';

वर्तमान समय में अंकोरवाट एक बौद्ध मंदिर के रूप में मौजूद है, लेकिन इसे प्रारम्भ में हिंदू देवताओं को समर्पित करते हुए बनाया गया था। जैसा कि विदित है कि भारतीय सनातन परंपरा में मंदिर मानव को भौतिक जगत से आध्यात्मिक जगत की यात्रा की ओर ले जाने वाले केंद्र के रूप में स्थापित हुए बहुत संभव है कि अंकोरवाट का मंदिर भी सूर्यवर्मन द्वितीयद्वारा इसी उद्देश्य से बनवाया गया होगा क्योंकि वह हिन्दू धर्म से प्रभावित था। उपलब्ध साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि सम्राट ने प्रारम्भ में इसे हिंदू देवता विष्णु को समर्पित किया था। हिंदू देवताओं में, विष्णु प्रमुख देवताओं में से एक हैं और उन्हें '' ब्रह्मांड के रक्षक'' के रूप में जाना जाता है, संभवतः इसी कारणख्मेर साम्राज्य सूर्यवर्मन द्वितीय ने इस अद्भुत मंदिर का निर्माण करवाया।राजा सूर्यवर्मन द्वितीय अंतरिक्ष और समय की गति को ज्योतिषीय आधार पर जानना चाहते थे इसी उद्देश्य से अंकोरवाट में उन्होंने अंतरिक्ष और समय की गति को जानने के लिए मंदिर वैसा ही स्थापत्यनिर्मित करवाया। इसे मंदिर की वास्तुकला में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, इतिहासकर स्टेंसेल (1976) के अनुसारइसमें चार युगों को दर्शाया गया है, जो दृश्यमान रूपक हैं इन चार युगों में कृत युग, त्रेता युग, द्वापर युग और कलि युग शामिल हैं। ये युग चार युगों की लंबाई का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो मंदिर के आयामों के साथ संरेखित होते हैं। प्रसिद्ध इतिहासकर डोक्रास (2020) के अनुसार युग हिंदू ब्रह्मांड विज्ञान से संबंधित हैं, क्योंकि कृत या सत्य युग सबसे सम्मानित और पहला युग है, जो ''सत्य के युग'' या ''हिंदू स्वर्ण युग'' का प्रतिनिधित्व करता है। कालानुक्रमिक क्रम में दूसरा युग त्रेता युग कहा जाता है, जो ''तीन चौथाई पुण्य और एक पाप'' का वर्णन करता है, और

द्वापर युग, तीसरा युग, जो ''दो चौथाई पुण्य और दो पाप'' का प्रतिनिधित्व करता है अंतिम और सबसे भयानक युग कलियुग है जो ''अंधकार और अज्ञान के युग'' को संदर्भित करता है। अंकोरवाट की स्थापत्य योजना बनाते समय, वास्तुकारों ने इसके अर्थों को शामिल किया तथा प्रत्येक युग में ब्रह्माण्ड विज्ञान के सिद्धांतों और खगोल विज्ञान का पालन करते हुए भवन निर्माण की दिशा में प्रवेश किया।

प्रसिद्ध विद्वान हांग का मानना है कि अंकोरवाट की सुंदरता और भव्यता के माध्यम से, राजा सूर्यवर्मन द्वितीय स्पष्ट रूप से अपनी राजनीतिक शक्ति प्रदर्शित करना चाहते थे। क्योंकिअंकोरवाट में विभिन्न मूर्तियां हैं जो राजा सूर्यवर्मन द्वितीय को भगवान विष्णु के रूप में चित्रित करती हैं। ये मूर्तियां एक संप्रभु के रूप में उनकी क्षमता और शक्ति को प्रदर्शित करती हैं। ब्रिटानिकाके अनुसार Ultimately the site of the temple became his tomb after death' अर्थात "अंततः मंदिर का स्थान राजा सूर्यवर्मन द्वितीय की मृत्यु के बाद उनकी समाधि के रूप में परिणित हो गई।"प्रसिद्ध विद्वान हांग कहते हैं कि King Suryavarman II*s posthumous name is Paramavishnuloka, which means He Who Has Gone to the Highest World of Vishnuअर्थात राजा सूर्यवर्मन द्वितीय का मरणोपरांत नाम परमविष्णुलोक है, जिसका अर्थ है ''वह जो विष्णु की परम सत्ता में चला गया है''। राजा सूर्यवर्मन द्वितीय के नाम के इस अनुवाद से पता चलता है कि उन्होंने शुरू में मंदिर का नाम विष्णुलोक रखने की योजना बनाई होगी, जिसका अनुवाद हांग द्वारा The World of Vishnu अर्थात ''विष्णु की दुनिया'' के रूप में किया गया है। शोध के आधार पर, लोगों का मानना है कि राजा सूर्यवर्मन द्वितीय का इरादा अंकोरवाट को राजा के विश्राम स्थल के रूप में बनाने का था, जो भगवान, विष्णु और स्वयं राजा सूर्यवर्मन द्वितीय दोनों को संदर्भित कर सकता है। राजा सूर्यवर्मन द्वितीय ने अपने शासनकाल के दौरान कई अन्य मंदिरों को भी निर्मित करवाया। हिंदू धर्म को सामान्य तौर पर बहुदेववादी धर्म माना जाता है, जो एक से अधिक देवताओं में विश्वास करते हैं। इस संदर्भ में मार्क (2020) लिखता है कि हालाँकि, हिंदू एक ही ईश्वर में विश्वास करते हैं, लेकिन कई अलग–अलग पहलुओं के साथ, जिसे ''हेनोथिस्टिक'' कहा जाता है। हिंदू धर्म में सर्वोच्च देवता ब्रह्मा हैं, जो सृष्टि के निर्माता हैं, फिर शिव कोप्रलय या मृत्यु का देवता जबकि विष्णु को जीवन रक्षक के रूप में प्रदर्शित किया गया है। अनंत काल, जीवन और मृत्यु का क्रम वैष्णववाद पर आधारित है जो अंकोरवाट में परिलक्षित होता है तथा यही कारण है कि अंकोरवाट में सर्वोच्च देवता ब्रह्मा के बजाय विष्णु हैं।अतः प्रस्तुत इकाई में कंबोडिया के राष्ट्रीय गौरव के इस स्रोत का इतिहास क्या है?यह जानने का यथोचित प्रयास किया जाएगा।

11-2 vadkjokVd fuekZk ,o vofLFkfr

अंकोरवाट का मंदिर कम्बोज वास्तुकला की सर्वोत्तम कृति है।इसका निर्माण सूर्यबर्मा द्वितीय द्वारा करवाया गया था, कुछ विद्वान इसके निर्माण का श्रेय सूर्यबर्मा के महामंत्री दिवाकर पंडित को देते हैं। सूर्यबर्मा के एक अभिलेख से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि इस मन्दिर के निर्माण का कार्य दिवाकर पण्डित द्वारा करवाया गया था। अंकोरवाट से प्राप्त अर्धचित्र शैली (एक प्रकार का अभिलेख) से सूर्यबर्मा की उपाधि 'परम विष्णु लोक ' प्राप्त होती है साथ ही कुछ अर्धचित्र शैली सूर्यबर्मा के उत्तराधिकारियों के काल में उत्कीर्ण की गई प्रतीत होती हैं।सूर्यबर्मा ने लगभग 1112 ई० से 1152 ई० के मध्य शासन किया। कुछ विद्वानों का तर्क है कि अंकोरवाट मूल रूप में एक शैव मन्दिर था। लेकिन बाद में बौद्ध धर्म के प्रयोग के लिए जयबर्मा सप्तम द्वारा इसे परिवर्तित किया गया। इसका प्रमाण वहाँ मुख्य देवालय से प्राप्त बुद्ध की लेटी हुई, बैठी हुई और खड़ी हुई प्रतिमाओं से मिलता है। मूल रूप में मुख्य देवालय में विष्णु की मूर्ति विद्यमान थी। कुछ इतिहासकर इसे विष्णु का मन्दिर मानते हैं। मंदिर की दीवारों पर ब्राह्मण धर्म ग्रन्थोंके प्रसंगों के चित्रण मिलते हैं जैसे–अप्सरा का सुंदर चित्रण,असुरों और देवताओं के बीच समुद्र मंथन का दृश्य आदि। जो मंदिर की भव्यता को बढ़ाता है। यह लगभग 400 एकड़ में फैला हुआ विश्व के प्राचीन मंदिरों में से एक है, जो मिकांग नदी के किनारे स्थित है।

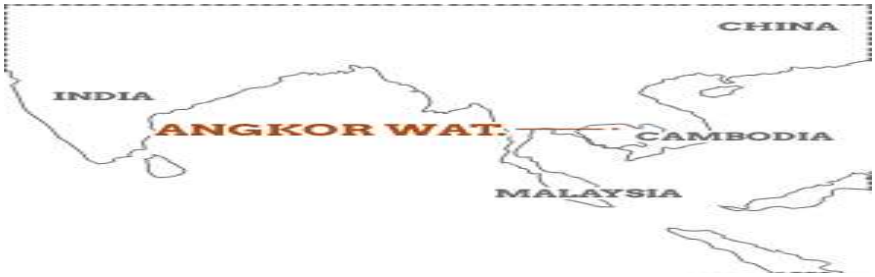

मानचित्र 01 : अंकोरवाट की स्थिति मानचित्र में (स्रोत : गूगल इमेज)

प्रचलित कथाओं के अनुसार जब बुद्ध घोषा लंका से वापस लौटे तो अंकोरवाट उन्हें दे दिया गया और इस प्रकार अंकोरवाट बौद्ध विहार या बौद्ध मठ में परिवर्तित हो गया। अगर बारहवीं शती में कोई कम्बोज निवासी बुद्ध घोषा नहीं था, तो कालक्रमानुसार यह बात असंगत है क्योंकि प्रसिद्ध बुद्ध घोषा चौथी शती ई० में हुआ था। स्थानीय अनुश्रुतियोंके अनुसार अंकोरवाट का निर्माण इन्द्र की आज्ञा से विश्वकर्मा ने किया था क्योंकि खमेर शिल्पकला के इतिहास में इससे अधिक सुन्दर और आकर्षक मन्दिर अन्यत्र नहीं मिलता है।

11-3 vadkjokV efnj dk LFkkiR;

अंकोरवाट का निर्माण राजा सूर्यवर्मन द्वितीय के सम्राट बनने के तीन साल बाद 1116 में प्रारम्भ हुआ तथा उसकी मृत्यु के तुरंत बाद 1150 में पूरा हुआ। जैसा कि परिसर के आकार से संकेत मिलता है, अंकोरवाट का निर्माण एक आसान प्रक्रिया नहीं थी क्योंकि लगभग 300,000 श्रमिकों की आवश्यकता थी, जिसमें आर्किटेक्ट, मूर्तिकार, राजमिस्त्री, निर्माण श्रमिक और नौकर शामिल थे। इसके अलावा, अंकोरवाट का अधिकांश भाग पत्थर से बनाया गया था, जिसके पूरा होने में 30 से अधिक वर्षों का समय लगा। चूँकि राजा सूर्यवर्मन द्वितीय चाहते थे कि आगंतुक केवल पश्चिम से प्रवेश करें, इस परिसर के रास्ते जानबूझकर जंगल में बनाए गए थे, क्योंकि यह दिशा विष्णु और मृतकों की भूमि से जुड़ी है, जिस दिशा में अंकोरवाट का मुख है वह इस इमारत के समाधि के निर्माण के साथ भी संरेखित है, जिसका उद्देश्य राजा सूर्यवर्मन द्वितीय का अंत्येष्टि स्मारक है इसके अलावा, जिस दिशा में स्मारक का मुख है वह राजा सूर्यवर्मन द्वितीय की विष्णु की स्तुति करने की इच्छा को उजागर करता है। इसके अलावा, चूंकि वास्तुकारों का मानना था कि युगों में शुभ और अशुभ दोनों प्रकृतियां होती हैं, इसलिए उन्होंने मंदिर को डिजाइन करते समय इसे ध्यान में रखा। उदाहरण के लिए, उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि कलियुग और द्वापर युग, दो सबसे विनाशकारी युग, गर्भगृह से बहुत दूर रखे गए थे, जबकि दो सबसे सम्मानित युग, कृत युग और त्रेता युग, गर्भगृह के करीब थे दुर्भाग्य से, अंकोरवाट के प्राथमिक वास्तुशास्त्र का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है, लेकिन यह अनुमान लगाया जा सकता है कि राजा सूर्यवर्मन द्वितीय के मुख्य आध्यात्मिक सलाहकार, दिवाकर पंडित इसके मुख्य वास्तुकार थे दिवाकर पंडित एक बहुत सम्मानित वरिष्ठ पुजारी थे, और वास्तुकारों तथा पुजारियों के बीच सहयोग ने इस ख्मेर मंदिर वास्तु स्थापत्य निर्माण शैली में पुजारियों के महत्व पर प्रकाश डाला जो हिन्दू स्थापत्य शैली की महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है ।

अंकोरवाट मंदिर परिक्षेत्र का छायाचित्र (स्रोत : गूगल इमेज)

मार्क (2020) के अनुसार हिंदू धर्म में सबसे महत्वपूर्ण तत्वों में से एक माउंट मेरु, देवताओं का घर है जिसको इस प्रकार अंकोरवाट के डिजाइन में शामिल किया गया कि यह आध्यात्मिक केंद्र का स्रोत है। चूंकि अंकोरवाट का मुख्य स्मारक मेरु पर्वत का प्रतिनिधित्व करता है, तथा यह अनिवार्य रूप से राजा सूर्यवर्मन द्वितीय को स्वयं एक भगवान के रूप में इंगित करता है। साथ ही हिंदू धर्म की विचारधारा और परंपराओं को दर्शाने वाले विभिन्न स्रोत भी हैं जो राजा सूर्यवर्मन द्वितीय के आध्यात्मिक और राजनीतिक महत्व को व्यक्त करते हैं। यही कारण है कि राजा सूर्यवर्मन द्वितीय अंकोरवाट की पत्थर की नक्काशी में अक्सर दिखाई देते हैं। इस धार्मिक स्मारक में उन्हें एक महाकाव्य व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है और एक देवता के रूप में अमर बनाया

गया है। निर्माण प्रक्रिया के दौरान, श्रमिकों ने यह सुनिश्चित करने के लिए अतिरिक्त ध्यान दिया कि राजा सूर्यवर्मन द्वितीय इस हिंदू मंदिर में आने वाले लोगों द्वारा आसानी से पहचाने जा सकें।

अंकोरवाट में मुख्य स्मारक की वास्तु रचना करते समय, वास्तुकारों ने यह सुनिश्चित किया कि इमारत की अतिरिक्त ऊंचाई 108 हाथ के बराबर हो, क्योंकि संख्या 108 सबसे शुभ संख्या थी, और यह संख्या हिंदू और बौद्ध दोनों ग्रंथों में पाई जाती है। उदाहरण के लिए, 108 नाम हिंदू भगवान विष्णु तथा देवी का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके अतिरिक्त, संख्या 108 ब्रह्मांड विज्ञान के साथ भी संरेखित होती है, क्योंकि चंद्रमा और सूर्य सालाना लगभग 54 डिग्री घूमते हैं और चंद्रमा और सूर्य दोनों की गति की डिग्री का योग 108 डिग्री है अर्थात कुल मिलाकर कहा जाए तो 108 संख्या का भारत व एशिया के अन्य देशों में आध्यात्मिक, वैज्ञानिक व खगोलशास्त्रीय महत्त्व रहा है जो मंदिर निर्माण की वास्तु स्थापत्य शैली में भी भली भांति परिलक्षित होती है।इसके स्थापत्य की श्रेष्ठता व सौंदर्य को देख कर ही पर्सी ब्राउन ने इसे सर्वोत्कृष्ट कृति कहा है जो ख्मेर कला के अन्तिम चरण की अतिशय अलंकृत अवस्था है। यह बयोन शैली को चित्रित करता है जो बारहवीं शती के उत्तरार्द्ध से तेरहवीं शती तक को आवर्त करता है। इस काल के बहुत से मन्दिर और भवन हैं जिनमें कि रिलीफ और छोटे चबूतरे भी सम्मिलित हैं। इस मन्दिर की समस्त संरचना का निर्माण एक जलयुक्त वातावरण में किया गया है तथा इसके चारों ओर की परिखा 650 फीट चौड़ी है तथा कुल लम्बाई ढाई मील है। जल से मुख्य मन्दिर में पहुँचने के लिए एक सेतु का निर्माण किया गया है। इसके विभिन्न शिखरों की ऊँचाई 130, 185, 200, 210 फीट है। यह लगभग एक मील के अन्तर्गत स्थित है। यह अंगकोरथाम शहर के दक्षिण में है। यह मन्दिर काफी लम्बे–चौड़े स्थान में बना हुआ है। फर्गुसन के अनुसार यह विशाल मन्दिर 430 वर्ग फीट के क्षेत्र में सीमित है। यह आयताकार है तथा इसके चारों ओर 650 फीट चौड़ी और ढाई मील लम्बाई की परिखा है। इस परिखा की बाह्य परिधि 1300X1500 मीटर है। इस परिखा को काटते हुए बने पुल हैं जो 36 फीट चौड़े हैं तथा 1500 फीट लम्बे है। यह काफी आश्चर्यजनक है कि मन्दिर का प्रवेश द्वार पश्चिम में है। इसके प्रवेश द्वार पर नाग बने हुए हैं जिनके फन लगभग चार फीट उठे हुए हैं।

ये दर्शकों पर एक विस्मयकारी प्रभाव डालते हैं। मन्दिर के सम्पूर्ण भाग में दो बाह्य भित्तियाँ बनी हुई हैं। तीन संकेन्द्रित गैलरियाँ हैं–एक मध्य भाग है : एक बड़ा शिखर है, एक छोटा पुस्तकालय है तथा तीन अन्य छोटी गैलरियाँ पश्चिम में हैं। प्रथम भित्ति का परिमाप 815X1000 मीटर है , दूसरे का 270X340 मीटर है तथा परिखा की बाह्य परिधि 1300X1500 मीटर है। पहली वेदिका की परिमाप 187X215 मीटर है। द्वितीय वेदिका 100X115 मीटर की है और तृतीय वेदिका 75X75 मीटर है। फर्गुसन का मत है किअंकोरवाट मन्दिर के शिखर की बनावट, सौन्दर्य बोध एवं बाह्य रचना भारतीय शिखरों के समान है। साथ ही साथ अंकोरवाट और रनपुर मन्दिर में कुछ–न–कुछ सम्बन्ध अवश्य रहा है क्योंकि दोनों की निर्माण शैली एक दूसरे के सदृश्य प्रतीत होती हैं। उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि स्थापत्य कला के क्षेत्र में कम्बोज देश के स्थानीय कलाकारों ने अपना यथेष्ट योगदान दिया। मन्दिरों की विशालता, लम्बाई–चौड़ाई तथा ऊँचाई का संतुलन, शिखरों का निर्माण और वीथियों का एक–दूसरे से मिलाना उन कलाकारों के ज्ञान और बुद्धि के विकास का परिचय देता है। कम्बोज के स्थापत्य विशेषज्ञ भारतीय स्थापत्य कला शैली की परिपाटी से पूर्णरूपेण परिचित थे। उनके सम्मुख पूर्व के बने हुए वे मन्दिर वि।मान थे जो उत्तर भारत की गुप्तकालीन और दक्षिण भारत की पल्लवकालीन मन्दिरों की विधि से काफी मिलते–जुलते थे। स्थापत्य कला के साथ ही इन मन्दिरों से कम्बोज की शिल्पकला का भी परिचय प्राप्त होता है। कम्बोज में शिल्प कला स्वतंत्र रूप से विकसित न होकर धार्मिक भावना के रूप में मन्दिरों को अलंकृत करने की प्रेरणा से विकसित हुई। आदि ख्मेर कला के स्थापत्य के समान शिल्पकला भी पूर्णतया भारतीय थी। इस काल की मूर्तियों में आँखें पूर्णतया खुली हुई हैं, होठों पर हल्की सी मुस्कान तथा चुन्नटदार पारदर्शी वस्त्र आदि प्रमुख विशेषताएँ हैं। इस प्रकार की मूर्तियाँ उत्तर भारत में गुप्तकाल से प्राप्त हुई हैं। इसके पश्चात् शास्त्रीय युग में भी मूर्तिकला के क्षेत्र में कई विशिष्ट परिवर्तन हुए। शास्त्रीय युग के अन्तर्गत बनी हुई समस्त मूर्तियाँ पूर्ण रूप से भारतीय प्रतीत होती हैं। धार्मिक भावना के प्रभाव के कारण कम्बोज देश के शिल्पकारों के मुख्य विषय तो ब्राह्मण और बौद्ध धर्म के ही रहे, परन्तु किन्हीं मूर्तियों में कम्बोज शिल्पकारों ने स्थानीय अलंकारों का प्रदर्शन करके तथा मूर्तियों के भावों में नवीनता लाकर खमेर शिल्पकला की मूर्तियों को विशिष्टता प्रदान की। ख्मेर कला की एक अन्य विशेषता यह है कि यहाँकी मूर्तियों में मैथुन मुद्राओं का पूर्णतया अभाव है, यद्यपि तंत्रवाद कम्बोज में पूर्णतया विकसित था। मन्दिरों की दीवारों को उत्कीर्ण करने के लिए जिन दृश्यों का अंकन किया गया है वे मुख्यतः रामायण, महाभारत तथा पुराणों से लिये गये प्रतीत होते

हैं। बाद में बेओन के मन्दिर की बाह्य दीवारों पर सैनिक चित्रों तथा स्थानीय जीवन झाँकी का भी अंकन मिलने लगता है। पर्सी ब्राउन ने ठीक ही कहा है कि सम्पूर्ण योजना को एक नपी–तुली गति प्रदान करके सभी अवयवों में समन्वय स्थापित करके इसे एक पूर्णता प्रदान की गयी है। संक्षेप में सभी जोड़ों के संयुक्त होने में जो नपा–तुला क्रम या रूप है, इसमें यह बेजोड़ है ।

वास्तव में अंकोरवाट की शैली सर्वप्रथम जयबर्मा द्वितीय द्वारा प्रयुक्त की गयी जब वे जावा से वापस लौटे थे। इसका मेरु पर्वत के प्रतीक रूप में निर्माण किया गया था। हेनरी मार्शल के अनुसार समतल चबूतरे पर ऊँचाई बढ़ाकर क्रास आकार में देवालय का निर्माण अंकोरवाट के समान यद्यपि कम्बोज में प्रायः मिलता है, लेकिन भारत में दुर्लभ है। ये बर्मा, चम्पा तथा जावा में भी नहीं मिलते हैं। प्रारम्भ का मुख्य शिखर जो अंकोरवाट की पंचायतन शैली के आकार की हैं, वह टोकियो में भी प्रचलित है। लेकिन जो अन्तर यहाँ देखने को मिलता है उसके अन्तर्गत यहाँ के शिखर अधिक विशाल बने हुई हैं और शिखर को ऊँचाई देकर एक अलग चबूतरे का आकार दे दिया गया है। अंकोरवाट के देवालय से गर्भगृह तक पहुँचने में बड़ी कठिनाई होती है। उनकी सीढ़ियाँ बिल्कुल खड़ी बनायी हुई हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि मुख्य शिखर पर सोने का कमल स्थापित किया गया था जो कि भूमि से 200 फीट ऊँचा उठा हुआ था। मुख्य शिखर के नीचे तक 120 फीट गहरा कुआँ खोज निकाला गया है जिसमें सोने से बनी हुई वस्तुओं का संग्रह मिला है। रोलैंड के अनुसार यह शिखर पृथ्वी की धुरी का द्योतक है जो कि मूसल के रूप में देवताओं और असुरों द्वारा समुद्र को मथने के लिए प्रयोग किया गया था।

11-4 vadkjokV dk egUo

अंकोरवाट 1840 के दशक में हेनरी मौहोट द्वारा यह स्थान पुनः खोजा गया। इस पुरस्थल के प्रकाश में आने के उपरांत यंहा इतिहासकारों व पुरविदों ने रुचि लेना प्रारम्भ किया और पुरातात्त्विक गतिविधियाँ प्रारम्भ हुई।ऐसा माना जाता है कि अंकोरवाट, जिसका अर्थ है ''मंदिर शहर'', जो 12वीं शताब्दी के पूर्वाद्व में बनाया गया था।अंकोरवाट का बहुत महत्व है, क्योंकि इसकी उल्लेखनीय वास्तुकला ने दुनिया भर में स्थापत्य कला की दृष्टि से गहरी छाप छोड़ी है। आजइस पुरस्थल को आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक महत्व व लाभ प्राप्त हुआ है, विशेषकर पर्यटन के माध्यम से। इसके अतिरिक्त, अंकोरवाट कंबोडिया के राजनीतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। साथ ही अंकोरवाट में भिक्षुओं की निरंतर उपस्थिति इसके महान आध्यात्मिक महत्व को दर्शाती है। वर्तमान में, कंबोडिया में लगभग 95ः बौद्ध हैं, जिस कारण इस मंदिर का महत्व बहुत बढ जाता है। बैली (2006) नामक विद्वान तर्क देते हैं कि अंकोरवाट को विशेष रूप सेउपचार, उत्सव और आत्माओं के एक स्थान के रूप में, खमेर वाले लोगों के एक क्षेत्र में, एक साथ निवास करने हेतु निर्मित किया गया था।अतः बौद्ध आध्यात्मिक मान्यताओं आदि के कारण अंकोरवाट का कंबोडियाई लोगों के लिए बहुत महत्व है।हालाँकि अंकोरवाट अब सुचारु रूप से चलने वाली बौद्ध आध्यात्मिक संस्था के रूप मे कार्य नहीं कर रही है जो पहले हुआ करती थी परंतु इसका मतलब यह कतई नहीं है कि अब कंबोडिया देश के विकास में इसका योगदान नगण्य हो गया है। एक आकड़े के अनुसार हर साल, बौद्ध धर्म के लगभग 1.2 मिलियन लोग अभी भी यहाँ आते हैं।नोम पेन्ह पोस्ट (The Phnom Penh Post, 2019) समाचार पत्र में छपे एक आँकड़े के अनुसार विश्व भर से 2018 में 2.5 मिलियन से अधिक आगंतुक अंगकोर पुरातत्व पार्क आए और पिछले वर्ष यानि 2017 की तुलना में आगंतुकों की संख्या में 5.45ः की वृद्धि दर्ज की गई। इससे टिकटों की बिक्री में 8ः की वृद्धि हुई तथा कुल मिलाकर लगभग 116.64 मिलियन डॉलर कंबोडिया को राजस्व के रूप में प्राप्त हुआ।वर्ष 1998 और 2019 के बीच कंबोडिया की अर्थव्यवस्था की औसत विकास दर 7.7ः की थी, जो देश को दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक के रूप में वर्गीकृत करती है। यह मुख्य रूप से कंबोडिया के उभरते पर्यटन के परिणामस्वरूप संभव हो पाया है। परंतु कोरोना महामारी के दौरान, कंबोडिया की अर्थव्यवस्था काफी खराब हो गई है तथा वर्ष 2020 में अर्थव्यवस्था की नकारात्मक वृद्धि दर –3.1ः रही। इसका कारण यह रहा कि कोरोना महामारी के दौरान अंकोरवाट जैसे स्थानों पर पर्यटक नहीं आए तथा इससे देश की अर्थव्यवस्था में और गिरावट आई।हाल ही मे प्राप्त आकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पर्यटन प्रारम्भ होने से कंबोडियाई अर्थव्यवस्था वर्तमान समय में सुधरी है तथा आने वाले समय में सकारात्मक वृद्धि दर्ज होने की पूरी संभावना है ।

11-5 lkjk'k

हालाँकि कुछ लोगों का मानना है कि अंकोरवाट को वहाँ निवास करने वाले लोगों ने समय के साथ छोड़ दिया था, लेकिन यह सच नहीं है। अंकोरवाट बस आबादी से अलग हो गया था और युद्ध के कारण अनुपयोगी हो गया था लेकिन एक बार जब यह मंदिर स्थल फिर से खोजा गया, तो अंकोरवाट के कई रहस्य धीरे–धीरे सामने आने लगे, क्योंकि इसकी वास्तुकला में महत्वपूर्ण प्रतीक शामिल हैं जो धर्म, खगोल विज्ञान, ब्रह्मांड विज्ञान, इतिहास और कई अन्य क्षेत्रों के बारे में ज्ञान प्रदान करते हैं। राजा सूर्यवर्मन द्वितीय के बाद कई शासकों ने राजनीतिक उद्देश्यों और बौद्ध मान्यताओं को बढ़ावा देने के लिए मंदिर का संशोधन और जीर्णोद्धार किया, बावजूद इसके अंकोरवाट ने अभी भी मूल हिंदू प्रतीकों को बनाए रखा और राजा सूर्यवर्मन द्वितीय के मूल उद्देश्य को बरकरार रखा। आज, अंकोरवाट दुनिया के सबसे बड़े स्मारकों में से एक बना हुआ है और खोज तथा विश्लेषण के लिए महान वैभव और वास्तुशिल्प सुराग प्रदान करता है। वास्तव में, यह मंदिर स्थल कंबोडियाई पहचान से इतना निकटता से जुड़ा हुआ है कि अंकोरवाट को कंबोडिया के ध्वज पर चित्रित किया गया है। मंदिर परिसर पर उत्खनन के फलस्वरूप कई महत्त्वपूर्ण जानकरियाँ प्रकाश में आई हैं यद्य अभी भी अध्ययन जारी है और आशा करते हैं कि भविष्य में इसके स्थापत्य वैभव, संस्कृति एवं इतिहास के विभिन्न पक्षों में और भी अधिक जानकारी प्राप्त होगी।

11-6 ckS/k ç'u

प्रश्न संख्या 1: अंकोरवाट के धार्मिक महत्त्व पर चर्चा करें ?

.....

.....

.....

प्रश्न संख्या 2: अंकोरवाट का कंबोडिया के आर्थिक विकास में क्या योगदान है? संक्षेप में प्रकाश डाले?

.....

.....

.....

प्रश्न संख्या 3: अंकोरवाट मंदिर स्थापत्य कला शैली पर टिप्पणी कीजिए ?

.....

.....

.....

11-7 lanHkZ xzUFk lwph

1. Bhagentsang, Dickyi et-al-, 2021- Angkor Wat, EÛploring the Art, Science and History Behind one of the World*s Greatest Religious Sites, G-M- Press,Canada
2. Carter, A. K., 2019, June 3, Angkor Wat archaeological digs yield new clue to its civilisation*s decline- The Conversation- http%//theconversation-com/ angkor&wat&archaeological&digs&yield&new&clues&to&its&civilizations decline&116793/
3. Carter, A. K., Stark, M.T., Quintus, S., Zhuang, Y., Wang, H., Heng, P., & Chhay, R., 2019- Temple occupation and the tempo of collapse at Angkor Wat, Cambodia- Proceedings of the National Academy of Sciences, 116,25, 12226–12231- https%//doi-org/10-1073/pnas-1821879116/
4. Dokras] U- V- ¼2020½- The&indianTwins&of&Angkor&wat Are the Cambodian temples of the Hindu family\- The Journal of the Indo&Nordic Author*s Collective-https%//www-researchgate net/publication/344428158_TheindianTwinsof&Angkorwat_Are_the_Cambodian_temples_o

f_the_Hindu_family

5. Fletcher] R-] Evans] D-] Pottier] C-] & Rachna] C- % 2015- Angkor Wat% An introduction- Antiquity] 89] 1388–1401- https%//doi-org/10-15184/ aqy-2015-178
6. Majumdar R-C- % 1944- Hindu Colonies in Far East] General printers Publishers Limited] Calcutta-
7. Stencel, R-, Gifford] F-] & Morón] E- % 1976- Astronomy and Cosmology at Angkor Wat- Science] 193¼4250½] 281–287-
8. Taylor] N- A- : 1998- Review of Angkor Wat% Time] Space and Kingship- Ars Orientalis] 28] 126–128
9. Vidyalankar] Satyketu % Dakshin Purvi aur Dakshini Asia mein Bharatiya Sanskriti
10. The Phnom Penh Post- % 2019- Angkor hosts 2-6M visitors- https%//www-phnompenhpost-com/business/angkor&hosts&26m&visitors/

bdkbZ&12 lqo.kZ}hi esa ckS) /keZ

bdkbZ dh :ijs[kk

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 सुवर्णद्वीप की स्थिति

12.3 सुवर्णभूमि व सुवर्णद्वीप का भारत से व्यापारिक मार्ग

12.4 सुवर्णद्वीप में बौद्ध धर्म

12.5 सारांश

12.6 बोध प्रश्न

12.7 संदर्भ ग्रंथ

12-0 çLrkouk

सुवर्णद्वीप प्राचीन काल से ही भारतियों के लिए आकर्षण का केंद्र रहा है। भारतीयों का व्यापार–वाणिज्य की दृष्टि से यंहा आवा गमन था।वे सामान्य तौर पर दक्षिण–पूर्व एशिया के देशों को सुवर्णद्वीप तथा सुवर्णभूमि के नाम से संबोधित करते थे। स्रोतों से ज्ञात होता है कि बर्मा से मलाया तक का प्रदेश सुवर्णभूमि कहलाता था जबकि उससे पूर्व में स्थित इंडो–चायना का प्रायद्वीप (कंबोडिया, लाओस एवं वियतनाम) तथा वर्तमान इन्डोनेशिया के अंतर्गत विविध द्वीप (सुमात्रा, जावा, बाली तथा बोर्नियो आदि) सुवर्णद्वीप नाम से जाना जाता है। यह सम्पूर्ण क्षेत्र स्वर्ण के साथ–साथ अन्य बहुमूल्य खनिज संसाधनों की प्रचुर उपलब्धता का केंद्र रहा जिस कारण भारतीय व्यापारियों को यह क्षेत्र सदैव अपनी ओर आकर्षित करता रहा।इन्डोनीसिया के विविध द्वीपों में बहुमूल्य धातुओं के अतिरिक्त गरम मसाले, चीनी, कीमती काष्ठ आदि प्रभूत परिमाण में होते थे, और इनके क्रय–विक्रय से प्रभूत धन कमाया जा सकता था। इस दृष्टि से इनका सुवर्ण–द्वीप नाम भी संगत था। प्राचीन रोमन लोग भी इन्हें '' चिसी " कहा करते थे जिसका शब्दार्थ भी सुवर्णद्वीप है। पर यह ध्यान में रखना चाहिए, कि प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में सुवर्णभूमि और सुवर्णद्वीप शब्दों का प्रयोग स्थूल रूप से किया गया है, और इनसे वे विविध प्रदेश अभिप्रेत थे जो भारत के पूर्व तथा दक्षिण–पूर्व में स्थित हैं।जैसा कि विदित है दक्षिण–पूर्वी एशिया के विविध देशों के साथ भारत का सम्बन्ध पहले व्यापार द्वारा हुआ था, अतः सुवर्णभूमि तथा सुवर्णद्वीप का उल्लेख सबसे पहले व्यापार के सिलसिले में ही आया है। बौद्ध साहित्य में जातक कथाओं का विशिष्ट स्थान है। बुद्ध के पूर्व जन्मों को निमित्त बनाकर उनमें बहुत–सी ऐसी कथाएं दी गई है, जो प्राचीन इतिहास पर भी प्रकाश डालती हैं। इन जातक कथाओं में व्यापार के लिए सुवर्णभूमि व सुवर्णद्वीप जाने वाले साहसी व्यापारियों के कथानक भी विद्यमान हैं। जातक कथाओं का सम्बन्ध भारतीय इतिहास के बौद्ध युग से हैऔर उन द्वारा उसी युग की दशा पर प्रकाश पड़ता है। व्यापार के लिए सुवर्णभूमि जानेवाले व्यापारियों की कुछ कथाएँ कथासरित्सागर, बृहत्कथामन्जरी और बृहत्कथाश्लोकसंग्रह में भी पायी जाती हैं। ये तीनों ग्रन्थ गुणाढ्य–कृत पालि भाषा की बृहत्कथा नामक पुस्तक पर आधारित हैं। भारतीय व्यापारियों के आगमन के फलस्वरूप विभिन्न धर्मों के अनुयायी उनका अनुसरण करते हुये यहाँ पहुंचे जिनमें से बौद्ध धर्म प्रमुख धर्म के रूप में इन क्षेत्रों में स्थापित हुआ प्रस्तुत इकाई में सुवर्णद्वीपमें प्रचलित बौद्ध धर्म परंपरा को जानने का यथोचित प्रयास किया जाएगा।

12-1 mn~n';

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि सुवर्णद्वीपमें बौद्ध धर्म का प्रचार दृ प्रसार किस प्रकार हुआ और कैसे समय के साथ बौद्ध धर्म दक्षिण–पूर्व एशिया का प्रमुख धर्म बन गया।जैसा कि विदित है कि भारत व दक्षिण–पूर्व के मध्य व्यापार–वाणिज्य के साथ–साथ धर्म भी उन क्षेत्रों में पहुंचा तथा बौद्ध धर्मईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से इन क्षेत्रों में मौजूद दिखाई देता है औरसदियों सेइसकी संस्कृति, कला,साहित्य

और सामाजिक जीवन को गहराई से प्रभावित करता रहा है।अनेक भारतीय शासकों ने भी विदेशों मे इसके प्रसार मे योगदान दिया, सम्राट अशोक (268–232 ईसा पूर्व) ने बौद्ध धर्म को बढ़ावा दिया और दक्षिण पूर्व एशिया में दूत भेजे।इन दूतों ने बौद्ध धर्म के ग्रंथों और शिक्षाओं का प्रचार किया, जिससे स्थानीय शासकों और लोगों में बौद्ध धर्म में रुचि पैदा हुई, और इन देशों मे स्थानीय शासकों ने इसको समर्थन देना प्रारंभ कर दिया। द्वितीय शताब्दी ईस्वी तक, बौद्ध धर्म ने थाईलैंड, म्यांमार, कंबोडिया और जावा जैसे देशों में अनेक स्थानीय राजाओं का समर्थन प्राप्त कर लिया था।इन शासकों ने बौद्ध मठों का निर्माण करवाया, भिक्षुओं को संरक्षण दिया और बौद्ध शिक्षा को बढ़ावा दिया। इन दिनों भारत में नालंदाविश्वविद्यालय(4वीं–12वीं शताब्दी ईस्वी)बौद्ध शिक्षा का एक प्रमुख केंद्र था, जोविद्वानों और भिक्षुओ को आकर्षित करता था। यह विश्वविद्यालय बौद्ध ग्रंथों के अध्ययन और अनुवाद के लिए प्रसिद्ध था, और इसने बौद्ध दर्शन और विचारधारा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। श्रीविजय साम्राज्य (7वीं–13वीं शताब्दी ईस्वी)ने बौद्ध धर्म को सुमात्रा, जावा और मलय प्रायद्वीप में फैलाया।इस साम्राज्य के शासकों ने बौद्ध मंदिरों का निर्माण किया, भिक्षुओं को संरक्षण दिया और बौद्ध शिक्षा को बढ़ावा दिया।श्रीविजय बौद्ध धर्म के प्रसार में एक महत्वपूर्ण भूमिकानिभाई तथा खमेर साम्राज्य (9वीं–15वीं शताब्दी ईस्वी) ने कंबोडिया में बौद्ध धर्म को अपनाया और भव्य मंदिरों का निर्माण किया, जैसे कि अंकोरवाट।ये मंदिर बौद्ध कला और वास्तुकला के उत्कृष्ट नमूने हैं और आज भी पर्यटकों को आकर्षित करते हैं।इस तरह खमेर साम्राज्य भी बौद्ध कला और संस्कृति के विकास में एक महत्वपूर्ण योगदानकर्ता था।13वीं शताब्दी में,थाईलैंड में थेरवाद बौद्ध धर्म राजकीय धर्म बन गया।यह बौद्ध धर्म की थेरवाद शाखा है, जो सुवर्णद्वीप में सबसे अधिक प्रचलित है।थाईलैंड में बौद्ध धर्म मठों, त्योहारों और परंपराओं के माध्यम से लोगों के जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है।

12-2 lqo.kZ}hi dh fLFkfr

कथासरित्सागर की अनेक कथाओं में जलमार्ग द्वारा सुवर्णद्वीप जाने वाले व्यापारियों का वृतान्त दिया गया है। एक कथा के अनुसार समुद्रशूर नाम के व्यापारी ने जहाज से सुवर्णद्वीप के लिए प्रस्थान किया था, और वह कलसपुर के बन्दरगाह पर गया था। रुद्र नाम का व्यापारी जब सुवर्णद्वीप से वापस आ रहा था, तो उसका जहाज मार्ग में समुद्र में डूब गया था। व्यापार के लिए सुवर्णद्वीप जाने वाले ईश्वरबर्मा और यशःकेतु नामक व्यापारियों की कथाएँ भी कथासरित्सागर में विद्यमान हैं।एक अन्य कथा के अनुसार कटाह द्वीप की राजकुमारी का जहाज भारत की ओर आते हुए मार्ग में सुवर्णद्वीप के पास नष्ट हो गया था, और राजकुमारी ने उस द्वीप में शरण प्राप्त की थी। कटाहद्वीप को वर्तमान समय के केड्डा या केडाह(कडार) के साथ मिलाया गया है। कथासरित्सागर की अन्य भी कई कथाओं में कटाह द्वीप जाने वाले व्यापारियों का वर्णन है। गुहसेन नाम का व्यापारी अपनी पत्नी देवस्मिता के साथताम्रलिप्ति से कटाह द्वीप गया था। कथाकोश में नागदत्त नामक एक व्यापारी की कथा दी गई है, जो धन उपार्जन करने के लिए पाँच सौ जहाजों को लेकर समुद्र यात्रा के लिए चला था। मार्ग में उसके जहाज एक ऐसे स्थान पर फँस गए, जो पहाड़ियों से घिरा हुआ था। नागदत्त ने अपनी विपत्ति की सूचना एक तोते के पैर में बँधे हुए पत्र द्वारा बाहर भेजी। यह पत्न सुवर्णद्वीप के राजा सुन्दर के हाथ लग गया, और उसने नागदत्त का संकट से उद्धार किया।हरिभद्रसूरि ने अपने कथा ग्रन्थ समरादित्य कथा में भारतीय व्यापारियों द्वारा की जाने वाली समुद्र, यात्राओं के अनेक विवरण लिखे हैं।कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सुवर्णभूमि से प्राप्त होने वाले अगुरु का उल्लेख है। मिलिन्दपन्हों में एक स्थान पर जहाज के एक ऐसे स्वामी का विवरण है, जो व्यापार के लिए समुद्र को पार कर तक्कोला या चीन या सुवर्णभूमि या अन्यत्र बन्दरगाहों पर जाया करता था। बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध पालिग्रन्थ निद्देस में उन क्लेशों का वर्णन किया गया है, धन और सुख की अभिलाषा से समुद्र– यात्रा करने वाले नाविकों को जिनका बहुधा सामना करना पड़ता था। बौद्ध ग्रन्थ महाकर्मविभग में देशान्तरविपाक (विदेश यात्रा से प्राप्त होने वाले कष्ट) की व्याख्या करते हुए उन व्यापारियों का जिक्र किया गया है, जो महाकोशल और ताम्रलिप्ति मे सुवर्णभूमि जाया करते थे।

अशोक के समय में आचार्य उपगुप्त (मोद्गलिपुत्र तिष्य) द्वारा विविध देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए आयोजन किया गया था, महावंश के अनुसार उसमें सुवर्णभूमि में धर्म प्रचार करने का कार्य सोण और उत्तर नाम के स्थविरों के सुपुर्द किया गया था। गवाम्पति नामक एक अन्य भिक्षु भी धर्मप्रचार के लिए सुवर्णभूमि गया था। इसका उल्लेख महाकर्मविभंग और सासनवंश नाम के बौद्ध ग्रन्थों में पाया जाता है। तिब्बत की बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार सातवीं सदी में धर्मपाल ने और ग्यारहवीं सदी में दीपंकर श्रीज्ञान अतीश ने सुवर्ण– द्वीप की यात्राएँ की थीं। दिव्यावदान में भी ' महान्तं सुवर्णभूमि पृथिवीप्रदेशम् ' का उल्लेख है, और वहाँ पहुँचने की

कठिनाइयों का वर्णन किया गया है। पुराणों में भी अनेक स्थलों पर सुवर्णभूमि का उल्लेख किया गया है। भारत के प्राचीन साहित्य के बौद्ध, जैन तथा पौराणिक सभी प्रकार के ग्रन्थों में सुवर्णभूमि और सुवर्णद्वीप के उल्लेख का होना यह सूचित करता है, कि प्राचीन भारतीय दक्षिण–पूर्वी एशिया के क्षेत्र से भली–भाँति परिचित थे। दक्षिण–पूर्वी एशिया के क्षेत्र को सुवर्णभूमि व सुवर्णद्वीप कहने की परम्परा केवल भारतीयों तक ही सीमित नहीं थी। उनके अनुकरण में ग्रीक, रोमन, अरब तथा चीनी लोग भी इसे इन्हीं नामों से संबोधित करते थे।पामपोनियस मेला ने रोमन सम्राट् क्लोडियस (41–54 ईस्वी) के शासन काल में लिखे अपने ग्रन्थ ' दि कोरोग्राफिया ' में चिसी द्वीप का उल्लेख किया है, जिसका शब्दार्थ सुवर्णद्वीप है। परिप्लस आफ एरिथिअन सी '(पहली सदी ईस्वी) में भी चिसी का जिक्र आता है, और प्लिनी (77 ईस्वी) ने भी अपने भूगोल में इसका उल्लेख किया है। बाद के अन्य अनेक ग्रीक और रोमन लेखकों के ग्रन्थों में भी चिसी द्वीप का वर्णन है। टालमी (दूसरी सदी ईस्वी) ने चिसी के बजाय चिसी–कोरा (Chryse Chora) शब्द का प्रयोग किया है, जो सुवर्णभूमि शब्द का अनुवाद है। अन्यत्र टालमी ने चिसी– चेरसोनेंसस का भी उल्लेख किया है, जिसका शब्दार्थ सुवर्ण प्रायद्वीप है।अरब लेखक अलबरूनी ने लिखा है, कि ''जाबज के द्वीपों को हिन्दू लोग सुवर्णद्वीप कहते हैं। ''एक अन्य स्थान पर अलबरूनी नेलिखा है– ''जाबज के द्वीपों को सुवर्णभूमि इस कारण कहा जाता है, क्योंकि वहाँ की मिट्टी को यदि थोड़ा–सा भी धोया जाए, तो उससे सोना प्राप्त हो जाता है। बृहत्संहिता में उत्तर–पूर्व के देशों की जो सूची दी गई है, अलबरूनी के अनुसार उसमें सुवर्णभूमि भी थी। हरकी, याकूत, शीराजी, और बुजुर्ग– बिन सरियार नामक अरब लेखकों ने भी ' सोने की भूमि ' का उल्लेख किया है। इन लेखकों का समय बारहवीं से चौदहवीं सदी तक था। नूवायरी (चौदहवीं सदी) ने सुमात्रा के पश्चिमी भाग में स्थित फनसूर का' सोने की भूमि ' के रूप में वर्णन किया है। भारत के अनुकरण में चीनी लोग भी इस क्षेत्र के प्रदेशों को सुवर्णद्वीप ही कहा करते थे।इत्सिंग ने अपने यात्रा विवरण में दो बार किन्–च्यू (सुवर्णद्वीप) का उल्लेख किया है, जिसे उसने चे–लि–फो–चे (श्रीविजय) से मिलाया है।इत्सिंग ने श्रीविजय को ही सुवर्णद्वीप कहा है। दक्षिण–पूर्वी एशिया के किस प्रदेश को सुवर्णभूमि कहा जाता था, और किस प्रायद्वीप, द्वीप या द्वीपसमूह के लिए सुवर्णभूमि शब्द प्रयुक्त होता था, यह निर्धारित कर सकना कठिन है। विद्वानों में इस प्रश्न पर मतभेद भी है। पर भारत के पूर्व में जिन देशों और दीपों को टालमी ने तान्स–गंगेतिका (गंगा पार का भारत) कहा था, सुवर्णभूमि और सुवर्णद्वीप भी उन्हीं को कहा जाता था। इस बात के प्रमाण विद्यमान हैं, कि बरमा, मलय प्रायद्वीप और सुमात्रा के लिए सुवर्णभूमि शब्द का प्रयोग हुआ है, और सुमात्रा तथा उसके समीप के द्वीपों की सुवर्णद्वीप भी कहा गया है। पर इन संज्ञाओं का प्रयोग केवल इन्हीं तक सीमित नहीं था। भारत के दक्षिण–पूर्व के प्रायः सभी प्रदेश और द्वीप सुवर्णभूमि के अन्तर्गत थे।

12-3 lo.kHkfe o lo.k}hi dk Hkkjr ls 0;kikfjd ekx

भारत से सुवर्णभूमि और सुवर्णद्वीप जाने–आने के लिए भारत के नाविक प्रमुख रूप से तीन मार्गों का प्रयोग किया करते थे। उत्तर भारत के व्यापारी गंगा के मार्ग से पहले ताम्रलिप्ति पहुंचते थे, जो गंगा नदी के मुहाने पर बन्दरगाह था। ताम्रलिप्ति से वे अन्डमान द्वीप के उत्तर से होते हुए या अन्डमान और निकोबार द्वीपों के बीच से होते हुए मलाया प्रायद्वीप पहुंच जाते थे, जहाँके जलडमरुमध्य के समीपवर्ती प्रदेश में अनेक बन्दरगाह थे। दूसरा मार्ग भारत के पूर्वी समुद्रतट के बन्दरगाहों से प्रारम्भ होता था। भारत के पूर्वी समुद्रतट पर मुख्य बन्दरगाह दन्तपुर, चिन्नगंजाम और कावेरीपट्टनम् थे। इनसे प्रस्थान करने वाले जहाज बंगाल की खाड़ी को पार कर सीधे मलाया प्रायद्वीप चले जाते थे। तीसरा मार्ग लंका (सिंहलद्वीप) से प्रारम्भ होता था, और निकोबार द्वीप के दक्षिण से होता हुआ मलाया पहुंचता था। मलाया प्रायद्वीप से दक्षिण–पूर्वी एशिया के अन्य देशों तथा द्वीपों को जाने के लिए भी अनेक मार्गों का प्रयोग किया जाता था। मलाया के दक्षिण में सिंगापुर है, जिसे मलक्का का जलडमरूमध्य सुमात्रा से पृथक करता है।

12-4 lo.k}hi esa cks) /kez

सुवर्णद्वीप में बौद्ध धर्म की दो मुख्य शाखाएँ हैंः थेरवाद और महायान।थेरवाद शाखाअधिक रूढ़िवादी है और बौद्ध धर्म के मूल सिद्धांतों पर केंद्रित है।महायान शाखा अधिक विविध है और इसमें विभिन्न देवताओं, बोधिसत्वों और अनुष्ठानों की पूजा शामिल है।सुवर्णद्वीप में प्रवेश करने पर, बौद्ध धर्म ने स्थानीय संस्कृतियों और परंपराओं के साथ समन्वय स्थापित किया।यह स्थानीय भाषाओं, कला और वास्तुकला में अपनाया गया।इसके परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म की एक विशिष्ट और विविध अभिव्यक्ति हुई जो देश की संस्कृति को दर्शाती है।स्थानीय

लोगों की जरूरतों और परिस्थितियों के अनुरूप नए मठवासी आदेशों का विकास हुआ।उदाहरण के लिए, थाईलैंड में, 'फो' नामक एक नया मठवासी आदेश बनाया गया था, जो स्थानीय लोगों के बीच बौद्ध धर्म को फैलाने और सामाजिक कार्यों में योगदान देने पर केंद्रित था।बौद्ध धर्म ने स्थानीय त्योहारों और परंपराओं को अपनाया और उन्हें नए अर्थों से भर दिया।उदाहरण के लिए, थाईलैंड में, 'सोन्गक्रान' नामक त्योहार बौद्ध नव वर्ष के साथ जुड़ा हुआ हैं।

बौद्ध धर्म तथा अन्य भारतीय धर्मों ने व्यापारियों का अनुसरण कर इन प्रदेशों में जाना प्रारम्भ किया। राजा अशोक के समय में आचार्य उपगुप्त (मोद्गलिपुत्र तिष्य) के नेतृत्व में विदेशों में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए जो आयोजन किया गया था, उसमें सोण और उत्तर नाम के स्थविरों को सुवर्णभूमि भेजा गया था। वहाँ के राजा के कोई सन्तान जीवित नहीं थी, क्योंकि उसके समीपवर्ती समुद्र में एक राक्षसी रहती थी, जो राजा की सन्तान को जन्म लेते ही खा जाती थी। सोण और उत्तर ने उस राक्षसी की शक्ति का नाश किया, जिससे राजा की सन्तान की अकाल मृत्यु का भय दूर हुआ। सम्भवतः, महावंश की इस कथा द्वारा यह संकेत मिलता है, कि धर्म प्रचार के लिए सुवर्णभूमि जाने वाले के स्थविर चिकित्सा में भी प्रवीण थे, और उन्होंने रोग रूपी राक्षसी का संहार कर राजा की सन्तान की प्राणरक्षा की थी। कम्बोडिया का फूनान राज्य कौण्डिन्य नाम के एक ब्राह्मण द्वारा स्थापित किया गया था, जो शायद वहाँ धर्म प्रचार के लिए ही गया था। चम्पा के एक उत्कीर्ण लेख के अनुसार उरोज नामक ऋषि को शिव ने चम्पा का राजा बना कर भेजा था।' जब ये ऋषि, स्थविर व धर्म प्रचारक दक्षिण–पूर्वी एशिया के इन प्रदेशों में जाने लगे, तो उनका सम्पर्क वहाँ के निवासियों के साथ हुआ, जो सभ्यता के क्षेत्र में बहुत पिछड़े हुए थे। भारतीय प्रचारकों से उन्होंने न केवल धर्म की शिक्षा ग्रहण की, अपितु सभ्यता का पाठ भी पढ़ा। ये प्रचारक वहीं पर बस गए, और वहाँ की स्त्रियों से उन्होंने विवाह सम्बन्ध भी स्थापित कर लिए। इस प्रकार अनेक ऐसे सांस्कृतिक उपनिवेशों का सूत्रपात हुआ, जिनके निवासी संकर जातियों के थे, पर जिन्होंने भारतीयों की संस्कृति तथा धर्म को पूरी तरह से अपना लिया था।

यद्यपि सुवर्णद्वीप का विस्तार कम्बोज, लाओस, वियतनाम, सुमात्रा, जावा तथा बाली आदि तक के क्षेत्रों तक था तथा सम्पूर्ण क्षेत्र में बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार हुआ। कम्बोज में बौद्ध की हीनयान शाखा का विस्तार हुआ। जयबर्मा प्रथम के एक बौद्ध लेख से यह विदित होता है कि राज्य में रत्नभानु और रत्नसिंह नामक दो बौद्ध भिक्षु निवास करते थे। दसवीं से तेरहवीं शती तक इन क्षेत्रों में बौद्ध धर्म ने खूब उन्नति की। इस समय राजाओं के अतिरिक्त मंत्रियों तथा जन सामान्य ने भी बौद्ध धर्म अंगीकार किया। कवीन्द्रारिमथन (राजेन्द्रबर्मा द्वितीय तथा जयबर्मा पंचम का मंत्री)ने अनेक बौद्ध मूर्तियों को स्थापित करवाया था साथ ही कीर्ति पण्डित कोभी इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म फैलाने का श्रेय दिया जाता है। साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इसी मंत्री ने महाविभाग तथा तत्त्व संग्रह की टीकाएँ बाहर से मँगायी थी।

कम्बोज में जयबर्मा के शासन काल में बौद्ध धर्म राजधर्म बन चुका था। फीमानवस के अवशेषों में एक लेख प्राप्त हुआ है, उसमें शिव , ब्रह्मा एवं बौद्ध तीनों का एक साथ उल्लेख है। इसी स्थान पर संस्कृत एवं ख्मेर दोनों भाषाओं में एक लेख और मिला है–

cãey f'koLdU/k fo".k'kk[k lukruAA

o{kjkt egkHkkX; lokJ; Qyçn% AA

(अर्थात्, हे पवित्र बोधिवृक्ष, तेरी जड़ें ब्रह्मा हैं, तेरा तना शिव जी हैं और तेरी शाखाएँ विष्णु जी हैं तुझ पर कभी बिजली न गिरे, तुझको कुठार काट न सके)। चा–ता–क्वान नामक चीन यात्री1296 ई० में कम्बोज पहुँचा। उसने लिखा है–'' भिक्षु लोग सिर मुड़ाते हैं और पीले कपड़े पहनते हैं। ये अपना दायाँ कन्धा नंगा रखते हैं, नंगे पैर चलते हैं। इनके मन्दिरों की छतें खपरैल की हैं। इनके पूजा स्थलों में घन्टे, झण्डे, नगाड़े आदि कुछ भी नहीं हैं। ये दिन में केवल एक बार भोजन करते हैं। मांस–मछली तो खाते हैं पर शराब नहीं पीते। बुद्ध के लिए भी मांस की भेंट देते हैं। ताड़पत्रों पर लिखी पुस्तकों का पाठ करते हैं।"उपरोक्त विवरण के आधार पर संक्षिप्त रूप से हम कहा सकते हैं कि सुवर्णद्वीप परिक्षेत्र बुद्ध, धर्म और संघ का प्रसार भारत के समान अपनी जड़ें बड़ी मजबूत कर चुका था।जो वर्तमान समय में भी इन क्षेत्रों में दिखाई देता है।

12-5 lkjk'k

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि सुवर्णद्वीपतथा सुवर्णभूमि के क्षेत्रों में बौद्ध धर्म अन्य भारतीय धर्मों के साथ व्यापारिक गतिविधियों में संलिप्त व्यापारियों के साथ पहुंचा, जिसकी जानकारी विभिन्न साहित्यिक स्रोतों से भी प्राप्त होती है।भारतीय भूमि से राजा अशोक के समय में आचार्य उपगुप्त (मोद्गलिपुत्र तिष्य) के नेतृत्व में विदेशों में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए सोण और उत्तर नाम के स्थविरों को सुवर्णभूमि भेजा गया था।जिसके फलस्वरूप उन क्षेत्रों में बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ।उदाहरण के तौर पर कम्बोज के राजाओं व मंत्रियों को देखा जा सकता है जिंहोने न केवल बौद्ध धर्म ग्रहण कर शांति के मार्ग पर अपने को स्थापित करने का समुचित प्रयास किया बल्कि अनेक बौद्ध मंदिरों व बौद्ध मूर्तियों का निर्माण भी करवाया जिनके प्रमाण आज भी इन क्षेत्रों में देखे जा सकते हैं।अतः बौद्ध धर्म का जो बीज भारतीयों द्वारा इन क्षेत्रों में बोया गया था वह अंकुरित हो कर 13वीं शताब्दी तक वट वृक्ष के रूप में परिवर्तित हो गया तथा वर्तमान समय में उसी वट वृक्ष की मजबूत शाखाएँ सशक्त रूप से गड़ी हुई दिखाई देती हैं।यद्यपि21 वीं शताब्दी में, सुवर्णद्वीप के देशों ने आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण का अनुभव किया।इसके परिणामस्वरूप, बौद्ध धर्म को कुछ चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जैसे कि धर्मनिरपेक्षता का उदय और पश्चिमी विचारों का प्रभाव आदि।इन चुनौतियों का सामना करने के लिए, बौद्ध धर्म ने पुनरुत्थान और सुधार का अनुभव किया।नए बौद्ध आंदोलन और संगठन उभरे जो बौद्ध शिक्षाओं को आधुनिक जीवन के अनुकूल बनाने और समाज में बौद्ध मूल्यों को बढ़ावा देने का प्रयास करते हैं।सुवर्णद्वीप से बौद्ध धर्म दुनिया के अन्य हिस्सों में भी फैल गया है।आज, लाखों लोग दुनिया भर में बौद्ध धर्म का पालन करते हैं, और सुवर्णद्वीप बौद्ध धर्म के लिए एक महत्वपूर्ण केंद्र बना हुआ है। सुवर्णद्वीप में बौद्ध धर्म का इतिहास समृद्ध और विविध है। यह धर्म इस क्षेत्र की संस्कृति, कला, साहित्य और सामाजिक जीवन को गहराई से प्रभावित करता रहा है।

12-4 cks/k iz'u

प्रश्न संख्या 1: सुवर्णद्वीप में बौद्ध धर्म का प्रसार एवं विकास किस प्रकार हुआ व्याख्या कीजिए ?

.....

.....

.....

प्रश्न संख्या 2: बौद्ध ग्रंथों में दी गई जानकारी के आधार पर प्राचीन काल में भारत और सुवर्णद्वीप के बीच के संबंधों को समझाइए ?

.....

.....

.....

प्रश्न संख्या 3: बौद्ध धर्म ने सुवर्णद्वीप के विभिन्न देशों की संस्कृति एवं परंपरा को किस प्रकार प्रभावित किया व्याख्या कीजिए ?

.....

.....

.....

प्रश्न संख्या 4: सुवर्णद्वीप की भौगोलिक स्थिति की संक्षेप में चर्चा कीजिए?

.....

.....

.....

12-5 lanHkZ xzaFk

1. Berkwitz, Stephen C, 2012- ^^the EÛpansion of Buddhism in South and Southeast Asia-^^

In Dynamics in the History of Religions between Asia and Europe, pp- 223 & 234- Brill

2. Gupta, Rajneesh Kumar, and Alok Kumar Verma, 2021- ^^the Spread of Buddhism and Peace in Southeast Asia-^^ Heritage of Nusantara, International Journal of Religious Literature and Heritage 10, no- 2, 220& 247
3. Majumdar R-C,1944- Hindu Colonies in Far East, General printers Publishers Limited, Calcutta
4. Swearer,Donald K, 2013, ^^Buddhism in Southeast Asia-^^ In the Religious Traditions of Asia, pp- 119&141- Routledge
5. Verma, Alok Kumar, 2021 ^^Spread of Buddhism and Peace in Southeast Asia-^^ Journal of Asia Pacific Studies 6, no- 2-
6. Vidyalankar, Satyketu, 2015(ed): Dakshin Purvi aur Dakshini Asia mein Bharatiya Sanskriti, Shree Saraswati Sadan],New Delhi

bdkbZ&13 JhfoT;e~ck}/kZ

bdkbZ dh :ijs[kk

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 श्रीविजय की स्थिति

13.3 श्रीविजय क्षेत्र की महत्ता

13.4 श्रीविजय में बौद्ध धर्म

13.5 सारांश

13.6 बोध प्रश्न

13.7 संदर्भ ग्रंथ

13-0 çLrkouk

भारतीय संस्कृति की वैविध्य परंपरा दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर है। दक्षिण–पूर्व एशिया के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक जीवन में भारतीय सांस्कृतिक परंपरा को महसूस किया जा सकता है। जैसा कि विदित है दक्षिण–पूर्व एशिया में अवस्थित इंडोनेशिया को सात भौगोलिक क्षेत्रों मे विभाजित किया गया है, जिनमें सुमात्रा पश्चिमी इंडोनेशिया के सुंडाद्वीप समूह में से एक है। सातवीं शताब्दी में सुमात्रा में मेलायू साम्राज्य की स्थापना के साथ–साथ बौद्ध परंपराक प्रतिबिंब व्यापक रूप से इस क्षेत्र में देखे जा सकते हैं। इस साम्राज्य के विषय में जानकारी का महत्त्वपूर्ण स्रोत चीनी ग्रंथ "तांगकी नई किताब" है जिस सोंग राजवंश के विद्वानों की एक टोली ने संकलित किया था तथा इसके लेखन का नेतृत्व ओयांगि शयू और सोंगक्यु द्वारा किया गया था, इसके अतिरिक्त चीनी बौद्ध भिक्षुओं यीजिंग के संस्मरण भी इसके सन्दर्भ में व्यापक जानकारी प्रदान करते हैं।समय के साथ आगे बढ़ते हुए इस क्षेत्र को श्रीविजय द्वारा अपने आप में समाहित कर लिया गया था, जो एक बौद्ध थैला सेक्रेट्रीक (मुख्य रूप से समुद्री क्षेत्रों वाला राज्य) साम्राज्य था, जिसमें लगभग दक्षिण पूर्व एशिया के अधिकांश हिस्सों को प्रभावित किया।श्रीविजया सातवीं से ग्यारहवी शताब्दी ईस्वी तक बौद्ध धर्म के विस्तार का एक महत्वपूर्ण केंद्र बन गया था। समुद्री व्यापारिक क्षेत्रों में अवस्थिति के कारण श्रीविजया को न केवल आर्थिक सहयोग मिला, बल्कि राजनैतिक और सामरिक मार्ग के द्वार भी खुले जिसके कारण श्रीविजया एक सशक्त साम्राज्य के रूप में परिणित हुआ तथा राजनैतिक सशक्तिकरण के फलस्वरूप यह बौद्ध धर्म के एक आधारभूत केंद्र के रूप में अपने को स्थापित करने में सफल हुआ।

13-1 mnns';

सुमात्रा में सातवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म की स्थापना के उपरांत श्रीविजया द्वारा उसे अपने साम्राज्य में समाहित कर लिया गया तथा संपूर्ण द्वीप में श्रीविजया ने अपने सामरिक बल के आधार पर विजय प्राप्त की। श्रीविजया भी बौद्ध धर्म से अत्यंत प्रभावित था जिसका संपूर्ण इंडोनेशिया (वर्तमान) में ग्यारहवी शताब्दी तक बौद्ध धर्मका प्रचार–प्रसार हुआ तथा संपूर्ण क्षेत्र बौद्ध धर्म के विकास के केंद्र के रूप में स्थापित हुआ। साम्राज्य विस्तार की लोलुपता के कारण श्रीविजया का भारत के चोल साम्राज्य से सामना हुआ जिसमें उन्हें पराजय का सामना करना पड़ा। फलस्वरूप बारहवीं शताब्दी के अंत तक श्रीविजया एक छोटे से राज्य तक सिमट कर रह गया। यद्यपि बौद्ध धर्म के प्रसार के फलस्वरूप यहाँ आध्यात्मिक व ज्ञानात्मक विकास हुआ। समय के साथ इंडोनेशिया में इस्लाम का प्रसार भी शनैः–शनैः और अप्रत्यक्ष रूप से प्रारंभ हुआ जिसमें सुमात्रा प्रमुख था। स्रोतों से ज्ञात होता है कि तेरहवी शताब्दी के अंत तक राज्य गठन के समय यह सामुद्रिक परिक्षेत्र वाला साम्राज्य इस्लामिक अनुयायी राजा के हाथों में चला गया। अतः प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य यह समझना है कि संपूर्ण क्षेत्र में बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार किस प्रकार आम जनमानस को आध्यात्मिकता के मार्ग पर अग्रसर किया तथा 13वीं शताब्दी में इस्लामिक साम्राज्य के स्थापना के फलस्वरूप किस प्रकार वर्तमान समय में भी यहाँ बौद्ध धर्म के अनुयायी अपने आध्यात्मिक व सांस्कृतिक ज्ञान की अलख जगाते हुए अनवरत निर्बाध रूप से बौद्ध धर्म को पुनर्स्थापित करते

हुए विश्व को शांति का संदेश देने का सार्थक प्रयास कर रहे हैं।

13-2 Jhfot ; dh fLFkfr

वर्तमान समय में सुमात्रा इंडोनेशिया के सुंडा द्वीपसमूह क्षेत्र के अंतर्गत आता है जो विश्व का छठा सबसे बड़ा द्वीप है।हिन्द महासागर में स्थित होने के कारण यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही व्यापार–वाणिज्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा है तथा भारतीय व चीनवासी इन क्षेत्रों में जाया आया करते थे।श्रीविजय एक महत्त्वपूर्ण समुद्री मार्ग में स्थित था तथा उस क्षेत्र में खनिज संसाधनों की उपलब्धता ने इसके आर्थिक विकास में सहायता प्रदान की ।जिसके फलस्वरूप आर्थिक समृद्धता के बल पर श्रीविजय ने लगभग सम्पूर्ण दक्षिण–पूर्व एशिया में सामरिक सफलता प्राप्त की।सामरिक विजय के क्रम में उनका सामना भारतीय चोल शासकों से हुआ जिनकी नव सेना बहुत उत्कृष्ट कोटि की थी। अतः चोलों के पराक्रम के सामने श्रीविजय का शासक पराजित हुआ जिसके बाद श्रीविजय का साम्राज्य संकुचित हो गया।

13-3 Jhfot ; {k= dh egÙkk

श्रीविजय 7वीं से 12वीं शताब्दी तक, एक शक्तिशाली साम्राज्य था जिसने मलयद्वीप समूह (आधुनिक इंडोनेशिया, मलेशिया और फिलीपींस के कुछ हिस्सों) के बड़े हिस्से पर शासन किया। यह हिंद महासागर में व्यापार और सांस्कृतिक आदान–प्रदान का एक प्रमुख केंद्र रहा था। यदि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखे तो श्रीविजय की उत्पत्ति 7वीं शताब्दी में सुमात्रा द्वीप पर हुई थी। 8वीं–9वीं शताब्दी में श्रीविजय ने मलय प्रायद्वीप, जावा, बाली और बोर्नियो के कुछ हिस्सों सहित अपने क्षेत्र का विस्तार किया। 10वीं–11वीं शताब्दी तक, श्रीविजय अपने सुनहरे युग में प्रवेश कर चुका था, और एक समृद्ध व्यापारिक साम्राज्य और बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण केंद्र बन गया था। श्रीविजय अपनी शक्तिशाली नौसेना के लिए भी जाना जाता था, जिसने व्यापार मार्गों को नियंत्रित करने और अपने प्रतिद्वंद्वियों को हराने में मदद की। परंतु 13वीं शताब्दी में, श्रीविजय साम्राज्य सिंहासन के लिए संघर्षों और क्षेत्रीय प्रतिद्वंद्वियों के उदय के कारण कमजोर हो गया। धीरे–धीरे, श्रीविजय ने मजाहिरत साम्राज्य और सियाम साम्राज्य जैसे पड़ोसी शक्तियों के सामने अपने क्षेत्रों को खो दिया। 14वीं शताब्दी तक, श्रीविजय व्यावहारिक रूप से अस्तित्व में नहीं रहा था।

व्यापारिक दृष्टि से देखे तो श्रीविजय मसालों, सोने, चांदी, चीनी मिट्टी की चीजें और कपास सहित विभिन्न वस्तुओं के व्यापार का एक प्रमुख केंद्र रहा है। श्रीविजय ने चीन, भारत, मध्यपूर्व और यूरोप के साथ व्यापारिक संबंधों को भी बनाए रखा। वही श्रीविजय बौद्ध धर्म और संस्कृतिका भी एक महत्वपूर्ण केंद्र था। नालंदा और विक्रमशिला जैसे भारतीय विश्वविद्यालयों से बौद्ध विद्वान श्रीविजय गए और बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। श्रीविजय हिंद महासागर में एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरी और इसने व्यापार, संस्कृति और कला के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कला और स्थापत्य के क्षेत्र में, श्रीविजय अपनी भव्य मूर्तियों, मंदिरों और स्तूपों के लिए जाना जाता था। बोरोबुदुर मंदिर (इंडोनेशिया) और कदिर मंदिर (मलेशिया) श्रीविजय कला और स्थापत्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

13-4 Jhfot ; e ck) /ke

श्रीविजय साम्राज्य ने मलयद्वीप समूह और उससे आगे के क्षेत्रो पर गहरा प्रभाव डाला। इसकी विरासत आज भी देखी जा सकती है। मलय भाषा, जो इंडोनेशिया, मलेशिया, ब्रुनेई और सिंगापुर की आधिकारिक भाषा है, श्रीविजय भाषा से विकसित हुई है। श्रीविजय संस्कृति ने मलय, जावानी और थाई संस्कृतियों को भी प्रभावित किया तथा ये श्रीविजय कला और स्थापत्य शैलियाँ पूरे क्षेत्र में पाई जाती हैं। श्रीविजय लंका और दक्षिणी भारत से बंगाल की खाड़ी पार करने वाले जहाजो के मार्ग में पड़ने से सामुद्रिक व्यापार में श्रीविजय का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। सुमात्रा में सबसे पुराना राजनीतिक केन्द्र श्रीविजय था , जो पलेम्बङके नाम से कपर नदी के तट पर आज भी मौजूद है। यह नगर चौथी शताब्दी से पूर्व स्थापित हो चुका था। सातवीं शताब्दी में इसकी शक्ति और भी बढ़ी, जबकि इसने दक्षिण में हरी नदी के तट पर अवस्थित मलबू (आधुनिक यंवी) पर अधिकार कर लिया और साथ ही पास के वंकाद्वीप को भी ले लिया। 684 ई० में बौद्ध राजा श्रीजयनाग श्रीविजय के शासक थे। 686 ई० में उसने जावा विजय के लिये सेना भेजी। इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्तकाल में श्रीविजय बौद्ध धर्म का केन्द्र बन चुका था। श्रीविजय हिन्द महाद्वीप समूह में संस्कृति और विद्या का केन्द्र रहा। चीनी

यात्री इंत्सिग 688– 695 ई० में सात साल यहां रहकर पढ़ता रहा। उसके लिखे अनुसार चीन से भारत जाने वाले भिक्षु श्रीविजय में ठहर कर संस्कृत पढ़ा करते थे। इसी श्रीविजय ने पीछे जाबा विजय की और अपने शैलेन्द्र वंश की अद्‌भुत कृतियों बरोबुदुर आदि का निर्माण भी किया।

जावा और सुमात्रा दोनों के बारे में सबसे प्रारंभिक लिखित जानकारी चीनी तीर्थयात्रियों की डायरियों से मिलती है, जिन्होंने भारत तक पहुंचने या वापस लौटने के लिए समुद्री मार्ग का उपयोग किया और आगे की यात्रा के लिए उचित परिस्थितियों की प्रतीक्षा करते हुए द्वीपों पर रुक गए। 414 ई. में, फाह्यान ने जावा या सुमात्रा में पांच महीने दुखी होकर बिताए, जहाँ उन्होंने पाया कि ''बुद्ध के बारे में जानने या बताने वाले इस समय बहुत कम लोग थे"। जबकि इत्सिंग के वृत्तांतों से एक बहुत अलग तस्वीर उभरती है जिन्होंने सातवीं शताब्दी के अंत में सुमात्रा की यात्रा की। जंहा उन्होने भारत आने से पहले श्रीविजय में संस्कृत व्याकरण का अध्ययन करने में लगभग आधा साल बिताया और मलयु में दो महीने बिताए। अपनी तीर्थयात्रा से लौटते हुए, वह एक बार फिर श्रीविजय में रुके, अपने द्वारा एकत्र किए गए ग्रंथों का अनुवाद किया और अपने स्वयं के संस्मरण भी लिखे।उन्होंने 689 ईस्वी में, उन्होंने चीन की एक त्वरित यात्रा की और फिर श्रीविजय लौट आए, जहां वह अन्य छह वर्षों तक रहे। ऐसा प्रतीत होता है किसातवीं शताब्दी के अंत तक श्रीविजय बौद्ध शिक्षा के एक प्रसिद्ध केंद्र के रूप में स्थापित हो चुका था। स्रोतों से ज्ञात होता है कि यहाँ 1000 से अधिक बौद्ध पुजारियों की संख्या अधिक थी, जिनका कार्य अध्ययन व अध्यापन, ध्यान –योग तक केन्द्रित था।ऐसा ज्ञात होता है कि श्रीविजय साम्राज्य भारत सदृश्य प्राचीन विश्वविद्यालयीय परंपरा का अनुसरण किया जाता था।इसका प्रमुख कारण भारतीय संस्कृति और ज्ञान का दक्षिण–पूर्व में प्रभाव को माना जा सकता है साथ ही साथ उस समय तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला आदि अनेक विश्व प्रसिद्ध शिक्षा के केंद्र भारत में विद्यमान थे जंहा अन्य देशों से भी लोग शिक्षा ग्रहण करने आते थे।इसी से प्रभावित होकर इन क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपरा प्रचलित हुई जो अबाध रूप से लंबे समय तक चलती रही जिनमे बौद्ध अध्ययन महत्त्वपूर्ण था।ऐसा ज्ञात होता है कि यदि कोई चीनी अध्ययन हेतु भारत की यात्रा आरंभ करता था तो वह यहां एक या दो साल रह कर अध्ययन करता था और उचित नियमों (अध्ययन संबंधी नियम) का अभ्यास करता था और फिरभारत आता था जिससे पता चलता है कि श्रीविजय (सुमात्रा) एक बड़े बौद्ध केंद्र के रूप में उभरा।

श्रीविजय महायान बौद्ध धर्म का गढ़ था और ग्यारहवीं सदी तक अपनी विद्या के लिये प्रसिद्ध था। सुवर्णद्वीपीय धर्मकीर्ति के पांडित्य की कीर्ति सुनकर तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार करने वाले विक्रमशिला के आचार्य दींपकर श्रीज्ञान (681–1054 ई०) बारह वर्ष उनके पास पढ़ते रहे। उस समय उत्तरी भारत में वज्रयान (घोर तांत्रिक) बौद्ध धर्म का प्रचार था। बौद्ध धर्म, प्रत्येक देश में अपने विनाश से पूर्व इसी रूप को धारण करता रहा। वह मृत्यु से वहीं बच पाया, जहाँ व्रजयान का स्थान अधिक बुद्धिवादी बौद्ध धर्म ने स्वीकार किया, जैसा कि कंबुज, स्याम और बर्मा हुआ 1347 ई०के एक शिलालेख में राजा आदित्य बर्मा की प्रेरणा से आचार्य धर्मशेखर ने अमोघपाश (अवलोकितेश्वर) की मूर्ति स्थापित की थी, इसके लेख में उदय बर्मा की तांत्रिक सिद्धि का भी वर्णन है। लेख इस प्रकार है–

''l)e't ol cn/kuk Re efgek lkHkkX; okU'kh yokUk ¼1½
'kkL=Kk lfo'k) ;kx ygjh 'kkHkk çoh)k lr
mn; io r 'kkfHkk r : ifr mn;nHkfr uj 'oj uk;d A
mn; ofj;ykre/;r mn; lUnjdhfr egh ry A

''इस संस्कृत शिलालेख में राजा उदय बर्मा का बौद्ध सिद्धान्तों में निष्णात ही नहीं, बल्कि सारी सिद्धियों का स्वामी बतलाया गया है। किन्तु उदय बर्मा के मंत्र शास्त्र–निष्णात होने से पहले ही श्रीविजय पर इस्लाम का आक्रमण हो चुका था। मारकोपोलो 1292 ई० में इस द्वीप में आया था। वह इसे लघु जावा लिखता है। उस समय वहाँ आठ राज्य थे, जिनमें से अर्थात्पेरलक (उत्तर–पूर्व), लमूरी , अर्थ (उत्तर–पश्चिम), प से तथा समुद्र में वह स्वयं गया था। उसने लिखा है–"इस राज्य में इतने अधिक मुसलमान व्यापारी आते रहते हैं, कि उन्होंने यहाँ के निवासियों को मुहम्मद के धर्म का अनुयायी बना लिया है"। मारकोपोलो के समय केवल इस्लामी राज्य था, किन्तु कुछ समय बाद समुद्र में एक दूसरा इस्लामी राज्य तैयार हो गया। इसी छोटे से समुद्र राज्य ने सारे द्वीप को श्रीविजय नाम दिया। 1345–46 ई० में अरब यात्री इब्नबतूता का समुद्र के शासक सुल्तानम लिक जाहिर ने स्वागत किया था। इब्नबतूता ने राज्य का नाम समुतर लिखा है, जिसे यूरोपियनों ने सुमात्रा

(श्रीविजय) बना दिया। इब्नबतूता के कथनानुसार सुल्तान को अपने पड़ोसी का फिर (हिन्दू) राजाओ से लड़ते रहना पड़ता था। व्यापार में मलाया के स्थान अब पसे (सुमात्रा) ने ले लिया था और वही तब तक भारी व्यापारिक बन्दरगाह रहा, जब तक कि मलक्का की स्थापना नहीं हो गई। पसे, समुद्र, पेरलक जैसे प्रधान बन्दरगाहों के धनाढ्य ईरानी तथा गुजराती मुसलमान व्यापारियों ने ही सुमात्रा में इस्लाम का प्रचा रकिया ।

13-5 lkjk'k

श्रीविजय एक 7वीं शताब्दी मे एक प्रसिद्ध बौद्ध केंद्र के रूप में स्थापित होता हुआ दिखाई देता है जिसकी जानकारी हमे चीनी यात्री इत्सिंग के विवरण से प्राप्त होती है क्योंकि वह उल्लेख करता है कि जब वह श्रीविजय पहुँचा तो वहाँ बौद्ध धर्म था। अतः इसका आशय यह है कि बौद्ध धर्म का प्रचार पहले से रहा होगा और इस समय तक अपनी ख्याति प्राप्त कर चुका था। इसका प्रमुख कारण श्रीविजय की व्यापारिक मार्ग पर स्थिति तथा दूसरा प्रमुख कारण भारतीय व्यापारियों का अधिकाधिक संख्या में व्यापार– वाणिज्य हेतु आगमन। क्योंकि भारतीय संस्कृति व परम्पराओं से प्रभावित होकर वे इस ओर उन्मुख हुये तथा सुमात्रा में बौद्ध धर्म स्थापित हुआ जो 13वीं शताब्दी तक निर्वाध रूप से फलता फूलता हुआ आगे बढ़ता रहा परंतु 13वीं शताब्दी में इस्लाम के प्रभाव के कारण यहाँ बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार में कमी दिखाई देती है। यद्यपि यंहा बौद्ध धर्म के मानने वाले आज भी विद्यमान हैं जो अपनी प्राचीन परंपरा को सँजोते हुए बुद्ध के मार्ग पर अनवरत आगे बढ़ रहे हैं।

13-6 ck/k ç'u

प्रश्न संख्या 1: सुमात्रा (श्रीविजय) में भारतीय बौद्ध धर्म किस प्रकार पहुंचा ।चर्चा कीजिये ?

.....

.....

.....

प्रश्न संख्या 2: क्या भारतीय सांस्कृतिक व धार्मिक परंपरा का श्रीविजय के जन जीवन पर पड़ा ।टिप्पणी कीजिए ?

.....

.....

.....

प्रश्न संख्या 3: श्रीविजय की महत्ता पर प्रकाश डालिए?

.....

.....

.....

प्रश्न संख्या 4: श्रीविजय की भौगोलिक स्थिति ने उसे चंहुमुखी विकास में लाभ प्रदान किया ।क्या आप सहमत हैं ?

.....

.....

.....

13-7 lanHkZ xzaFk

1. Agrawal, Pramod- Early Hindu&Buddhist Kingdoms of Indonesia- StoryMirror Infotech Pvt Ltd, 2022
2. Brown, Iem- ^^the revival of Buddhism in modern Indonesia-^^ In Hinduism in Modern Indonesia, pp- 45&55- Routledge, 2005

3. Majumdar R-C- : 1944- Hindu Colonies in Far East, General printers Publishers Limited, Calcutta
4. Rizzo, Roberto- Buddhism in Indonesia% A Study of Multiple Revivals- Taylor & Francis, 2024
5. Sastri] K- A-Nilkanth % 1940- ^^ŚRĪ VIJAYA-^^ Bulletin de l^École française d^EÛtrême&Orient 40] no- 2
6. Steenbrink, Karel- ^^Buddhism in Muslim Indonesia-^^ Studia Islamika 20, no- 1 (2013)
7. Vidyalankar, Satyketu : 2015(ed-): Dakshin Purvi aur Dakshini Asia meinBharatiya Sanskriti] Shree Saraswati Sadan] New Delhi
8. Swearer, Donald K- ^^Buddhism in Southeast Asia-^^ In the Religious Traditions of Asia, pp- 119&141- Routledge, 2013

bdkbi&14 tkok e ck) /kei

bdkbi dh :ijkk

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 जावा की अवस्थिति

14.3 जावा में बौद्ध धर्म

14.4 जावा में वर्तमान परिदृश्य

14.5 जावा के प्राचीन मंदिर व चौत्य

14.5.1 दिएंग के मन्दिर

14.5.2 चण्डी कालसन

14.5.3 चण्डी सरी

14.5.4 चण्डी सेवू

14.5.5 चंडी मेन्दुत का मन्दिर

14.5.6 चण्डी लर जोंग्रङ्ग

14.6 सारांश

14.7 बोध प्रश्न

14.8 संदर्भ

14-0 çLrkouk

पांचवीं सदी के प्रारम्भ में चीनी यात्री फाइयान भारत से वापस जाते हुए जावा गए, वहाँ उन्होंने पाया की जावा में पौराणिक धर्म का वर्चस्व है। वहाँ बौद्ध धर्म के प्रचार का सूत्रपात गुणबर्मा द्वारा किया गया। यद्यपि गुणबर्मा के प्रभाव से जावा की राजमाता तथा राजा ने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया था, पर अभी भी वह जावा का प्रधान धर्म नहीं बना था। पौराणिक हिन्दू धर्म वहाँ फलता फूलता रहा, यद्यपि उसके साथ–साथ बौद्ध धर्म का भी वहाँ प्रचार होता रहा। शुरू में जावा तथा उसके समीपवर्ती द्वीपों में बौद्धों के थेरवाद सम्प्रदाय के सर्वास्तिवादी निकाय का प्रचार हुआ। परंतु आठवीं सदी में वहाँ महायान सम्प्रदाय का प्रवेश हुआ, और उसने शीघ्र ही वहाँ से थेरवाद का अन्त कर दिया। देखा जाए तो अब इन द्वीपों में पौराणिक हिन्दू धर्म और महायानी बौद्ध धर्म एक साथ निर्वाद रूप से चलते रहे, और उनमें विरोध या विद्वेष के कोई संकेत नहीं मिलते। यहां शैलेन्द्र वंश के राजा बौद्ध धर्म के अनुयायी थे, जिनके शासनकाल में बौद्ध धर्म ने वास्तविक अभ्युदय देखा। जिसकी व्यापक चर्चा इस इकाई में किए जाने का प्रयास किया जाएगा।

14-1 mnns';

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि जावा में बौद्ध धर्म का प्रचार प्रसार किस प्रकार हुआ और कैसे समय के साथ बौद्ध धर्म दक्षिण–पूर्व एशिया का प्रमुख धर्म बन गया। तृतीय शताब्दी ईस्वी तक, बौद्ध धर्म ने थाईलैंड, म्यांमार, कंबोडिया तक की यात्रा की तथा आगे अनवरत बढ़ता हुआ जावा जैसे देशों में प्रवेश किया जंहा उसे अनेक स्थानीय राजाओं का समर्थन भी प्राप्त हुआ। इन शासकों ने बौद्ध मठों का निर्माण करवाया, भिक्षुओं को संरक्षण दिया और बौद्ध शिक्षा को बढ़ावा दिया। इन दिनों भारत में नालंदा विश्वविद्यालय (4वीं–12वीं शताब्दी ईस्वी) बौद्ध शिक्षा का एक प्रमुख केंद्र था, जो विद्वानों और भिक्षुओ को आकर्षित करता था। यह विश्वविद्यालय बौद्ध ग्रंथों के अध्ययन और अनुवाद के लिए प्रसिद्ध था, और इसने बौद्ध दर्शन और विचारधारा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया (इकाई 12 का उद्देश्य देखें)। यद्यपि वर्तमान समय

में बौद्ध धर्म जावा में एक अल्पसंख्यक धर्म के रूप में अपने अस्तित्व हेतु संघर्ष कर रहा है।अतः प्रस्तुत इकाई के अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि जो धर्म 5वीं–6वीं शताब्दी में जावा में अपने को स्थापित किया, शासकों का संरक्षण प्राप्त करते हुए फलता दृ फूलता रहा तथा लगभग 13वीं–14वीं शताब्दी तक एक अल्पसंख्यक धर्म के रूप में तब्दील होने की दिशा में कैसे आगे बढ़ा क्योंकि आज यह धर्म जावा में कुछ सीमित लोगों तक मात्र सिमिट कर रह गया है।

14-2 tkok dh vofLFkfr

वर्तमान जावा देश, इंडोनेशिया द्वीप का एक भाग है जो मलेशिया और सुमात्रा के दक्षिण–पूर्व में, बोर्नियो (कलीमंतन) के दक्षिण में और बाली के पश्चिम में स्थित है। जावा में इंडोनेशिया की लगभग आधी आबादी निवास करती है। जावा देश की राजधानी जकार्ता (पूर्व में बटाविया) है, जो इंडोनेशिया का सबसे बड़ा शहर भी है। जावा पूर्व से पश्चिम तक 1,064 किमी लंबा है और इसकी चौड़ाई इसके केंद्र मे लगभग 100 किमी से लेकर प्रत्येक छोर के पास 160 किमी से अधिक है। यहाँ एक अनुदैर्ध्य पर्वत श्रृंखला, जो कई ज्वालामुखियों से घिरी हुई है, इस द्वीप की रीढ़ के साथ पूर्व से पश्चिम तक चलती है और चूना पत्थर की चोटियों और तराई क्षेत्रों से घिरी हुई है। जावा अत्यधिक ज्वालामुखीय है, फिर भी गंभीर विस्फोट कम होते हैंय इसके 112 ज्वालामुखियों में से केवल 35 सक्रिय हैं। सबसे ऊँचा ज्वालामुखी माउंट सेमेरू है, जिसकी ऊंचाई 12,060 फीट (3,676 मीटर) है।

जावा की भौगोलिक स्थिति (स्रोत : गूगल मानचित्र)

14-3 tkok }hi esa cks) /keZ bfrgkl] çHkko vkj fojkl r

जावा द्वीप (इंडोनेशिया) में, बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। यह धर्म हिंदू धर्म के साथ द्वीप पर प्रमुख धर्मों में से एक रहा, और इसने कला, संस्कृति, वास्तुकला को भी गहराई से प्रभावित किया। जैसा कि पिछली इकाइयों में उल्लेख किया जा चुका है कि भारतीय व्यापारियों और भिक्षुओं के माध्यम से, बौद्ध धर्म का आगमन दक्षिण–पूर्व एशिया के अन्य देशों के साथ दृ साथ जावा में 5वीं शताब्दी के आसपास हुआ। जावा के शासकों ने आठवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म को संरक्षण देते हुए मंदिरों का निर्माण करवाना प्रारम्भ किया और भिक्षुओं को संरक्षण भी प्रदान किया। सर्वविदित है कि आठवीं शताब्दी में, बोरोबुदुर मंदिर का निर्माण किया गया, जो दुनिया के सबसे बड़े बौद्ध स्मारकों में से एक है। यह मंदिर महायान बौद्ध धर्म का प्रतिनिधित्व करता है और बौद्ध धर्म के महत्व का प्रतीक है।

अगर धर्म के आधार पर जावा को देखें तो जावा में, बौद्ध धर्म और हिंदू धर्म ने शांतिपूर्वक सह–अस्तित्व

में रहते हुए एक दूसरे को प्रभावित किया है। उदाहरण के तौर पर कुछ मंदिरों में, जैसे कि प्रम्बानन मंदिर परिसर में दोनों धर्मों के तत्वों को देखा जा सकता है। परंतु 14वीं शताब्दी तक, हिंदू धर्म आहिस्ता आहिस्ता जावा में प्रमुख धर्म बन गया। बौद्ध धर्म ने जावानी कला और स्थापत्य को गहराई से प्रभावित किया। मूर्तियों, मंदिरों और नक्काशीदार राहतों (आलय) में बौद्ध देवताओं और कहानियों को दर्शाया गया है। जावानी साहित्य में भी बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। रामायण और महाभारत जैसे हिंदू महाकाव्यों को बौद्ध धर्मग्रंथों के साथ अनुकूलित किया गया था। यहां बौद्ध मठ शिक्षा के महत्वपूर्ण केंद्र रहें हैं, और उन्होंने न केवल धार्मिक शिक्षा प्रदान की, बल्कि भाषा, दर्शन और कला में भी शिक्षा प्रसारित की। हालांकि 15वीं शताब्दी में, इस्लाम का विस्तार होने लगा, और धीरे–धीरे बौद्ध धर्म कमजोर हो गया। भले ही आज बौद्ध धर्म जावा में एक अल्पसंख्यक धर्म है, लेकिन यह अभी भी द्वीप के समृद्ध इतिहास और संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसके समृद्ध इतिहास को आज भी यहां के धरोहरों में देखा जा सकता है, जैसे किय बोरोबुदुर मंदिरः 8वीं शताब्दी का महायान बौद्ध मंदिर, जो दुनिया का सबसे बड़ा बौद्ध स्मारक है।

(स्रोत : गूगल इंटरनेट)

प्रेम्बानन मंदिर परिसरः 9वीं और 10वीं शताब्दी के हिंदू और बौद्ध मंदिरों का समूह।

अगर हम बौद्ध धर्म के योगदान को सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो पाते हैं कि बौद्ध मठ शिक्षा के महत्वपूर्ण केंद्र थे, जिन्होंने धार्मिक शिक्षा के साथ–साथ कला, भाषा और दर्शन में भी शिक्षा प्रदान की। आठवीं और नौवी शताब्दियों में जावा में अनेक विशाल बौद्ध मन्दिरों व चौत्यों का निर्माण हुआ, जिनमें बरोबदूर के अतिरिक्त चण्डी कालसन, चण्डी सरी और चण्डी सेबू आदि के मन्दिर भी इसी काल में बने। शैलेन्द्र राजाओं की राजधानी श्रीविजय (सुमात्रा में) थी। यह नगरी बौद्ध धर्म का महत्त्वपूर्ण केन्द्र थी, और चीन के बौद्ध भारत आते समय और भारत के बौद्ध चीन जाते समय प्रायः वहाँ ठहरा करते थे। सातवीं सदी के उत्तरार्ध में इत्सिंग ने वहाँ अनेक वर्ष बिताये थे,और वहाँ रहकर संस्कृत भाषा व बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया था । इसी समय के लगभग कांची के निवासी और नालन्दा के आचार्य धर्मपाल ने दक्षिण पूर्वी एशिया के इस क्षेत्र की यात्रा की थी। ग्यारहवीं सदी में मगध का प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान अतीश भी वहाँ गए थे।

इन तथ्यों को स्पष्ट समझने हेतु हमें बौद्ध धर्म के जावा में अभ्युदय को समझना होगा। पांचवीं सदी के प्रारम्भ में चीनी यात्री फाहियान भारत से वापस जाते हुए जावा गए, वहाँ उन्होंने पाया की जावा में पौराणिक धर्म का वर्चस्व है। वहाँ बौद्ध धर्म के प्रचार का सूत्रपात गुणबर्मा द्वारा किया गया। यद्यपि गुणबर्मा के प्रभाव से जावा की राजमाता तथा राजा ने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया था, पर अभी भी वह जावा का प्रधान धर्म नहीं बना था। पौराणिक हिन्दू धर्म वहाँ फलता फूलता रहा, यद्यपि उसके साथ– साथ बौद्ध धर्म का भी वहाँ प्रचार होता रहा। शुरू में जावा तथा उसके समीपवर्ती द्वीपों में बौद्धों के थेरवाद सम्प्रदाय के सर्वास्तिवादी निकाय का प्रचार हुआ। परंतु आठवीं सदी में वहाँ महायान सम्प्रदाय का प्रवेश हुआ, और उसने शीघ्र ही वहाँ से थेरवाद का अन्त कर दिया। देखा जाए तो अब इन द्वीपों में पौराणिक हिन्दू धर्म और महायानी बौद्ध धर्म साथ–साथ चलते रहे, और उनमें विरोध या विद्वेष के कोई संकेत नहीं मिलते। यहां शैलेन्द्र

वंश बौद्ध धर्म के अनुयायी थे, जिनके शासनकाल में बौद्ध धर्म ने वास्तविक अभ्युदय देखा। लिगोर (मलाया) के एक अभिलेख के अनुसार श्रीविजय के राजा के आदेश से राजस्थविर (राजगुरु) ने जयन्त के तीन बौद्ध चौत्यों का निर्माण कराया था। शैलेन्द्र राजा श्रीबालपुत्रदेव ने नालन्दा (भारत) में भी एक विहार बनवाया था। आठवीं शताब्दी में जावा पर भी शैलेन्द्र राजाओं का प्रभुत्त्व स्थापित हो गया था। क्योंकि ये राजा बौद्ध थे, अतः इनके शासन काल में जावा में भी इस धर्म का उत्कर्ष हुआ, और प्रतापी शैलेन्द्र सम्राटों के संरक्षण में इस धर्म ने वहाँ प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया।

श्रीविजय और जावा आदि बौद्ध ग्रन्थों के अध्ययन–अध्यापन के लिये बहुत महत्त्व प्राप्त कर गये थे। यह इस बात से सूचित होता है कि वहाँ से अनेक प्रामाणिक बौद्ध ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, यद्यपि अब वहाँ बौद्ध धर्म का पूर्ण रूप से लगभग लोप हो चुका है। दक्षिण–पूर्वी एशिया में बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय का ही मुख्य रूप से प्रचार हुआ था। इस सम्प्रदाय में बहुत से देवी देवताओं की पूजा की जाती थी, और इस प्रयोजन से उनकी मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठापित की जाती थीं। ये देवी देवता प्रायः उसी प्रकार के थे, जैसे कि पौराणिक हिन्दू धर्म में थे। महायान में आदि–बुद्ध के अतिरिक्त पाँच ध्यानी बुद्धों की पूजा की जाती थी , जिनके नाम वैरोचन, अक्षोभ्य, रत्नसम्भव, अमिताभ और अमोघसिद्धि थे। बुद्ध पद को प्राप्त करने के लिये यत्न तथा साधना में तत्पर व्यक्तियों को इस सम्प्रदाय में बोधिसत्त्व कहा जाता था। अवलोकितेश्वर , मञ्जुश्री, वज्रपाणि, मैत्रेय, आकाशगर्भ आदि मुख्य बोधिसत्त्व थे, जिनकी देवताओं के समान पूजा की जाती थी। बोधिसत्व–रूपी देवताओं के समान अनेक देवियों ने भी महायान मत में स्थान प्राप्त कर लिया था जिनमें तारा, प्रज्ञापारमिता और श्रीमहादेवी प्रधान थीं।

जावा , सुमात्रा आदि में इसी महायान सम्प्रदाय का प्रचार हुआ था, अतः वहाँ इन देवी–देवताओं की भी अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। विशेषतया, मैत्रेय तथा मञ्जुश्री बोधिसत्त्र और तारा देवी की मूर्तियाँ वहाँ अधिक संख्या में मिली हैं। आठवीं सदी से भारत के महायान में एक अन्य सम्प्रदाय का विकास शुरू हो गया था, जिसे वज्रयान कहा गया। इसमें गुह्य सिद्धियों पर विश्वास किया जाता था , और पूजा के लिये तान्त्रिक साधनों का उपयोग होता था। भारत के साथ–साथ जावा आदि के महायान में भी वज्रयानी सिद्धान्तों का प्रवेश हुआ, और समयान्तर में वहाँ बौद्ध धर्म का प्रधान रूप वही रह गया, जिसका प्रतिपादन वज्रयान द्वारा किया जाता था। इस सम्प्रदाय में तान्त्रिक साधना के लिये पञ्चमकारों (मांस , मीन , मुद्रा और मैथुन) का प्रयोग आवश्यक था, और साथ ही मन्त्रशक्ति का प्रयोग कर अनेकविध तान्त्रिक अनुष्ठान भी किए जाते थे।

दक्षिण–पूर्वी एशिया के पुराने धर्म की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि धीरे–धीरे वहाँ बौद्ध तथा पौराणिक हिन्दू धर्मों में समन्वय हो गया था, और उनके देवी देवताओं में भेद दिखना खत्म हो गया था। जिस प्रकार पौराणिक धर्म में विष्णु और शिव में अभेद मानकर हरिहर की संयुक्त मूर्ति बनने लगी थी, वैसे ही जावा में बुद्ध और शिव में अभेद मानकर उनकी भी संयुक्त मूर्तियां बनायी गई थीं। जावा आदि में राजा को दैविक माना जाता था, और वहाँ यह प्रथा थी कि राजा की मृत्यु के पश्चात उसकी स्मृति में शिव या बुद्ध सदृश देवताओं की जो मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित की जाएँ, उन पर राजा की मुखाकृति की छाप हो। सिहसारि के राजा विष्णुवर्धन की 1268 ईस्वी में जब मृत्यु हुई, तो जजघू में बुद्ध के रूप में तथा वलेरी में शिव के रूप में उसकी मूर्ति प्रतिष्ठापित की गई। राजा कृतनगर की मृत्यु (1292) होने पर उसकी अन्त्येष्टि क्रिया शिव–बुद्ध देवालय में हुई थी, जहाँ संयुक्त शिव – बुद्ध के रूप में उसकी एक सुन्दर मूर्ति भी स्थापित की गई थी। जो आजकल लोडन (हालैण्ड) में है।

इसमें सन्देह नहीं, कि दक्षिण–पूर्वी एशिया में बौद्ध तथा पौराणिक हिन्दू धर्मों में समन्वय स्थापित हो गया था, और उनमें विरोध का कोई कारण नहीं रहा था। इन दोनों धर्मों में समन्वय हो जाने के परिणाम स्वरूप वहाँ के धर्म ने एक ऐसा रूप प्राप्त कर लिया था, जिसे शिव बुद्ध सम्प्रदाय या शिवमार्ग और बुद्धमार्ग दोनों कहा जाता था। जो ऊपर दिये गए राजाओं के उदाहरण से स्पष्ट होता है।पौराणिक और बौद्ध धर्मो में अभेद एवं समन्वय हो जाने पर भी दक्षिण–पूर्वी एशिया के इन द्वीपों में पूजा तथा कर्मकाण्ड आदि की प्रायः वही विधि प्रचलित रही, जो भारत के सनातनी हिन्दुओं में थी। मलाया, सुमात्रा, जावा आदि से अब भारतीय धर्मों का लोप हो चुका है, और वहां के लोगों ने इस्लाम को अपना लिया है। पर जावा के पूर्व में बाली नाम का एक छोटा सा द्वीप है, जिसमें धर्म की वही परम्परा इस समय भी वि।मान है, जो इस्लाम के प्रचार से पहले जावा आदि सर्वत्र थी।

14-4 tkok e orZeku ifjn`';

इस्लाम से अपने धर्म की रक्षा करने के लिए जावा के बहुत से लोग बाली जाकर बस गए थे। इस दशा में बाली में धर्म का जो रूप वर्तमान समय में है, उससे यह भलीभाँति जाना जा सकता है, कि इस्लाम के प्रचार से पूर्व जावा में धर्म का क्या स्वरुप रहा होगा। बाली में सूर्य के रूप में शिव की पूजा का प्रमुख स्थान है, इसे सूर्य सेवन कहते हैं, और यह पूजा पंडित द्वारा करायी जाती है। गृह्यसूत्रों में जिन विविध संस्कारों (जातकर्म, मुण्डन, नामकरण, विवाह आदि) का विधान किया गया है, बाली में उनका निष्ठापूर्वक अनुष्ठान किया जाता है, और वहाँ अनेक सामूहिक धार्मिक उत्सव भी मनाये जाते हैं। लक्ष्मी और सरस्वती की पूजा के लिये विशिष्ट समयों पर तथा पूर्णिमा के दिन आयोजन किया जाता है। पितरों के श्राद्ध का बाली के धर्म में महत्त्वपूर्ण स्थान है। पूजा और श्राद्ध आदि वेदशास्त्रों के मन्त्रों द्वारा किये जाते हैं, और महाकाल, दुर्गा आदि की पूजा के लिये पशुबलि भी वहाँ दी जाती है। पूजा की सामग्री में घृत, मधु, कुशा तथा तिलों को प्रयुक्त किया जाता है, और कराने वाले पदण्ड को दक्षिणा देने की भी वहाँ प्रथा है। पुरोहित प्रायः ब्राह्मण वर्ण का होता है। वह संस्कृ त तथा कवि (जावा तथा बाली की पुरानी स्थानीय भाषा) भाषाओं और धार्मिक ग्रन्थों का ज्ञान गुरु से प्राप्त करके ही इस पद का अधिकारी बनता है।

बाली में गंगा, यमुना, सरयू, सिन्धु, कावेरी और नर्मदा नाम की नदियाँ वि।मान हैं, पर भारत के नदियों के समान वहां के इन नदियों के जल को पवित्र नहीं माना जाता है। भारत की परम्परा के अनुसार धार्मिक पूजापाठ के लिये पवित्र नदियों के जल का उपयोग आवश्यक है, अतः बाली की गंगा आदि नदियों के जल को मन्त्रपूत कर धार्मिक कृत्यों में उसका उपयोग किया जाता है। बाली में अब तक संस्कृत भाषा तथा वेद, सूत्रग्रन्थ, रामायण, महाभारत आदि प्राचीन भारतीय ग्रन्थों का पठन पाठन जारी है। इस्लाम के प्रवेश से पूर्व जावा, सुमात्रा, मलाया, बोर्नियो आदि अन्यत्र धर्म की क्या दशा थी, इसका अनुमान बाली के धर्म से लगाया जा सकता है। पुरातन अवशेष तथा कला की दृष्टि से मलेशिया और इन्डोनीसिया के क्षेत्र में जावा ही एक ऐसा द्वीप है, जहाँ प्राचीन मन्दिर और चैत्य इस समय भी वि।मान हैं। शैलेन्द्र साम्राज्य की राजधानी श्रीविजय सुमात्रा में थी, और मलाया प्रायद्वीप में भी अनेक समृद्ध भारतीय राज्य प्राचीन समय में वि।मान थे। इनमें भी बहुत से विशाल मन्दिरों और चेत्यों का निर्माण किया गया होगा, यह भरोसे के साथ कहा जा सकता है। पर वहाँ के पुराने पौराणिक व बौद्ध धर्मस्थान अब नष्ट हो चुके हैं, और उनके खण्डहर ही कहीं–कहीं दिखायी देते हैं। पर जावा के प्राचीन मन्दिर व चौत्य पर्याप्त रूप से सुरक्षित दशा में हैं, य।पि वहाँ के निवासी अब इस्लाम को अपना चुके हैं ।

14-5 tkok dh çkphu efnj o pR;

जावा में अनेकों प्राचीन मंदिर व चौत्य आज भी वि।मान हैं जिनका वर्णन संक्षेप में अग्रलिखित है :–

14-5-1 fn,x dh efUnj

यह मंदिर मध्य जावा में समुद्रतल से 6500 फीट ऊंचाई पर स्थित है, जो चारों ओर पहाड़ों से घिरा हुआ है। यह समतल पत्थर 8000 फीट लम्बा और 2500 फीट चौड़ा है। इस स्थान पर जावा के सबसे पुराने मन्दिर वि।मान हैं, जिनका निर्माण सातवीं या आठवीं सदी में हुआ था। दिएंग के ये मन्दिर पाण्डवों के मन्दिर के नाम से विख्यात हैं, और इनकी कुल संख्या आठ है। यहाँ से जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं उनमें शिव, दुर्गा, गणेश, ब्रह्मा, विष्णु तथा आदि पौराणिक देवी देवताओं की प्रतिमा हैं। कतिपय मूर्तियों में उनके वाहन भी बनाये गए हैं। दिएंग के इन मन्दिरों का वर्णन करते हुए एक यूरोपियन लेखक ने लिखा था, कि इस विलक्षण तथा शान्त मैदान में भीम का मन्दिर बायीं ओर खड़ा है और अर्जुन का मन्दिर दायीं ओर पहाड़ों और आकाश की पृष्ठभूमि में उनके गहरे मटमैले रंग का पृथिवी के हरे और आकाश के नीले रंग के साथ अद्भुत मेल है। स्वच्छ आकाश के कारण कभी तो वे इतने समीप मालूम होते हैं मानों उन्हें छुआ जा सके, पर अगले क्षण वे बहुत दूर हो जाते हैं, इतनी दूर कि वहाँ पहुंचा ही नहीं जा सकता। मैदान के चारों ओर, पहाड़ की ढलान तथा चोटी तक पुराने ध्वंसावशेष विद्यमान हैं। यहाँ कुछ पाषाण स्तम्भ गड़े हुए हैं, लोकप्रचलित कथानक के अनुसार वहाँ अर्जुन अपने हाथियों को बांधा करते थे। उसकी गौ रात को यहाँ पर एक गुहा में विश्राम किया करती थीं। यहाँ कहीं राख की तह पड़ी मिलती है जिससे आग लगाना सूचित होता है। इस राख में कभी कभी सोने की अंगूठियाँ, कंकण और अन्य आभूषण मिल जाते हैं। पुराने समय की पुष्करिणियाँ, दीवारें, सीढ़ियाँ और मकानों

की नीवें इन मन्दिरों के चारों ओर वि।मान हैं। इस विवरण से यह स्पष्ट है कि किसी प्राचीन समय में दिएंग पौराणिक धर्म का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण केन्द्र रहा होगा। यह स्थान जावा के किसी भी राज्य की राजधानी नहीं रहा। यह एक तीर्थस्थान था, जहाँ बहुत से मन्दिर वि।मान थे। दिएंग के मन्दिर गुप्तकाल की शैली के हैं। वे परिमाण में विशाल न होकर छोटे आकार के और घन आकृति के हैं। इस मंदिर के गर्भगृह में केवल एक एक प्रवेशद्वार है, और मन्दिर के ऊपर की छत चौरस है जो ऊपर की ओर छोटी होती जाती है। मन्दिरों के अलंकरण अत्यन्त सुन्दर और कलात्मक हैं।

14-5-2 p.Mh dkylu

शैलेन्द्र राजा बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। अपने साम्राज्य का विस्तार करते हुए जब उन्होंने जावा को भी अपने अधीन कर लिया, तो वहाँ भी बौद्ध धर्म का प्रचार होने लगा और शैलेन्द्र राजाओं द्वारा वहाँ बहुत–से चौत्यों तथा स्तूपों का निर्माण कराया गया। ऐसा सबसे पुराना चौत्य या मन्दिर चण्डी कालसन का है, जिसके 778 ईस्वी के अभिलेख से यह सूचित होता है कि उसे एक शैलेन्द्र राजा ने देवी तारा के लिए बनवाया था। अभिलेख में कालस गाँव के बौद्ध संघ को दान में दिये जाने का उल्लेख है। इसीलिये माँ तारा के लिये निर्मित चैत्य या मन्दिर का नाम चण्डी कालसन पड़ा। जावा में मन्दिरों के लिये चण्डी शब्द प्रयुक्त किया जाता था। चिरकाल तक उपेक्षित रहने और विधर्मियों के प्रकोप के कारण इस मन्दिर का बहुत सा भाग अब नष्ट हो गया है। पर जो शेष बचा है, वह आठवीं सदी की वास्तुकला तथा धार्मिक दशा का परिज्ञान कराने के लिये पर्याप्त है। मन्दिर एक चौकोर चबूतरे पर खड़ा है, जो बारह फीट तक बाहर की ओर निकला हुआ है। मन्दिर का मुख्य भाग भी चौकोर है, इसके प्रधान द्वार के ऊपर विशाल कीर्तिमुख बना हुआ है, जिस के मुख से पाँच कमल लटक रहे हैं। द्वार पर बहुत–सी सुन्दर मूर्तियाँ अंकित हैं, और द्वार के दोनों ओर दीवारों के ऊपरी भाग पर सुन्दर रूपावलियाँ हैं। जहाँ से छत प्रारम्भ होती है, वहाँ बुद्ध की मूर्तियाँ पंक्ति में बनी हुई हैं। इनमें चार ध्यानी बुद्धों (अक्षोभ्य, रत्नसम्भव, अमिताभ और अमोघ सिद्धि) की मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के भीतरी भाग की पीछे की दीवार में आसनपीठ बने हैं, जिनमें कभी मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित रही होंगी, पर अब उनका पता नहीं है। पिछली दीवार के साथ मूर्ति के लिए जिस सिंहासन का निर्माण कराया गया था, वह अब भी वि।मान है, परंतु उस पर तारा देवी की जो मूर्ति प्रतिष्ठापित की गई थी, वह अब नहीं है।

14-5-3 p.Mh ljh

चण्डी कालसन, से आधा मील उत्तर में चण्डी सरी का मन्दिर है , जो अब अत्यन्त ध्वस्त दशा में है। इसके प्रस्तर खण्डों तथा मलबे को लोग सदियों से नये मकान बनाने के लिए प्रयुक्त करते रहे हैं। मूल दशा में यह एक दो मञ्जिली इमारत थी, जिसकी लम्बाई 57 फीट और चौड़ाई 33 फीट थी। नीचे की मञ्जिल में मन्दिर स्थापित था, और ऊपर की मञ्जिल को निवास के लिये विहार के रूप में प्रयोग किया जाता था। दोनों मञ्जिलों पर तीन–तीन सिहासन थे, जिन पर बौद्ध मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित की गई थीं। मन्दिर को सब ओर से विविध कलात्मक मूर्तियों द्वारा विभूषित किया गया था। जो मूर्तियाँ अब भी शेष हैं वे अत्यन्त सुन्दर हैं।

14-5-4 p.Mh lo

चण्डी सरी के पूर्व में चण्डी सेवू के मन्दिर हैं। यहाँ 782 ईस्वी का एक अभिलेख मिला है, जिससे इस मन्दिर का शैलेन्द्रों के प्रारम्भिक काल में निर्मित होना सूचित होता है। यहाँ कोई एक मन्दिर न होकर बहुत से मन्दिर एक लम्बे–चौड़े दायरे में बने हैं। 600 फीट लम्बे और 540 फीट चौड़े एक सुविस्तृत आँगन के चारों ओर दो पंक्तियों में मन्दिर बनाये गए हैं, जिनकी संख्या 168 है। आँगन के मध्य में मुख्य मन्दिर हैं, जो दो अन्य पंक्तियों में बने 72 मन्दिरों से घिरे हुए हैं। इस प्रकार यहाँ कुल मिलाकर 240 मन्दिर थे जिनसे बीच का मुख्य मन्दिर घिरा हुआ था। इनके अतिरिक्त दस अन्य मन्दिरों के भी चिह्न यहाँ विद्यमान हैं , जो मन्दिरों की भीतरी और बाहरी पंक्तियों के बीच में हैं। यदि इन्हें भी सम्मिलित कर लिया जाए, तो चण्डी सेवू में मुख्य मन्दिर के अतिरिक्त 250 अन्य मन्दिर थे मन्दिर चालीस वर्ग गज के एक ऊँचे चबूतरे पर खड़े है, इसके चारों ओर चार द्वार हैं। मन्दिर की दीवारों को अलंकृत करने के लिए पत्र –पुष्पों, पशु–पक्षियों तथा अन्य आकृतियों का प्रयोग किया गया है। बीच का मन्दिर बहुत ऊंचा है, और उसके दोनों ओर के मन्दिरों की ऊँचाई निरन्तर कम होती गई है। इस कारण इस मन्दिर समूह ने एक अत्यन्त भव्य तथा आकर्षक रूप प्राप्त कर लिया है। ये सब मन्दिर किसी एक ही व्यक्ति द्वारा बनवाये हुए प्रतीत नहीं होते हैं। एक मन्दिर पर लिखा है–''महाप्रत्तय सन रङ् गुड् ति'' जिसका अर्थ है रङ , गुङ तिङ् का दान। इसी प्रकार के लेख अन्य मन्दिरों पर भी पाये गए हैं, जिनसे

उनका विभिन्न व्यक्तियों द्वारा बनाया जाना सूचित होता है। एक सदी से कुछ पहले एक दर्शक ने चण्डी सेवू के विषय में लिखा था, कि इसकी कला बहुत ही सुरुचिपूर्ण कोमल एवं परिमार्जित है। उस समय जो मन्दिर–मूर्तियाँ व अलंकरण वहां विद्यमान थे, वे अब प्रायः ध्वस्त व लुप्त हो चुके हैं। पर जो अब भी शेष बचे हैं, वे चण्डी सेबू के महत्त्व को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं। चण्डी कालसन, चण्डी सरी और चण्डी सेव के ये मन्दिर मध्य जावा की प्रम्बनन घाटी में हैं। चण्डी मेन्दुत और चण्डी पवान प्रम्बनन की घाटी के दक्षिण पूर्व और दिएंग पयार के उत्तर पश्चिम में केदू का मैदान है, जहाँ बहुत से पुराने मन्दिरों के ध्वंसावाशेष विद्यमान हैं। ये भी आठवीं सदी के लगभग के हैं, और ये बौद्ध और पौराणिक दोनों धर्मों के साथ सम्बन्ध रखते हैं। यद्यपि बहुत से मन्दिर ध्वस्त दशा में हैं, पर वहाँ चंडी मेन्दुत तथा चंडी पवान के मन्दिर इस समय भी पर्याप्त रूप से अच्छी दशा में हैं।

14-5-5 pMh eUnr dk efUnj

यह मंदिर 60 फीट लम्बे, 78 फीट चौड़े और 66 फीट ऊंचे चबूतरे पर बना है। वह चौकोर है, और 15 वर्गगज उसका क्षेत्र है। मन्दिर की दीवारों पर सुन्दर मूर्ति–पंक्तियां हैं, जिनमें मध्य की मूर्तिपंक्ति के उत्तर–पूर्व में पद्मासना अष्टभुजा देवी की मूर्ति है। इस देवी के दोनों और प्रभामण्डित दो मनुष्य मूर्तियाँ हैं , जिनके एक हाथ में कमल और दूसरे में चक्र है। देवी के दायें वाले हाथों में शंख, वज्र, बिल्व तथा माला है, और बायें वाले हाथ में परशु, अंकुश, पुस्तक और कोई गोल वस्तु है। इस मूर्तिपंक्ति के सामने की ओर पद्मसर से तीन पद्मासन उठते हुए दिखाये गए है, जिनमें बीच वाला अन्य दो से ऊंचा है। इस ऊँचे पद्मासन पर एक देवी आसीन है। मेन्दुत के इस मन्दिर में बुद्ध और बोधिसत्त्वों की भी बहुत–सी मूर्तियां हैं। इनमें एक पत्थर से बनी दस फीट ऊँची बुद्ध– मूर्ति है, जिसके पादपीठ में एक चक्र के दोनों ओर दो मृग बने हैं। इस मूर्ति में बुद्ध को धर्म चक्रप्रवर्तन करते हुए दिखाया गया है। बुद्ध की मूर्तियां साधारण चीवर में, बिना किसी सजावट के है। परंतु अवलोकितेश्वर और मञ्जुश्री की मूर्तियों को वस्त्राभूषणों से अलंकृत रूप से बनाया गया है। चंडी मेन्दुत की ये तीन मूर्तियां दक्षिण–पूर्वी एशिया की मूर्तिकला की सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। भारत में भी बुद्ध की इतनी सुन्दर मूर्तियां गुप्त युग में ही बनी थीं। मेन्दुत मन्दिर के चारों ओर एक विशाल आंगन है, जो 360 फीट लम्बा और 165 फीट चौड़ा है । किसी समय इस में भी उसी प्रकार से अनेक मन्दिर रहे होंगे, जैसे कि चंडी सेवू में हैं। चंडी मेन्दुत से 1257 गज दूर चंडी पवान का मन्दिर है। यह एक छोटी, पर अत्यन्त सुन्दर इमारत है। यह भी पहले अनेक रूपावलियों तथा मूर्तिपंक्तियों से विभूषित था। पर अब इसका बहुत सा भाग ध्वस्त हो चुका है। इसके समीप अन्य भी अनेक मन्दिरों के भग्नावशेष वि।मान हैं।

14-5-6 p.Mh yj tkxa3x

प्रम्बनन की जिस घाटी में चण्डी कालसन, चण्डी सरी और चण्डी सेवू के बौद्ध मन्दिर हैं, उसी में चण्डी लर जोंग्रङ्ग के मन्दिर भी है जो पौराणिक देवी देवताओं के हैं। यहाँ आठ मुख्य मन्दिर हैं। तीन–तीन मन्दिर दो पंक्तियों में बने हैं, और इन पंक्तियों के बीच में दो मन्दिर वि।मान हैं। इन मुख्य मन्दिरों के चारों ओर एक दीवार बनी है। इसे छोटे–छोटे मन्दिरों की तीन पंक्तियों ने घेरा हुआ है। इस प्रकार लर जोंग्रङ्ग में जो बहुत से मन्दिर बने हुए हैं, उनकी कुल संख्या 156 है। आठ मुख्य मन्दिरों में जो तीन पश्चिम की ओर की पंक्ति में बने हैं, उनमें बीच का मन्दिर सब से बड़ा और सब से प्रसिद्ध हैं। इसमें शिव की मूर्ति प्रतिष्ठापित है, इसका आधार भाग 60 फीट लम्बा और 10 फीट ऊंचा है। इसके ऊपर एक चबूतरा बना है, जिसके ऊपर मन्दिर स्थित है। मन्दिर के चारों ओर सात फीट चौड़ा प्रदक्षिणापथ है। मन्दिर, चबूतरा और उसका जंगला बहुत सी रूपावलियों द्वारा अलंकृत है, जिनमें रामायण की कथा को अंकित किया गया है। शिव मन्दिर की रूपावलियों में लंका पर अभियान तक के दृश्य पाये जाते हैं, और आगे की कथा ब्रह्मा के मन्दिर की रूपावलियों में अंकित की गई है। मध्यवर्ती शिव मन्दिर के दोनों ओर ब्रह्मा और विष्णु के मन्दिर है। विष्णु के मन्दिर में कृष्णलीला सम्बन्धी चित्र भी उत्कीर्ण है, लर जोंग्रङ्ग के ये मन्दिर कला, सौन्दर्य तथा विशालता की दृष्टि से बोरोबदूर के प्रायः समकक्ष है। रामायण आदि के जो चित्र इनमें अंकित है, कला और सजीवता में वे बोरोबदूर के चित्रों से हीन न होकर उत्कृष्ट ही है, चण्डी लर जोंग्रङ्ग के इन मन्दिरों का निर्माण काल नौवीं सदी में माना जाता है। प्रम्बनन के क्षेत्र में ही चण्डी बनोन का मन्दिर भी है, जिसमें शिव, अगस्त्य और विष्णु की मूर्तियां विद्यमान हैं। सौन्दर्य और कला में ये मूर्तियां अनुपम हैं।

दसवीं सदी के द्वितीय चरण में पूर्वी जावा का उत्कर्ष प्रारम्भ हो गया था, और इस समय से वहां की

राजशक्ति वहीं केन्द्रित होने लग गई थी। इसलिए दसवीं सदी से पूर्वी जावा में भी अनेक मन्दिरों व चौत्यों का निर्माण प्रारम्भ हुआ, जिनमें से कुछ वर्तमान समय में भी वि।मान हैं। ये प्रायः तेरहवीं सदी और उसके बाद के हैं, और इनमें से अनेक दिवंगत राजाओं की समाधि के रूप में बनाये गए थे। इन मन्दिरों में चण्डी किदल, चण्डी जगो, चण्डी जवी और चण्डी सिहसारि उल्लेखनीय है। इनमें चण्डी जगो का विशेष महत्व है। उसका निर्माण सिहसारि के राजा विष्णुवर्धन की समाधि के रूप में किया गया था। विष्णुवर्धन की मृत्यु 1266 ई. में हुई थी, अतः इस मन्दिर को तेरहवीं सदी के मध्य भाग का माना जा सकता है। इस मन्दिर में जो मूर्ति है, वह बुद्ध की है पर उसकी मुखाकृति विष्णुवर्धन के मुख की अनुकृति में बनायी गई है। यह मन्दिर तीन चबूतरों पर बना है, और उसमें ऊपर के चबूतरे नीचे वाले चबूतरे से छोट होते गए हैं। चण्डी किदल का निर्माण राजा अनूष्पति की समाधि के रूप में किया गया था। इस राजा की मृत्यु 1245 ई में हुई थी। इस युग में जावा में बौद्ध और पौराणिक धर्मो में समन्वय की प्रवृत्ति विकसित हो गई थी , और बुद्ध तथा शिव में अभेद प्रतिपादित किया जाने लगा था। इसीलिए पूर्वी जावा के इन मन्दिरों में भी बौद्ध और पौराणिक धर्मो में समन्वय के प्रमाण पाये जाते हैं। चण्डी जगो के बौद्ध मन्दिर में कृष्ण का चरित्र भी अंकित है, और चण्डी जावा के मन्दिर में शिव की मूर्ति के ऊपर बुद्ध की भी मूर्ति है। मुख्य मन्दिर का अब केवल चबूतरा ही बचा है , मन्दिर नष्ट हो चुका है। पर चबूतरे के सामने एक छोटा मन्दिर अब भी वि।मान है, जो कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है। मुख्य मन्दिर का जो निचला भाग शेष है, उस पर अनेक रूपावलियां उत्कीर्ण हैं, जिनमें रामायण और कृष्णायन से सम्बद्ध चित्र अंकित हैं।

14-6 lkjk'k

जावा में बौद्ध धर्म का प्रचलन प्राचीन काल से पौराणिक हिन्दू धर्म के साथ–साथ समान रूप से फलता फूलता हुआ दिखाई देता है जिसको समय दृ समय पर सम्राटों ने अपना आश्रय प्रदान किया जिसके कारण लगभग 13वीं–14 वीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म इस क्षेत्र में यश प्राप्त करते हुये आगे बढ़ता रहा परंतु इस्लाम के आगमन ने इसके प्रगति पर विराम लगाया और बौद्ध धर्म धीरे–धीरे एक क्षेत्र विशेष तक सीमित रह गया तथा वर्तमान समय में बौद्ध अपने अस्तित्व को बचाते हुये आगे बढ़ रहे हैं तथा इस्लाम एक मुख्य धर्म के रूप में जावा में दिखाई देने लगा है।

14-7 cks/k iz'u

प्रश्न संख्या 1: जावा में भारतीय बौद्ध धर्म किस प्रकार पहुंचा।चर्चा कीजिये ?

.....

.....

.....

.....

प्रश्न संख्या 2: जावा के विभिन्न मंदिरों पर संक्षिप्त में टिप्पणी कीजिए ?

.....

.....

.....

.....

प्रश्न संख्या 3: क्या जावा में पौराणिक हिन्दू धर्म व बौद्ध धर्म के मध्य समरूपता दिखाई देती है ? चर्चा करें ?

.....

.....

.....

.....

14-8 lanHkZ xzUFk

1. Agrawal, Pramod,2022, Early Hindu&Buddhist Kingdoms of Indonesia, Story Mirror Infotech Pvt Ltd
2. Brown, Iem, The revival of Buddhism in modern Indonesia, In Hinduism in Modern Indonesia, pp- 45&55- Routledge, 2005
3. Majumdar, R.C., 1944, Hindu Colonies in Far East, General printers Publishers Limited, Calcutta
4. Rizzo, Roberto, Buddhism in Indonesia,A Study of Multiple Revivals- Taylor & Francis, 2024
5. Sastri, K. A. Nilkanth, 1940,ŚRĪ VIJAYA, Bulletin de l'École française d^EÛtrême&Orient 40, no- 2
6. Steenbrink, Karel, Buddhism in Muslim Indonesia, Studia Islamika 20, no- 1,2013
7. Vidyalankar, Satyketu , 2015,ed-, Dakshin Purvi aur Dakshini Asia mein Bharatiya Sanskriti, Shree Saraswati Sadan, New Delhi
8. Swearer, Donald K, Buddhism in Southeast Asia, In The Religious Traditions of Asia,pp- 119&141- Routledge, 2013

bdkbi&15 dyk ,oa okLrqdyk& ckjkcqnj

bdkbi dh :ijs[kk

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्देश्य

15.2 बोरोबुदुर के निर्माता एवं अवस्थिति

15.3. बोरोबुदूर संरक्षण प्रबंधन

15.4 बोरोबुदुर मंदिर का स्थापत्य एवं महत्त्व

15.5 सारांश

15.6 बोध प्रश्न

15.7 संदर्भ ग्रंथ

15-0 çLrkouk

मध्य जावा में स्थित बोरोबुदुर दुनिया के सबसे बड़े बौद्ध मंदिरों में से एक है। यद्यपि बोरोबुदुर के मंदिर को समय–समय पर अनेक प्राकृतिक एवं मानवीय आपदाओं का सामना करना पड़ा जैसे–गुनुंग मेरापी के ज्वालामुखी विस्फोटों, आतंकवादी बम विस्फोटों और 2006 के भूकंप आदि परंतु उपरोक्त झंझावातों के बावजूद भी यह मंदिर अपने वजूद को बचाने में सफल रहा तथा आज भी पर्यटकों के लिए एक महत्त्वपूर्ण आकर्षण का केंद्र बना हुआ है।यह एक अलंकृत नक्काशीदार पिरामिड जैसा दिखता है, जिसके निचले हिस्से के चारों ओर मजबूत दीवारें हैं और शीर्ष पर पाँच मंजिल तक की मूर्तियाँ हैं। केंद्रीय गुंबद पर 72 बुद्ध प्रतिमाएं लगी हुई हैं। इसका निर्माण लगभग 9वीं शताब्दी में पूर्ण हुआ। बोरोबुदूर अपने वैविध्य स्थापत्य कला तथा एक बौद्ध केंद्र के रूप में सम्पूर्ण विश्व में विख्यात है जिसके विषय में विस्तार से प्रस्तुत इकाई में जानने समझने का प्रयास करेंगे।

15-1 mn~n';

बोरोबुदुर, बौद्ध धर्म के महत्त्वपूर्ण केन्द्रों में से एक है, इसका निर्माण लगभग 9वीं शताब्दी में शैलेंद्र शासकों के शासन काल में पूर्ण हुआ तथा यह अपने स्थापत्य कला के कारण आज विश्व विख्यात है वर्तमान में यह एक न्छम्ब्ब् विश्व धरोहर के रूप में प्रसिद्ध है तथा पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र रहा है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के माध्यम से हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार जावा तथा दक्षिण दृ पूर्व एशिया के देशों में बौद्ध धर्म ने अपना विस्तार किया तथा बोरोबुदुर किस प्रकार एक महत्त्वपूर्ण बौद्ध स्थल के रूप में परिणित हो सका।

15-2 ckjkcqnj dk fuekZrk ,oa vofLFkfr

बोरोबुदूर दक्षिण–पूर्व एशिया के जावा द्वीप पर स्थित है जो प्राचीन काल से ही बौद्ध तथा पौराणिक हिन्दू धर्म के आकर्षण का केंद्र रहा है। यहाँ पर प्रसिद्ध बौद्ध मंदिर का निर्माण 8वीं और 9वीं शताब्दी के मध्य शैलेंद्र शासकों द्वारा करवाया गया था।इस मंदिर को शैलेन्द्र राजवंश के एक उत्कृष्ट राजवंशीय स्मारक के रूप में भी देखा जाना चाहिए, जिसने 9वीं–10वीं शताब्दी में लगभग पांच शताब्दियों तक जावा पर शासन किया था। मंदिर का निर्माण शुरू होने से लेकर 10वीं से 15वीं शताब्दी के बीच तक यह स्थान बौद्ध मंदिर के रूप में प्रचलित रहा तथा इस्लाम के आगमन और समय की थपेड़ों ने इसे भुला दिया। आगे चलकर 19वीं शताब्दी में इसकी पुनः खोज और 20वीं शताब्दी में जीर्णोद्धार के बाद यह स्थल पुनः बौद्ध पुरातात्विक स्थल के रूप में अपने को स्थापित करने में सफल हुआ तथा आज पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र बना हुआ है। वर्तमान समय में यह स्मारक इंडोनेशिया के जावा द्वीप के केंद्र में, मध्य जावा के दक्षिणी भाग में केडू घाटी में स्थित है। बोरोबुदूर मंदिर का स्थापत्य तीन स्तरों में विभक्त हैः–

(i) पाँच संकेंद्रित वर्गाकार छतों वाला एक पिरामिडनुमा आधार,

(ii) तीन गोलाकार चबूतरे वाला एक शंकु का तना और

(iii) सबसे ऊपर एक स्मारकीय स्तूप।

इसके अतिरिक्त दीवारों तथा कटघरों को बेहतरीन कम उभरी हुई नक्काशी से सजाया गया है, जो कुल 2,500 वर्ग मीटर क्षेत्र में फैली हुई है। चबूतरों के चारों ओर 72 खुले स्तूप हैं, जिनमें से प्रत्येक में बुद्ध की एक मूर्ति है। सन 1970 के दशक में यूनेस्को की सहायता से इस स्मारक का जीर्णोद्धार किया गया था। सम्पूर्ण बोरोबुदुर मंदिर परिसर में तीन मंदिर दिखाई देते हैंः एक बोरोबुदुर मंदिर और दो छोटे मंदिर क्रमशः मेंडुत मंदिर तथा पवन मंदिर (जो बोरोबुदुर मंदिर के सम्मुख पूर्व की ओर मंदिर के सीध में स्थित हैं)। ये तीनों मंदिर निर्वाण प्राप्ति के चरणों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

15-3 ckjkcnqj lqj{kk çcU/ku

वर्तमान बोरोबुदूर मंदिर परिसर की सुरक्षा, संपत्ति सुरक्षा सांस्कृतिक विरासत और उसके आसपास के सांस्कृतिक परिदृश्य से संबंधित इंडोनेशियाई कानून संख्या 11ध्2010 के तहत की जाती है। इसे राष्ट्रीय रणनीतिक क्षेत्र और स्थानिक प्रबंधन योजना के तहत लोक निर्माण मंत्रालय द्वारा स्थानिक प्रबंधन से संबंधित कानून संख्या 26ध्2007 और राष्ट्रीय स्थानिक नियोजन से संबंधित सरकारी विनियमन संख्या 26ध्2008 के अनुसार निष्पादित किया जाता है और इसे बोरोबुदुर राष्ट्रीय रणनीतिक क्षेत्र के प्रबंधन के संबंध में एक अन्य राष्ट्रपति विनियमन द्वारा आगे लागू किया जाएगा जिसे अभी भी लोक निर्माण मंत्रालय द्वारा तैयार किया जा रहा है।संपत्ति के प्रभावी प्रबंधन के लिए कानूनी और संस्थागत ढांचे को राष्ट्रपति डिक्री संख्या 1 वर्ष 1992 द्वारा विनियमित किया जाता है। विश्व धरोहर संपत्ति के भीतर स्थापित क्षेत्र क्रमशः शिक्षा और संस्कृति मंत्रालय के तहत बोरोबुदुर हेरिटेज संरक्षण कार्यालय, उद्यम मंत्रालय के तहत राज्य के स्वामित्व वाली संस्था पीटी तमन विसाटा कैंडी बोरोबुदुर और स्थानीय सरकारों (मैगेलांग रीजेंसी और सेंट्रल जावा प्रांत) की जिम्मेदारी के तहत हैं। बोरोबुदुर मंदिर परिसर के एकीकृत प्रबंधन पर एक अध्ययन किया गया है, जिसमें पारिस्थितिकी तंत्र, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं, इकोटूरिज्म, सार्वजनिक और निजी भागीदारी और संगठनात्मक व्यवहार्यता अध्ययन पर ध्यान दिया गया है। यह अध्ययन अभी भी विकसित किए जाने वाले आगंतुक प्रबंधन दृष्टिकोण का आधार है।

विश्व धरोहर नामांकन डोजियर में दर्शाए गए 1992 के राष्ट्रपति डिक्री और 1972 के जेआईसीए मास्टर प्लान जोन–सिस्टम के बीच एकरूपता सुनिश्चित करने और विकास से संबंधित नियमों को मजबूत करने के लिए, एक समन्वय बोर्ड (14 मंत्रालय और स्थानीय प्राधिकरण और साथ ही स्थानीय समुदायों के प्रतिनिधि) द्वारा एक नया राष्ट्रपति विनियमन अभी भी तैयार किया जा रहा है और प्रस्तावित प्रबंधन बोर्ड की भूमिका को व्यापक क्षेत्रों में औपचारिक रूप दिया जा रहा है। इसके अलावा, राष्ट्रीय बजट द्वारा नियमित वित्तीय योगदान द्वारा संपत्ति की सुरक्षा सुनिश्चित की गई है।

15-4 ckjkcnqj efnj dk LFkkiR; ,oa egÙo

बोरोबुदुर विहार या बरबुदूर इंडोनेशिया के मध्य जावा प्रांत के मगेलांग नगर में स्थित एक महायान बौद्ध विहार है। आज भी यह दुनियाँ में उपस्थित सबसे बड़े बौद्ध विहारों में से एक है। 8वीं 9वीं सदी में शैलेन्द्र राजवंश के शासनकाल के दौरान इसका निर्माण किया गया। इसके बनावट को विश्लेषित किया जाए तो प्रतीत होता है कि यह छह वर्गाकार चबूतरे पर बना हुआ है, जिसमें से ऊपरी तीन भाग वृत्ताकार हैं। इसका सौंदर्यीकरण भी अपने समय काल की आभा को समेटे हुए है। 2,679 उच्चावचों (छेदयुक्त स्तूपों) और 504 बुद्ध प्रतिमाओं से सुसज्जित यह विशाल, प्राचीन और भव्य प्रतीत होता है तथा इसके केंद्र में स्थित प्रमुख गुंबद के चारों ओर स्तूप वाली 72 बुद्ध प्रतिमाएँ हैं।यह एक विशाल स्तूप परिसर है, जिसे तीर्थयात्रियों के लिए एक पवित्र मार्ग के रूप में निर्मित किया गया है। उच्चावचों की दीवारों को देखने पर जटिल बौद्ध धर्मग्रंथों की कहानियों को दर्शाती नक्काशी नजर आती हैं, जो की तीर्थयात्रियों को बौद्ध ज्ञान का संज्ञान दिलाने हेतु उकेरा गया है।

ऐसा माना जाता है कि पूरा परिसर ब्रह्मांड के प्रतीक के रूप में स्थापित है, जिसमें आधारभूत स्तर कामलोक (इच्छा जगत) का प्रतिनिधित्व करता है और उच्चतम स्तर पर स्थित गुंबद सर्गलोक (स्वर्गलोक) का प्रतिनिधित्व करता है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो बोरोबुदुर के बारे में सटीक जानकारी का अभाव मिलता है। एक समय इसे पूर्णतः भुला दिया गया था, यहां मानवीय उपस्थिति दर्ज नहीं की जा रही थी, माना जाता है कि 14वीं शताब्दी के आसपास ज्वालामुखी विस्फोट होने के कारण इसे छोड़ दिया गया था। तदुपरांत जंगल में सदियों तक छिपे रहने के बाद, 1815 में सर थॉमस स्टैमफोर्ड राइफल्स द्वारा इसकी पुनःस्थापना का कार्य शुरू हुआ। तब से, बोरोबुदुर का व्यापक जीर्णोद्धार किया गया, और आज यह एक लोकप्रिय पर्यटक स्थल बन गया है। बोरोबुदुर को केवल एक भव्य स्थापत्य कला के नमूना के रूप में देखा जाना पर्याप्त नहीं है, बल्कि यह बौद्ध धर्म के दर्शन और इतिहास का भी एक महत्वपूर्ण प्रतीक रहा है।

इसकी वास्तु शैलीः यदि देखा जाए तो यह जावाई बौद्ध स्थापत्यकला शैली में है, जो स्थानीय परंपराओं और बौद्ध धर्म के सिद्धांतों का एक अनूठा मिश्रण है। वहीं बोरोबुदुर के संरचना पर अगर चर्चा करें तो ये छः वर्गाकार चबूतरों पर निर्मित है ये चबूतरे मंदिर का आधार बनाते हैं। इनके तीन ऊपरी वृत्ताकार चबूतरे आध्यात्मिक ऊंचाई का प्रतिनिधित्व करते हैं। वहीं 2,672 उच्चावचः (सीढ़ियां) चबूतरों के बीच चढ़ाई प्रदान करती हैं। बोरोबुदुर में 504 बुद्ध प्रतिमाएंः हैं, ये प्रतिमाएं मंदिर परिसर में विभिन्न स्थानों पर स्थित हैं। वहीं 72 बुद्ध प्रतिमाएं छेदयुक्त स्तूपों के ऊपर स्थित हैं, जो मंदिर के शीर्ष पर स्थित मुख्य गुंबद को घेरे हुए हैं। यह मंदिर महायान बौद्ध धर्म का एक महत्वपूर्ण केंद्र रहा है, जो उस समय दक्षिण पूर्व एशिया में प्रमुख धर्म था। बोरोबुदुर को न केवल एक मंदिर के रूप में बल्कि एक शिक्षण स्थल और तीर्थयात्रा केंद्र के रूप में भी बनाया गया था। इसकी संरचना और आधार पर उकेरी गई कलाकृतियां बौद्ध धर्म के सिद्धांतों को दर्शाती हैं।

यदि हम वास्तु शैली देखें तो बोरोबुदुर की वास्तुकला शैली एक अद्वितीय मिश्रण शैली है। यह स्थानीय इंडोनेशियाई परंपराओं और बौद्ध धर्म के सिद्धांतों का एक अनूठा मिश्रण है। इस मंदिर को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता हैः–

1.कामधातु (कामुक क्षेत्र): यह आधारभूत क्षेत्र है जिसमें छह वर्गाकार चबूतर हैं। इन चबूतरों की दीवारों पर जातक कथाओं को दर्शाती आधार कलाकृतियां उकेरी गई हैं।

2.रूपधातु (रूप का क्षेत्र): यह मध्य क्षेत्र तीन ऊपरी वृत्ताकार चबूतरों वाला है। इन चबूतरों पर कम उभरी हुई आधार कलाकृतियां बनी हैं जो बौद्ध धर्म के दिव्यलोक को दर्शाती हैं।

3.अरूपधातु (अरूप का क्षेत्र): यह शीर्ष क्षेत्र है जिसमें एक केंद्रीय गुंबद है। इस क्षेत्र में 72 बुद्ध प्रतिमाएं छेदयुक्त स्तूपों के ऊपर स्थित हैं। माना जाता है कि यह क्षेत्र निर्वाण की प्राप्ति का प्रतिनिधित्व करता है।

अगर हम इनकी कलाकृतियों की बात करें तो आधार पर जटिल कलाकृतियां उकेरी गई हैं। ये कलाकृतियां बुद्ध के पिछले जन्मों की कहानियों को दर्शाती हैं (जातक कथाओं), और ये नैतिक शिक्षा प्रदान करती हैं। मंदिर की संरचना स्वयं बौद्ध धर्म के कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांतों का एक प्रतीक है। चबूतरों का ऊपर की ओर बढ़ना आध्यात्मिक ऊंचाई की प्राप्ति का प्रतिनिधित्व करता है। मंदिर परिसर में 504 से अधिक बुद्ध प्रतिमाएं हैं। ये प्रतिमाएं विभिन्न मुद्राओं (हस्तस्थान) में हैं, जो बौद्ध धर्म की विभिन्न शिक्षाओं को दर्शाती हैं। अगर हम देखे तो बोरोबुदुर मंदिर की बनावट ही इसे इतना बहुमूल्य बना देती है। इसकी इसी भौगोलिक और निर्माण विशेषताओं को जरा विस्तार में देखते हैं।

यह एक पहाड़ी की चोटी पर बना है, और इससे मंदिर परिसर के हरे–भरे मैदान तथा उसके चारों ओर के पहाड़ों का अत्यन्त सुन्दर दृश्य दिखायी देता है। प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से यह स्थान जितना मनोरम है, वास्तुकला ने उससे भी बढ़कर अपना चमत्कार यहाँ प्रदर्शित किया है। यह महाचौत्य नौ चबूतरों या चक्करों से मिल कर बना है, जिनमें से प्रत्येक ऊपर का चक्कर अपने से नीचे वाले चक्कर की तुलना में थोड़ा भीतर की ओर सिमटा हुआ है। सबसे ऊपर वाले चक्कर के ऊपर घण्टाकार चौत्य है। नौ चक्करों या चबूतरों में सबसे निचले छह सीधी रेखा के कोणों वाले हैं, वे गोलाकार न होकर समकोण चतुर्भुजों के रूप में हैं। ऊपर के तीन चक्कर गोलाकार हैं। सबसे निचले चक्कर की लम्बाई 400 फीट है, और सबसे ऊपर वाले की 60 फीट, नीचे के पाँच चक्कर भीतर की ओर एक बाढ़ या दीवार से इस तरह घिरे हुए हैं, कि एक चक्कर और उससे ऊपर

वाले चक्कर के बीच में एक गलियारा बन गया है। सबसे ऊपर के तीन चक्कर स्तूपों से घिरे हुए हैं, और इन स्तूपों में छिद्रवाली छत के नीचे बुद्ध की एक–एक मूर्ति बनी हुई है।

महाचौत्य के विविध चक्करों या चबूतरों की दीवारों पर रूपावलियाँ अंकित हैं, और उनके बीच– बीच में गवाक्ष बने हैं , जिनमें से प्रत्येक में ध्यानी बुद्धों की एक–एक मूर्ति प्रतिष्ठापित है। सारे महाचौत्य में ऐसी 432 मूर्तियां हैं। ध्यानी बुद्धों की मूर्तियों को गवाक्षों में स्थापित करते हुए यह ध्यान में रखा गया है , कि अक्षोभ्य की मूर्तियाँ पूर्व की ओर के गवाक्षों में हों, रत्नसम्भव की दक्षिण की ओर के गवाक्षों में , अभिताभ की पश्चिम की ओर के गवाक्षों में और अमोघसिद्धि की उत्तर वाले गवाक्षों में। पाँचवे चक्कर के गवाक्षों में सभी मूर्तियां वैरोचन की हैं। चक्करों की दीवारों पर जो रूपा–वलियाँ हैं, वे सब भिन्न–भिन्न प्रकार की हैं, पर मूर्तिकला की दृष्टि से सब उत्कृष्ट हैं। नीचे के पाँच चक्करों में भीतर की ओर बनायी गई बाढ़ के कारण जो गलियारे बन गए हैं, वे प्रायः साढ़े छः फीट चौड़े और आठ फीट से साढ़े बारह फीट तक ऊंचे हैं। इनमें बनी रूपावलियों में बुद्ध की जीवनी को प्रस्तरों पर उत्कीर्ण किया गया है। इस प्रकार जो चित्र इस महाचौत्य में अंकित हैं, उन्हें यदि एक साथ लगा दिया जाए, तो उनकी लम्बाई साढ़े तीन मील तक हो जाएगी।

इन चित्रों में नाग, किन्नर, यक्ष , राक्षस , काल मकर, कल्पवृक्ष, पारिजात, हंस तथा कितने ही अन्य पशुपक्षी अंकित हैं, जिन्हें बुद्ध के जीवन के साथ सम्बन्ध रखने वाले किसी कथानक के प्रसंग में प्रदर्शित कर दिया गया है। गलियारों के दोनों पार्श्वों में ऊपर के चक्कर में जाने के लिए सीढ़ियाँ बनायी गई हैं, जिनके ऊपर मेहराब बने हैं। मेहराबों के बीच में कीर्तिमुख हैं, जिनसे फूल लटक रहे हैं। द्वारों के ऊपर मूर्ति गवाक्षों की तरह मूर्तिशिखर बने हैं। द्वार अत्यन्त कलात्मक ढंग से अलंकृत हैं, और उन्हें इस प्रकार से बनाया है कि उनमें से किसी एक से भी सभी द्वारों तथा सीढ़ियों का सुन्दर दृश्य सम्मुख आ जाता है। वर्षा के पानी के निकलने के लिए प्रत्येक चक्कर में बीस–बीस प्रणालिकाएँ बनी हुई हैं। ऊपर के तीन गोलाकार चक्करों को रूपावलियों से विभूषित नहीं किया है। इन तीन चक्करों के व्यास क्रमशः 171, 126 और 10 फीट हैं, और इनके साथ–साथ जो स्तूप बनाये गए हैं, उनकी संख्या क्रमशः 32 , 24 और 16 है। इन स्तूपों की बनावट प्रायः एक–सदृश है। बोरोबुदूर के महाचौत्य के गलियारों में सब मिलाकर 1500 चित्रफलक या रूपा– वलियाँ हैं। इन सब का सम्बन्ध बुद्ध के जीवनवृत्त या उनके पूर्व जन्मों के कथानकों से है। इनमें कहीं सर्वसाधारण के दैनिक जीवन के चित्र हैं, जैसे विविध प्राणियों के वध व बन्धन के दृश्य। कहीं नरक की भीषणता और स्वर्ग का आनन्द चित्रित किया गया है। कुछ चित्रों के नीचे छोटे–छोटे लेख भी हैं। सबसे निचले गलियारे की ऊपरी पंक्ति में बौद्ध ग्रन्थ ललितविस्तर के अनुसार बुद्ध का जीवन अंकित है, और निचली पंक्ति में जातकों की कथाएँ अंकित हैं। अन्य पंक्तियों के चित्रों का निर्माण भी विभिन्न बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार ही किया गया प्रतीत होता है। इसमें संदेह नहीं कि दक्षिण–पूर्वी एशिया के प्राचीन अवशेषों में यही सबसे महत्त्वपूर्ण एवं विशाल है, और इसे संसार के आश्चर्यों में गिना जाता है।

बोरोबुदुर का विश्व धरोहर के रूप में भी काफी महत्व है, 1991 में, बोरोबुदुर को UNESCO द्वारा विश्व धरोहर स्थल के रूप में मान्यता दी गई थी। यह मान्यता मंदिर के अद्वितीय सांस्कृतिक और ऐतिहासिक मूल्य को वैश्विक स्तर पर स्वीकृति प्रदान करती है। विश्व धरोहर स्थल के रूप में, बोरोबुदुर को अंतरराष्ट्रीय समुदाय द्वारा संरक्षित और प्रबंधित करने के लिए प्रतिबद्धता प्राप्त है। वहीं UNESCO मंदिर और उसके आसपास के क्षेत्र में पुरातात्विक और ऐतिहासिक अनुसंधान के कार्य को भी प्रोत्साहित करती है तथा UNESCOविश्व धरोहर स्थल होने से बोरोबुदुर को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पर्यटन स्थल के रूप में भी प्रसिद्धि मिली है।

15-5 lkjk'k

दक्षिण–पूर्व एशिया के जावा द्वीप में स्थित बोरोबुदूर प्राचीन काल से ही अपनी वैविध्य स्थापत्य कला के लिए जाना जाता रहा है।यद्यपि 9वीं शताब्दी में शैलेंद्र शासकों के शासन काल में बोरोबुदूर एक प्रमुख बौद्ध मंदिर के रूप में उपस्थित हुआ तथा शैलेंद्र शासकों की प्रतिष्ठा को भी प्रतिष्ठापित किया।15 वीं शताब्दी तक आते आते यह मंदिर अनेक झंझावातों का सामना करता हुआ विलुप्त प्राय होगया तथा पुनः 19 वीं शताब्दी में प्रकाश में आया।इस मंदिर के प्रकाश में आने के फलस्वरूप 20वीं शताब्दी मे इसका जीर्णोद्धार करवाया गया तथा अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता तथा स्थापत्य के कारण इसने विश्व विरासत में अपना स्थान बनाया।आज अनेकों पर्यटक यन्हा देशाटन करने आते हैं जो जावा के पर्यटन को बढ़ावा देते हुए उसके आर्थिक विकास में सहायक हो रहें हैं।

15-6 ck/k ç'u

प्रश्न संख्या 1: बोरोबुदूर के स्थापत्य शैली पर चर्चा करें ?

.....

.....

.....

.....

प्रश्न संख्या 2: किस प्रकार बोरोबुदूर बौद्ध स्थल के रूप में स्थापित हुआ ? प्रकाश डालिए ?

.....

.....

.....

.....

प्रश्न संख्या 3: बोरोबुदूर के महत्त्व पर प्रकाश डालिए ?

.....

.....

.....

.....

15-7 lanHkZ xzUFk

1. Majumdar, Ramesh Chandra, Hindu Colonies in the Far East-Firma KL Mukhopadhyay, 1944
2. Miksic, John- Borobudur, Golden tales of the Buddhas-Tuttle Publishing, 2012
3. Nagaoka, Masanori and Masanori Nagaoka, Historical Setting of Borobudur, Cultural Landscape Management at Borobudur] Indonesia, 2016, 1&12
4. Munandar, Agus Aris, Borobudur Temple, The Interchange of Humanity Values and Ancient Architecture Development in Southeast Asia- International Review of Humanities Studies 1, no- 2 ,2016, 148&167

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

"अपने भाइयों को मै सचेत करना चाहता हूँ कि मोम न बनें और आसानी से पिघल न जायें। छोटी-छोटी सी बातों के लिए ही हम अपनी भाषा को या संस्कृति को न बदलें।"

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

प्रयागराज

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333